दयानन्द-दृष्टान्त-निधिः

संकलयिता-सम्पादक
सत्यानन्द वेदवागीश

ओ३म्
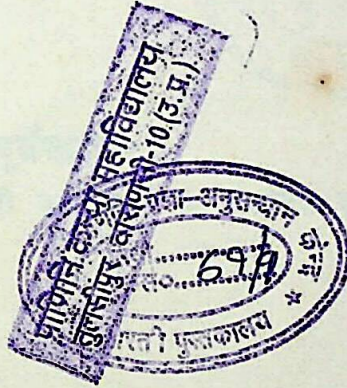
दयानन्द-दृष्टान्त-निधिः

पूर्वखण्डः

[स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत ग्रन्थों से संकलित दृष्टान्त]

उत्तरखण्डः

[स्वामी दयानन्द सरस्वती का संक्षिप्त जीवन-चरित;
एक अकल्पित महादृष्टान्त]

: संकलयिता-सम्पादक :

सत्यानन्द वेदवागीश

: प्रकाशक :

वैदिक शोध-संस्थान, बीकानेर (राज.)

दयानन्द-दृष्टान्त-निधिः

[पुनःप्रकाशनादि-अधिकार सम्पादकाधीन]

प्रकाशनतिथि-माघी पौर्णमासी २०५३ वि०

संस्करण - प्रथम

मूल्य : ५०.००

प्राप्तिस्थान — १. वैदिक शोध-संस्थान,
C/o, एन.एन. सैंट् स्कूल, मुक्ताप्रसाद कोलोनी, बीकानेर (राज०)
२. राष्ट्रसहायक सी. उ.मा. विद्यालय,
कमला कोलोनी, बीकानेर (राज०)
३. आर्यसमाज महर्षि दयानन्द मार्ग, रायपुर दरवाजा बाहर,
अहमदाबाद-३८००२२. (गुज०)
४. सत्यानन्द वेदवागीश,
२७२, आर्यनगर, अलवर (३०१००१)
५. सत्यानन्द वेदवागीश,
पी-३१०, सेक्टर २१, नोइडा (उ.प्र.) (२०१३०१)
६. विजयकुमार गोविन्दराम,
४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६.

लेजर टाईपसेटर्स
अकीन कोम्प्यू. ग्राफीक्स
५१, भावसार सोसायटी, नवावाडज,
अहमदाबाद-१३. फोन : ७४८३७५५

मुद्रक :
शिवकृपा ओफसेट,
दूधेश्वर, अहमदाबाद.

निवेदन

किसी बात को – चाहे वह कोई शास्त्रीय विषय हो, दार्शनिक विवेचन हो, वैज्ञानिक तथ्य हो अथवा कोई साधारण व्यावहारिक प्रसङ्ग हो – समझाने के लिये अथवा उसे सिद्ध करने के लिये दृष्टान्त का होना अत्यावश्यक है। दृष्टान्त से सुनने-समझने में सरसता और अत्यन्त सरलता हो जाती है। इसीलिये न्यायदर्शन के प्रणेता गौतम मुनि ने मोक्षप्राप्ति के लिये जिन १६ सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान को आवश्यक माना है, उनमें 'दृष्टान्त' का भी स्थान है। यथा-'प्रमाणप्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्त... निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान् निःश्रेयसाधिगमः।'[1]

'दृष्टान्त' की परिभाषा करते हुए कहा गया है – 'लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तः'[2] अर्थात् साधारण बुद्धिवाले लोगों और तर्कपूर्वक प्रमाणों के द्वारा किसी पदार्थ की परीक्षा करने की योग्यता रखने वाले विद्वान् लोगों की जिस विषय में एक जैसी बुद्धि हो – अविरोध हो, उसे 'दृष्टान्त' कहते हैं। सीधी भाषा में कहें, तो जिस वस्तु को जिस प्रकार साधारण लोग जानते हैं और वैसे ही उसे विद्वान् लोग भी जानते हैं, वह 'दृष्टान्त' है।

न्यायदर्शनकार द्वारा किसी बात को सिद्ध करने के लिये आवश्यक माने गये पांच (–प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन) 'अवयवों' में भी 'उदाहरण' नाम से कथित अवयव भी वस्तुतः 'दृष्टान्त' ही है। अतएव आगे उदाहरण का लक्षण करते हुए कहा गया है – 'साध्यसाधर्म्यात् तद्धर्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम्', 'तद्विपर्ययाद् वा विपरीतम्'[3] अर्थात् साध्य विषय की समानेधर्मता अथवा विपरितधर्मता के कारण से उस साध्य के वैशिष्ट्य वाला जो दृष्टान्त है, वही उदाहरण है।

इस संक्षिप्त से विवेचन से यह स्पष्ट है, कि किसी बात की सिद्धि के लिये अथवा उसे समझाने के लिये 'दृष्टान्त' का दिया जाना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। अतएव लेखक और उपदेशक लोग अपने लेखों एवं प्रवचनों में दृष्टान्तों का समावेश करते हैं। तभी वह लेख अथवा प्रवचन सरस होते हुए शीघ्र बुद्धिगम्य हो जाता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सहस्त्रों वर्षों बाद वैदिक-धर्म की पुनः प्रतिष्ठापना की। उन्होंने वैदिक सत्य सिद्धान्तों को सिद्ध करने के लिये, उन्हें साधारण बुद्धिगम्य बनाने के लिये और अन्धविश्वासों, पाखण्डों तथा कुरीतियों के निराकरण के लिये अपने प्रवचनों, उपदेशों और ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर दृष्टान्तों का समावेश किया है। वे दृष्टान्त इतने सटीक एवं उपादेय हैं, कि उनके कारण वह वह विषय तत्काल हृदयंगम हो जाता है।

हमने उनकी उपयोगिता को लक्ष्य में रखकर 'दयानन्द-दृष्टान्तनिधि' नामक इस

---

१. न्यायसूत्र १.१.१ २. न्या०सू० १.१.२५. ३. न्या०सू० १.१.३६,३७

पुस्तिका का प्रणयन किया है । इसके 'पूर्वखण्ड' और 'उत्तरखण्ड' नामक दो भाग हैं । 'पूर्वखण्ड' में स्वामीजी द्वारा 'सत्यार्थप्रकाश' तथा 'व्यवहारभानु' नामक स्वरचित ग्रन्थों में प्रदत्त दृष्टान्तों का सङ्कलन किया गया है । दृष्टान्तों के आरम्भ में प्रसङ्ग को जोड़ने के लिये अथवा विषय की उत्थानिका के रूप में हमने अपनी ओर से संक्षिप्त टिप्पणी भी [ ] इस प्रकार के कोष्ठक में इटैलिक टाइप में दी है । प्रवचनों और उपदेशों में प्रयुक्त दृष्टान्तों को अगले संस्करण में सङ्गृहीत किया जायेगा ।

'उत्तरखण्ड' में स्वामीजी का जीवनचरित संक्षेप से दिया गया है । 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' का जीवनचरित वास्तव में स्वयं ही एक महान् दृष्टान्त है – एक अकल्पित-जीताजागता-सच्चा महादृष्टान्त है । गुजरात के महाकवि श्री रमणलाल वसंतभाई देसाई ने एक बार कहा था–

"जिस क्षण देह में दुर्बलता प्रतीत हो, उसी क्षण एक महान् विशालकाय संन्यासी का स्मरण करो । जिस क्षण तुम्हारे मन में शिथिलता या कायरता का प्रवेश हो, उसी क्षण जीवन और उत्साह से ओतप्रोत उस तेजस्वी देशभक्त का स्मरण करो । जिस क्षण तुम्हारे हृदय में मोह और विलास का साम्राज्य प्रवृत्त हो, उसी क्षण धन को ठेकर मारनेवाले उस नैष्ठिक ब्रह्मचारी की ओर दृष्टि करो । अपमान से आहत होकर जिस क्षण तुम नजर ऊँची न उठा सको, उसी क्षण हिमालय के समान अडिग और उन्नत व्यक्ति के ओजस्वी मुख को अपनी कल्पना में उपस्थित करो । मृत्यु का वरण करते हुए डर लगे, तो उस निर्भयता की मूर्ति का ध्यान करो । द्वेषभाव से खिन्न होकर, जब तुम्हें अपने विरोधी को क्षमा करने में हिचकिचाहट हो, तो उसी क्षण विष पिलाने वाले को आशीर्वाद देते हुए एक रागद्वेषमुक्त गुजराती संन्यासी को याद करो ।

यह व्यक्ति महान् आत्मा स्वामी दयानन्द है । यह गौरवशाली पुरुष भारतीय महापुरुषों में अग्रस्थान पर विराजमान है"

–अर्थात् यदि तुम्हें शारीरिक बलवत्ता और विशालता का, जीवन और उत्साह से ओतप्रोत ओजस्विता का, देशभक्तिं का, मोहत्याग का, उद्देश्यप्राप्ति और व्रतपालन में धन की परवाह न करने का, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का, हिमालय के समान अडिग और उन्नत रहने का, मृत्यु से भी भयभीत न होने का और रागद्वेषरहितता का दृष्टान्त किसी एक स्थान पर देखना हो – किसी एक व्यक्ति में देखना हो – तो वह दृष्टान्त है "स्वामी दयानन्द सरस्वती" ।

इस प्रकार वैदिक उदात्त सत्यों के मूर्तभूत दृष्टान्त स्वामीजी के जीवनचरित (संक्षिप्त ही सही) को पढ़कर पाठकों को अवश्यमेव प्रेरणा प्राप्त होगी । तत्त्व की बात तो यह है, कि इन दृष्टान्तों का और महादृष्टान्त (= स्वामी-जीवनचरित) का अवलोकन करने से पाठकों को, स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित प्रायः सभी वैदिक सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय सहज ही प्राप्त हो जायेगा ।

स्वामीजी के जीवन-घटना-क्रम का संक्षेप हमने 'दयानन्द' के अद्वितीय अनुरागी बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा संकलित सामग्री के आधार पर पं० घासीराम एडवोकेट द्वारा सम्पादित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित (१म तथा २य भाग)'[1] के अनुसार किया है। प्रायः सभी घटनाओं को समाविष्ट करने का प्रयास किया गया है।

हमने इस पुस्तिका में दयानन्दजी के लिये उनके पूरे स्वनाम 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' अथवा संक्षेप में 'स्वामीजी' इतने का ही उल्लेख किया है। हम उन्हें उनके महत्तम गुणों के कारण ऋषि, महर्षि आदि कोई भी विशेषण दे दें; उनकी प्रचण्ड तेजस्विता, अद्वितीय मनस्विता, अकाट्य तार्किकता और लोकोत्तर महत्ता के आगे ये सब विशेषण फीके लगते हैं। 'रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव' के समान 'दयानन्द इव दयानन्दः' – दयानन्द तो बस दयानन्द जैसा ही था।

पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट-भाग में स्वामीजी के ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय और उनके प्राप्तिस्थानों का भी उल्लेख कर दिया गया है। ग्रन्थारम्भ में 'पूर्वखण्ड' के दृष्टान्तों की अनुक्रमणी और 'उत्तरखण्ड' के शीर्षको की सूची दे दी गई है।

इस पुस्तक के प्रकाशन का भार बीकानेर (राजस्थान) के वैदिक शोध-संस्थान' ने उठाया है। अतः मैं हृदय से इस संस्थान के पदाधिकारियों का आभारी हूं। इसके मुद्रण आदि की व्यवस्था आर्यसमाज कांकरिया रोड, अहमदाबाद के मन्त्री एवं गुजरात विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रवक्ता श्री डॉ० कमलेशकुमार व्याकरणाचार्य ने की है। तदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं। इति शुभम्।

P-३१०, जलवायुविहार सेक्टर-२१,
नोइडा (२०१३०१) (उ.प्र.)

निवेदक
विद्वज्जनचरणरजोजुट्
सत्यानन्द वेदवागीश

---

१. आर्यसाहित्यमण्डल, अजमेर द्वारा प्रकाशित चतुर्थावृत्ति।
२. वाल्मीकीय रामायण युद्धकाण्ड।

❋ दयानन्द-प्रशस्तिः ❋

य: पाखण्डमतैकखण्डनरतो वेदाख्यशस्त्रैः शुभैः,
शास्त्राणां बलवद्बलेन सततं संसेव्यमानो युधि ॥
सत्पक्षः परिषच्छलेन विजयस्तम्भात् समारोपयद्,
दिक्ष्वन्यः पुरुषो हि तेन सदृशो लभ्येत कुत्राधुना ॥

– जो वेद रूपी उत्तम शस्त्रों के द्वारा पाखण्ड मतों के खण्डन में लगा रहता था, शास्त्रार्थ-समर में शास्त्रों की बलवती सेना जिसका निरन्तर साहाय्य करती थी और जिसने सत्यपक्ष पर दृढ़ रहकर सभाओं के मिष से सब दिशाओं में विजय रूपी स्तम्भ स्थापित किये थे; अब उसके समान अन्य नरपुङ्गव कहाँ मिल सकता है।

एक एव खलु पद्मिनीपतिर् एक एव दिवि शीतदीधितिः ।
एक एव च स वेदविद् भुवि द्वित्वमत्र न कदा श्रुतं मया ॥

– कमलाकर का स्वामी (= सूर्य) एक ही है, आकाश में शीतकिरणवाला (= चन्द्र) भी एक ही है; ऐसे ही पृथिवी पर वेदों का ज्ञाता भी वह (= दयानन्द) अकेला ही था। इस विषय में मैंने दूसरे का अस्तित्व नहीं सुना।

को नाम श्रीदयानन्दात साधीयान् दृश्यते जनः ।
उज्जीवितार्ष विद्या ही येनास्माभिरुपेक्षिता ॥

– श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती के समान साधु सत्पुरुष अन्य कौन दीखता है ? जिसने हमारे द्वारा उपेक्षित आर्ष विद्या को पुनरुज्जीवित किया।

कः पद्मिनीनां वद तिग्मदीधितिर् ?
धर्मः परः कः ? कवि वाचि कः स्थितः ?
का कण्ठभूषा ? न यमाद् बिभेति कः ?
स्वामी दयानन्द सरस्वती यमी ॥

– (१) सूर्य कमलसमूह का क्या लगता है ? (२) परम धर्म क्या है ? (३) कवि की वाणी में कौन स्थित है ? (४) कण्ठ का भूषण क्या है (५) यम से कौन नहीं डरता ? इनका क्रम से उत्तर :- (१) स्वामी (२) दया (३) आनन्द (४) सरस्वती (५) यमी (= संयमी)।

(रामदास छबीलदास वर्मा, कैम्ब्रिज, इंग्लैण्ड रचित)

अनुक्रमणिका

(पूर्वखण्ड)

अनुक्रमणिका

(उत्तरखण्डः)

स्वामी दयानन्द सरस्वती (जीवन चरित)

परिशिष्ट-भाग

ओ३म्

दयानन्द-दृष्टान्त-निधिः

पूर्वखण्डः

[स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत ग्रन्थों से संकलित दृष्टान्त]

: संकलयिता-सम्पादक :

सत्यानन्द वेदवागीश

॥ ओ३म् ॥

दयानन्द-
दृष्टान्तनिधिः [पूर्वखण्डः]

------- × -------
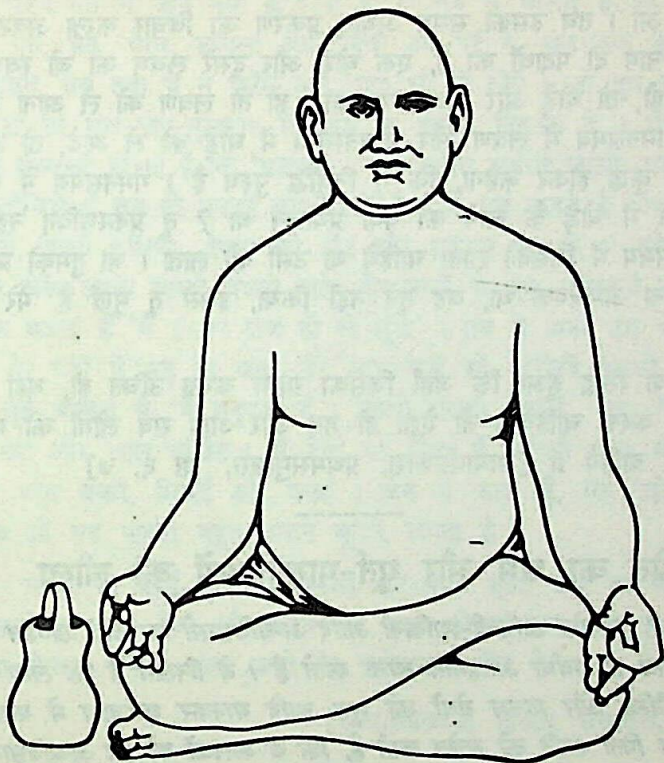
सैन्धव-घोड़ा या लवण ?

[स्वामी दयानन्द सरस्वती परमेश्वर के अग्नि, विराट, चन्द्र तथा आदित्य आदि नामों की सप्रमाण व्याख्या करते हुए लिखते हैं, कि जहाँ सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता और सर्वरक्षकता आदि विशेषणों से युक्त ये शब्द हों, वहाँ ये ईश्वर के वाचक और जहां इनके ज्ञानरहितता, अल्पज्ञता तथा एकदेशिता आदि विशेषण हों, वहाँ इनके द्वारा आग, सोंठ, चन्द्रमा तथा सूर्य आदि का ग्रहण होता है अर्थात् प्रकरण के अनुसार किसी शब्द से किसी अर्थविशेष का बोध होता है]

जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'हे भृत्य ! त्वं सैन्धवमानय' अर्थात् तू सैन्धव को ले आ। तब उसको समय अर्थात् प्रकरण का विचार करना अवश्य है, क्योकिं सैन्धव नाम दो पदार्थों का है, एक घोड़े और दूसरे लवण का जो स्वस्वामी का गमनसमय हो, तो घोड़े और भोजन का काल हो तो लवण को ले आना उचित है। और जो गमनसमय में लवण और भोजनसमय में घोड़े को ले आवे, तो उसका स्वामी उस पर क्रुद्ध होकर कहेगा, कि तू निर्बुद्धि पुरुष है। गमनसमय में लवण और भोजनकाल में घोड़े के लाने का क्या प्रयोजन था ? तू प्रकरणवित् नहीं है, नहीं तो जिस समय में जिसको लाना चाहिये था उसी को लाता। जो तुमको प्रकरण का विचार करना आवश्यक था, वह तूने नहीं किया, इससे तू मूर्ख है, मेरे पास से चला जा।

इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जिसका ग्रहण करना उचित हो, वहां उसी अर्थ का ग्रहण करना चाहिये। तो ऐसा ही हम और आप सब लोगों को मानना और करना भी चाहिये ॥ [सत्यार्थप्रकाश, प्रथमसमुल्लास, पृष्ठ ६, ७]

भूत-प्रेत का भ्रम और धूर्त-पाखण्डियों की लीला

[स्वामीजी भूत-प्रेत डाकिनी-शाकिनी आदि अन्धविश्वासों का तीव्र खण्डन करते हुए इनके अस्तित्व से सर्वथा असहमति व्यक्त करते हैं। वे लिखते हैं कि लोग भय, शंका तथा शारीरिक और मानस रोगों को भूत आदि मानकर भ्रमजाल में फंसते हैं। स्वामीजी माता पिता आदि को सचेत करते हैं, कि वे बालकों को इन अन्धविश्वासों से सतर्क कर दें]

जिसको शङ्का, कुसङ्ग, कुसंस्कार होता है, उसको भय और शंकारूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं।

देखो ! जब कोई प्राणी मरता है, तब उसका जीव पाप-पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख-दुःख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है। क्या इस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी नाश कर सकता है ?

अज्ञानी लोग वैद्यकशास्त्र वा पदार्थविद्या के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपातज्वरादि शारीरिक और उन्मादादि मानस रोगों का नाम भूत प्रेतादि धरते हैं। उनका औषध-सेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त, पाखण्डी, महामूर्ख अनाचारी स्वार्थी भंगी, चमार, शूद्र, म्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल-कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा, धागा आदि मिथ्या मन्त्र यन्त्र बांधते-बंधवाते फिरते हैं। अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढाकर दुःख देते फिरते हैं। जब 'आंख के अंधे और गांठ के पूरे' उन दुर्बुद्धि पापी स्वार्थियों के पास जाकर पूछते हैं कि 'महाराज ! इस लड़का, लड़की, स्त्री

और पुरुष को न जाने क्या हो गया है ?' तब वे बोलते हैं कि इसके शरीर में बड़ा भूत, प्रेत, भैरव, शीतला आदि देवी आ गई है, जब तक तुम इसका उपाय न करोगे, तब तक ये न छूटेंगे और प्राण भी ले लेंगे । जो तुम मलीदा वा इतनी भेंट दो तो मन्त्र-जप-पुरश्चरण से झाड़ के इनको निकाल दें । तब वे अंधे और उनके सम्बन्धी बोलते हैं कि 'महाराज ! चाहे हमारा सर्वस्व जाओ, परन्तु इनको अच्छा कर दीजिये ।' तब तो उनकी बन पड़ती है । वे धूर्त कहते हैं 'अच्छा लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा, देवता को भेंट और ग्रहदान कराओ ।' झांझ, मृदंग, ढोल, थाली लेके उसके सामने बजाते गाते और उनमें से एक पाखण्डी उन्मत्त होके नाच कूदके कहता है 'मैं इसका प्राण ही ले लूंगा' । तब वे अन्धे उस भंगी चमार आदि नीच के पगों में पड़ के कहते हैं 'आप चाहें सो लीजिये इसको बचाइये ।' तब वह धूर्त बोलता है 'मैं हनुमान हूँ । लाओ पक्की मिठाई, तैल, सिन्दूर, सवा मन का रोट और लाल लंगोट । मैं देवी वा भैरव हूँ, लाओ पांच बोतल मद्य, बीस मुर्गी, पांच बकरे, मिठाई और वस्त्र' । जब वे कहते हैं, कि 'जो चाहो सो लो' । तब तो वह पागल बहुत नाचने कूदने लगता है ।

परन्तु जो कोई बुद्धिमान् उनकी भेंट पांच जूता, दंडा वा चपेटा, लातें मारे, तो उसके हनुमान्, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं । क्यों कि वह उनका केवल धनादि हरण करने के प्रयोजनार्थ ढोंग है ॥

[सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास, पृष्ठ-२१, २२]

जन्मपत्री और ग्रहों के नाम से ज्योतिषियों की लीला

[अशिक्षित और प्रायः शिक्षित लोग भी ग्रहों के चक्कर में रहते हैं । स्वामीजी मानते हैं, कि ग्रहों का व्यक्तिगत रूपसे कोई प्रभाव नहीं पड़ता । ग्रहों का काल्पनिक भय दिखाकर झूठे ज्योतिषी गृहस्थजनों को लूटते हैं । अतः गणितज्योतिष को सच्चा और फलितज्योतिष को झूठा मानना चाहिये तथा जन्मपत्री-फल को भी धोखा समझना चाहिये ।]

और जब किसी ग्रहग्रस्त ग्रहरूप ज्योतिर्विदाभास के पास जाके वे [रुग्ण बालक आदि के माता-पिता आदि] कहते हैं - हे महाराज ! इसको क्या है ?' तब वे कहते हैं कि 'इस पर सूर्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं । जो तुम इनकी शान्ति, पाठ, पूजा, दान कराओ तो इसको सुख हो जाय, नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाय तो भी आश्चर्य नहीं ।'

उत्तर - कहिये ज्योतिर्वित् ! जैसी यह पृथिवी जड़ है, वैसे ही सूर्यादि लोक हैं । वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते । क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दे सकें ?

प्रश्न – क्या जो यह संसार में राजा प्रजा सुखी दुःखी हो रहे हैं, यह ग्रहों का फल नहीं है ?

उत्तर – नहीं, ये सब पाप-पुण्यों के फल हैं ।

प्रश्न – तो क्या ज्योतिष-शास्त्र झूठा है ?

उत्तर – नहीं, जो उसमें अङ्क, बीज, रेखागणित विद्या है, वह सब सच्ची, जो फल की लीला है वह सब झूठी है ।

प्रश्न – क्या जो यह जन्मपत्र है सो निष्फल है ?

उत्तर – हां । वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम 'शोकपत्र' रखना चाहिये, क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है, तब सबको आनन्द होता है । परन्तु वह आनन्द तब तक होता है, जब तक जन्मपत्र बनके ग्रहों का फल न सुने ।

जब पुरोहित जन्मपत्र बनाने को कहता है, तब उसके माता-पिता पुरोहित से कहते हैं 'महाराज ! आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइये' । जो धनाढ्य [कुल] हो तो [उसके सन्तान का] बहुत सी लाल पीली रेखाओं से चित्र-विचित्र और निर्धन हो, तो साधारण रीति से जन्मपत्र बनाके सुनाने को आता है । तब उसके मां बाप ज्योतिषीजी के सामने बैठ के कहते हैं 'इसका जन्मपत्र अच्छा तो है ?'. ज्योतिषी कहता है 'जो है सो सुना देता हूं । इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रग्रह भी बहुत अच्छे हैं । जिनका फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान्, जिस सभा में जा बैठेगा तो सब के ऊपर इसका तेज पड़ेगा । शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा ।' इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं 'वाह-वाह ज्योतिषीजी ! आप बहुत अच्छे हो ।' ज्योतिषीजी समझते हैं, इन बातों से कार्य सिद्ध नहीं होता । तब ज्योतिषी बोलता हैं, कि 'ये ग्रह तो बहुत अच्छे हैं, परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् फलाने-फलाने ग्रह के योग से ८ वर्ष में इसका मृत्युयोग है ।' इसको सुन के माता-पिता पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़ के शोकसागर में डूबकर ज्योतिषी से कहते हैं, कि 'महाराजजी ! अब हम क्या करें ।' तब ज्योतिषीजी कहते हैं 'उपाय करो ।' गृहस्थ पूछे 'क्या उपाय करें ?' ज्योतिषीजी प्रस्ताव करने लगते हैं, कि 'ऐसा-ऐसा दान करो । ग्रह के मन्त्र का जप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे तो अनुमान है, कि नवग्रहों के विघ्न हट जायेंगे ।' अनुमान शब्द इसलिये है कि जो मर जायेगा, तो कहेंगे, 'हम क्या करें । परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है । हमने तो बहुत सा यत्न किया और तुमने कराया, उसके कर्म ऐसे ही थे ।' और जो बच जाय तो कहते हैं कि 'देखो हमारे मन्त्र, देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है ? तुम्हारे लड़के को बचा दिया ।' यहां यह बात होनी चाहिये, कि जो इनके जप, पाठ से कुछ

न हो, तो दूने तिगुणे रुपये उन धूर्तों से ले लेने चाहियें। क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि 'इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं', वैसे गृहस्थ भी कहें कि 'यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से बचा है, तुम्हारे करने से नहीं।'

और तीसरे गुरु आदि भी पुण्य दान कराके आप ले लेते हैं, तो उनको भी वही उत्तर देना, जो ज्योतिषियों को दिया था।

अब रह गई शीतला और मन्त्र तन्त्र यन्त्र आदि। ये भी ऐसे ही ढोंग मचाते हैं। कोई कहता है कि 'जो हम मन्त्र पढ़ के डोरा वा यन्त्र बना देवें तो हमारे देवता और पीर उस मन्त्र यन्त्र के प्रताप से उसको कोई विघ्न नहीं होने देते।' उनको वही उत्तर देना चाहिये की 'क्या तुम मृत्यु, परमेश्वर के नियम और कर्मफल से भी बचा सकोगे ? तुम्हारे इस प्रकार करने से भी कितने ही लड़के मर जाते हैं और तुम्हारे घर में भी मर जाते हैं और क्या तुम मरण से बच सकोगे ?' तब वे कुछ भी नहीं कह सकते और वे धूर्त जान लेते हैं कि यहां हमारी दाल नहीं गलेगी। ....और जितनी लीला रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं, उनको भी महापामर समझना चाहिये।

इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था में सन्तानों के हृदय में डाल दें कि जिससे स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़ के दुःख न पावें॥

[सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास, पृष्ठ २२, २३]

कर्मकर्ता ही फलभोक्ता

[स्वामीजी लिखते हैं कि ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीन पदार्थ नित्य हैं। जीव ईश्वर द्वारा निर्मित नहीं है। वह भी अनादि है। वह जैसे कर्म करता है, वैसे फल ईश्वर-व्यवस्था से पाता है।]

प्रश्न — जो परमेश्वर जीव को न बनाता और सामर्थ्य न देता तो जीव कुछ भी न कर सकता। इसलिये परमेश्वर की प्रेरणा ही से जीव कर्म करता है।

उत्तर – जीव उत्पन्न कभी न हुआ, अनादि है। जैसा ईश्वर और जगत् का उपादान कारण नित्य है। और जीव का शरीर तथा इन्द्रियों के गोलक परमेश्वर के बनाये हुए हैं, परन्तु वे सब जीव के आधीन हैं। जो कोई मन, कर्म, वचन से पाप-पुण्य करता है वही भोक्ता है, ईश्वर नहीं।

जैसे किसी कारीगर ने पहाड़ से लोहा निकाला, उस लोहे को किसी व्यापारी ने लिया, उसकी दुकान से लोहार ने ले तलवार बनाई, उससे किसी सिपाही ने तलवार

ले ली, फिर उससे किसी को मार डाला । अब यहां जैसे वह लोहे को उत्पन्न करने, उससे लेने, तलवार बनाने वाले और तलवार को पकड़ कर राजा दंड नहीं देता, किन्तु जिसने तलवार से मारा वही दंड पाता है । इसी प्रकार शरीरादि की उत्पत्ति करने वाला परमेश्वर उनके कर्मों का भोक्ता नहीं होता, किन्तु जीव को भुगानेवाला होता है । जो परमेश्वर कर्म कराता होता, तो कोई जीव पाप नहीं करता, क्योंकि परमेश्वर पवित्र और धार्मिक होने से किसी जीव को पाप करने में प्रेरणा नहीं करता । इसलिये जीव अपने काम करने में स्वतन्त्र है । जैसे जीव अपने कामों के करने में स्वतन्त्र है वैसे ही परमेश्वर भी अपने कर्मों के करने में स्वतन्त्र है ॥

[सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समुल्लास, पृष्ठ १३६]

वन्ध्यापुत्र-विवाह के समान बिना प्रकृति के जगत् का निर्माण असम्भव

[स्वामीजी लिखते हैं कि यह साकार जगत् प्रकृति का स्थूल रूपान्तर है । प्रकृति स्थूल जगत् की अपेक्षा सूक्ष्म है, परमेश्वर से स्थूल है और परिणामी है । ईश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं है ।)

प्रश्न – जैसे मनुष्य आदि के मां बाप साकार हैं, उनका सन्तान भी साकार होता है । जो ये निराकार होते तो इनके लड़के भी निराकार होते । वैसे परमेश्वर निराकार हो तो उसका बनाया जगत् भी निराकार होना चाहिये ।

उत्तर – यह तुम्हारा प्रश्न लड़के के समान है । क्योंकि हम अभी कह चुके हैं, कि परमेश्वर जगत् का उपादन कारण नहीं, किन्तु निमित्त कारण है और जो स्थूल होता है वह प्रकृति और परमाणु, जगत् का उपादान कारण है । और वे सर्वथा निराकार नहीं, किन्तु परमेश्वर से स्थूल और अन्य कार्य से सूक्ष्म आकार रखते हैं ।

प्रश्न – क्या कारण के बिना परमेश्वर कार्य को नहीं कर सकता ?

उत्तर – नहीं । क्योंकि जिसका अभाव अर्थात् जो वर्तमान नहीं है, उसका भाव वर्तमान होना सर्वथा असम्भव है ।

जैसा कोई गपोड़ा हांक दे, कि 'मैंने वन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह देखा । वह नरशृङ्ग+ का धनुष और दोनों खपुष्प□ की माला पहिने हुए थे । मृगतृष्णिका∇ के जल में स्नान करते और गन्धर्वनगर● में रहते थे । वहां बादल के बिना वर्षा,

---

+ नरशृङ्ग = मनुष्य का सींग । □ खपुष्प = आकाश का फूल । ∇ रेतीले प्रदेश में अथवा ऊसर मैदानों में दोपहर के समय रेती पर सूर्य-किरणों और वायु के संयोग से जो जल की भ्रान्ति होती है, उसे मृगतृष्णिका कहते हैं । ● दृष्टिदोष से आकाश में दिखाई देनेवाला मिथ्या आभासरूप नगर ।

पृथिवी के बिना सब अन्नों की उत्पत्ति आदि होती थी। वैसा ही कारण के बिना कार्य का होना असम्भव है।

जैसे कोई कहे कि 'मम मातापितरौ न स्तोऽहमेवमेव जातः। मम मुखे जिह्वा नास्ति वदामि च' अर्थात् मेरे मातापिता न थे' ऐसे ही मैं उत्पन्न हुआ हूं। मेरे मुख में जीभ नहीं है परन्तु बोलता हूं। बिल में सर्प न था निकल आया। मैं कहीं नहीं था, ये भी कहीं न थे और हम सब जने आये हैं। ऐसी असम्भव बात प्रमत्तगीत अर्थात् पागल लोगों की है।

प्रश्न - जो कारण के बिना कार्य नहीं होता तो कारण का कारण कौन है?

उत्तर - जो केवल कारणरूप ही हैं, वे कार्य किसी के नहीं होते और जो किसी का कारण और किसी का कार्य होता है, वह दूसरा कहाता है। जैसे पृथिवी घर आदि का कारण और जल आदि का कार्य होता है। परन्तु तो आदिकारण प्रकृति है वह अनादि है। [सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास, पृष्ठ १५२, १५३]

अन्धों के द्वारा हाथी-साक्षात्कार के समान ज्ञानान्धों की शास्त्रीय समझ

[कई लोग वेदशास्त्रों में और दर्शन-शास्त्रों में सृष्टि के विषय में परस्पर मतभेद मानते हैं। स्वामीजी इसे अनार्ष ग्रन्थों के पढ़ने के कारण उत्पन्न हुआ भ्रम मानते हैं। जैसे अन्धों को हाथी के विषय में भ्रांति होती है, वैसे ही अल्पज्ञानियों को शास्त्रों में सृष्टि-विषयक भ्रांति हो जाती है]

पूर्वपक्षी शंका करता है, कि सृष्टि-विषय में वेदादिशास्त्रों में विरोध है। जैसे तैत्तिरीय उपनिषद् में आकाशादि क्रम से सृष्टि की उत्पत्ति मानी गई है, छान्दोग्य में अग्नि आदि क्रम से और ऐतरेय में जलादि क्रम से। इसी प्रकार वेदो में कहीं पुरुष से, कहीं हिरण्यगर्भ आदि से, मीमांसा में कर्म से, न्याय में परमाणु से, योग में पुरुषार्थ से, सांख्य में प्रकृति से और वेदान्त में ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानी है। अब किसको सच्चा और किसको झूठा मानें? इसका समाधान करते हुए स्वामीजी लिखते हैं —]

उत्तर - इसमें सब सच्चे कोई; झूठा नहीं। झूठा वह है जो विपरीत समझता है। क्योंकि परमेश्वर निमित्त और प्रकृति जगत् का उपादान कारण है। जब महाप्रलय होता है उसके पश्चात् आकाशादि क्रम अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्न्यादि का होता है, अग्न्यादि क्रम से और जब विद्युत् अग्नि का भी नाश नहीं होता तब जल-क्रम से सृष्टि होती है। अर्थात् जिस जिस प्रलय में जहां जहां तक प्रलय होता है, वहाँ वहाँ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

पुरुष और हिरण्यगर्भादि प्रथम समुल्लास में लिख भी आये हैं, वे सब नाम परमेश्वर के हैं। परन्तु विरोध उसको कहते हैं, कि एक कार्य में एक ही विषय पर विरुद्ध वाद होवे। छः शास्त्रों में अविरोध देखो इस प्रकार है -

मीमांसा में — 'ऐसा कोई भी कार्य जगत् में नहीं होता कि जिसके बनाने

में कर्मचेष्टा न की जाय'। वैशेषिक में – 'समय न लगे बिना बने ही नहीं'। न्याय में – 'उपादानकारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता'। योग में – 'विद्या, ज्ञान, विचार न किया जाय तो नहीं बन सकता'। सांख्य में – 'तत्त्वों का मेल न होने से नहीं बन सकता'। और वेदान्त में – 'बनाने वाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न न हो सके'। इसलिये सृष्टि छः कारणों से बनती है। उन छः कारणों की व्याख्या एक-एक की एक-एक शास्त्र में है। इसलिये उनमें विरोध कुछ भी नहीं।

जैसे छः पुरुष मिल के एक छप्पर उठाकर भित्तियों पर धरें, वैसा ही सृष्टिरूप कार्य की व्याख्या छः शास्त्रकारों ने मिलकर की है।

जैसे पांच अन्धे और एक मन्ददृष्टि को किसी ने हाथी का एक-एक देश बतलाया। उनसे पूछा कि हाथी कैसा है? उनमें से एक ने कहा खंभे, दूसरे ने कहा सूप, तीसरे ने कहा मूसल, चौथे ने कहा झाड़ू, पांचवें ने कहा चौतरा और छठे ने कहा काला-काला चार खंभों के ऊपर कुछ भैंसा सा आकारवाला है।

इसी प्रकार आजकल के अनार्ष नवीन ग्रन्थों के पढ़ने और प्राकृत भाषावालों ने ऋषिप्रणीत ग्रन्थ न पढ़कर, नवीन क्षुद्रबुद्धि कल्पित संस्कृत और भाषाओं के ग्रन्थ पढ़कर, एक दूसरे की निन्दा में तत्पर होके झूठा झगड़ा मचाया है। इन का कथन बुद्धिमानों के वा अन्य के मानने योग्य नहीं। क्योंकि जो अन्धों के पीछे अन्धे चलें, तो दुःख क्यों न पावें? वैसे ही आजकल के अल्पविद्यायुक्त, स्वार्थी, इन्द्रियाराम पुरुषों की लीला संसार का नाश करने वाली है॥

[सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास, पृष्ठ १५७]

यूरोपीय पोपों द्वारा स्वर्ग का ठेका और पोप की परिभाषा

[स्वामीजी नकली ब्राह्मणों [= जन्ममात्र के ब्राह्मणों] की भ्रष्ट लीलाओं का खण्डन करते हुए जब कहते हैं, कि जिन ब्राह्मणों में ब्राह्मण के गुण, कर्म, स्वभाव नहीं वे ब्राह्मण नहीं हैं और न उनकी सेवा करनी योग्य है। तब जन्ममात्र का ब्राह्मण प्रश्न करता है –]

प्रश्न – तो हम कौन हैं?

उत्तर – तुम पोप हो।

प्रश्न – पोप किसे कहते हैं?

उत्तर – उसकी सूचना रूमन भाषा में तो बड़ा और पिता का नाम पोप है, परन्तु अब छल कपट से दूसरे को ठगकर अपना प्रयोजन साधने वाले को पोप कहते हैं।

प्रश्न – हम तो ब्राह्मण और साधु हैं, क्योंकि हमारा पिता ब्राह्मण और माता ब्राह्मणी तथा हम अमुक साधु के चेले हैं ।

उत्तर – यह सत्य है परन्तु सुनो भाई ! माँ–बाप ब्राह्मणी – ब्राह्मण होने से और किसी साधु के शिष्य होने पर ब्राह्मण वा साधु नहीं हो सकते, किन्तु ब्राह्मण और साधु अपने उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव से होते है जो कि परोपकारी हों ।

सुना है कि जैसे रूम के पोप अपने चेलों को कहते थे, कि तुम अपने पाप हमारे सामने कहोगे तो हम क्षमा कर देंगे । बिना हमारी सेवा और आज्ञा के कोई भी स्वर्ग में नहीं जा सकता । जो तुम स्वर्ग में जाना चाहो, तो हमारे पास जितने रुपये जमा करोगे, उतने ही की सामग्री स्वर्ग में तुमको मिलेगी । ऐसा सुनकर जब कोई 'आंख के अंधे और गांठ के पूरे' स्वर्ग में जाने की इच्छा करके 'पोपजी' को यथेष्ट रुपये देता था, तबं वह 'पोपजी' ईसा और मरियम की मूर्ति के सामने खड़ा होकर इस प्रकार की हुंडी लिखकर देता था "हे खुदावन्द ईसामसीह ! अमुक मनुष्य ने तेरे नाम पर लाख रुपये स्वर्ग में जाने के लिये हमारे पास जमा कर दिये हैं । जब वह स्वर्ग में आवे तब तू अपने पिता के स्वर्ग के राज्य में पच्चीस सहस्र रुपयों में बाग बगीचा और मकानात, पच्चीस सहस्र में सवारी शिकारी और नौकर, चाकर, पच्चीस सहस्र रुपयों में खानापीना कपड़ालत्ता और पच्चीस सहस्र रुपये इसके इष्ट मित्र भाई बन्धु आदि के जियाफ़त के वास्ते दिला देना ।" फिर उस हुंडी के नीचे पोपजी अपनी सही करके हुंडी उसके हाथ में देकर कह देते थे कि "जब तू मरे तब इस हुंडी को कबर में अपने सिराने धर लेने के लिये अपने कुटुंब को कह रखना । फिर तुझे ले जाने के लिये फरिश्ते आवेंगे, तब तुझे और तेरी हुंडी को स्वर्ग में ले जाकर लिखे प्रमाणे सब चीजें तुझको दिला देंगे ।"

अब देखिये, जानो स्वर्ग का ठेका पोपजी ने ही ले लिया हो । जब तक यूरोप देश में मूर्खता थी, तभी तक वहां पोपजी की लीला चलती थी, परन्तु अब विद्या के होने से पोपजी की झूठी लीला बहुत नहीं चलती, किन्तु निर्मूल भी नहीं हुई ।

वैसे ही आर्यावर्त देश में भी जानो पोपजी ने लाखों अवतार लेकर लीला फैलाई हो । अर्थात् राजा और प्रजा को विद्या न पढ़ने देना, अच्छे पुरुषों का सङ्ग न होने देना, रात दिन बहकाने के सिवाय दूसरा कुछ भी काम नहीं करना है । परन्तु यह बात ध्यान में रखना, कि जो जो छलकपटादि कुत्सित व्यवहार करते हैं, वे ही पोप कहाते हैं । जो कोई उनमें भी धार्मिक विद्वान् परोपकारी हैं, वे सच्चे ब्राह्मण और साधु हैं ॥ [सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास, पृष्ठ–२००, २०१]

चेलों द्वारा गुरु-पग-सेवा के समान सम्प्रदायवादियों द्वारा ईश्वर-नामों में झगड़ा ।

[स्वामीजी जब वेदविरुद्ध मत-सम्प्रदायों का खण्डन करते हैं, तो सम्प्रदायवादी इन सम्प्रदायों को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिये वेदमन्त्रों के कुछ वाक्य उपस्थित करता है –]

'नमस्ते रुद्र मन्यवे' । 'वैष्णवमसि' । 'वामनाय च' । 'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे' । 'भगवती भूयाः' । 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' इत्यादि वेद प्रमाणों से शैवादि मत सिद्ध होते हैं, पुनः क्यों खण्डन करते हो ?

उत्तर – इन वचनों से शैवादि सम्प्रदाय सिद्ध नहीं होते । क्योंकि 'रुद्र' परमेश्वर प्राणादि वायु, जीव, अग्नि आदि का नाम है । जो क्रोध-कर्ता रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलाने वाले परमात्मा को नमस्कार करना, प्राण और जाठराग्नि को अन्न देना, [नम इति अन्ननाम निघं० २.७] । जो मङ्गलकारी सब संसार का अत्यन्त कल्याण करने वाला है, उस परमात्मा को नमस्कार करना चाहिये । 'शिवस्य परमेश्वरस्यायं भक्तः शैवः' । 'विष्णोः परमात्मानोऽयं भक्तो वैष्णवः' । 'गणपतेः सकलजगत्स्वामिनोऽयं सेवको गाणपतः' । 'भगवत्या वाण्या अयं सेवको भागवतः' । 'सूर्यस्य चराऽचरात्मनोऽयं सेवकः सौरः' ये सब रुद्र, शिव, विष्णु, गणपति, सूर्यादि परमेश्वर के और भगवती सत्यभाषणयुक्त वाणी का नाम है [इसलिये शिव आदि नाम वाले परमेश्वर के भक्त होने के कारण ही मनुष्य शैव, वैष्णव, गाणपत, सौर आदि विशेषणवाले होते हैं तथा वाणी का सेवनकर्ता होने से मनुष्य भागवत कहलाता है] इसमें बिना समझे ऐसा झगड़ा मचाया है । जैसे –

एक किसी वैरागी के दो चेले थे । वे प्रतिदिन गुरु के पग दाबा करते थे । एक ने दाहिने पग और दूसरे ने बायें पग की सेवा करनी बांट ली थी । एक दिन ऐसा हुआ, एक चेला कहीं बजार हाट को चला गया और दूसरा अपने सेव्य पग की सेवा कर रहा था । इतने में गुरुजी ने करवट फेरा, तो उसके पग पर दूसरे गुरुभाई का सेव्य पग पड़ा । उसने ले डंडा पग पर धर मारा । गुरु ने कहा कि अरे दुष्ट तूने यह क्या किया ? चेला बोला कि मेरे सेव्य पग के ऊपर यह पग क्यों आ चढ़ा ? इतने में दूसरा चेला जो कि बजार हाट को गया था, आ पहुंचा । वह भी अपने सेव्य पग की सेवा करने लगा । देखा तो पग सूजा पड़ा है । बोला कि गुरुजी यह मेरे सेव्य पग में क्या हुआ ? गुरु ने सब वृत्तान्त सुना दिया । वह भी मूर्ख बोला न चाला । चुपचाप डंडा उठा के बड़े बल से गुरु के दूसरे पग में मारा तो गुरु ने उच्च स्वर से पुकार मचाई । तब तो दोनों चेले डण्डा लेके पड़े और गुरु के पगों को पीटने लगे । तब तो बड़ा कोलाहल मचा और लोग सुनकर आये । कहने लगे कि साधुजी क्या हुआ ? उनमें से किसी बुद्धिमान् पुरुष ने साधु को छुड़ा के पश्चात् उन मूर्ख चेलों को उपदेश किया कि देखो !

ये दोनों पग तुम्हारे गुरु के हैं । उन दोनों की सेवा करने से उसी [गुरु]को सुख पहुंचता और दुःख देने से उसी एक [गुरु] को दुःख होता है ।

जैसे एक गुरु की सेवा में चेलाओं ने लीला की, इसी प्रकार जो एक अखण्ड, सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा के विष्णु, रुद्रादि अनेक नाम हैं । इन नामों का अर्थ जैसा कि प्रथम समुल्लास में प्रकाश कर आये हैं, उस सत्यार्थ को न जानकर शैव, शाक्त, वैष्णवादि सम्प्रदायी लोग परस्पर एक दूसरे के नाम की निन्दा करते हैं । मन्दमति तनिक भी अपनी बुद्धि को फैलाकर नहीं विचारते हैं कि ये सब विष्णु, रुद्र, शिव आदि नाम एक अद्वितीय, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, जगदीश्वर के अनेक गुण कर्म स्वभाव युक्त होने से उसी के वाचक हैं । भला क्या ऐसे लोगों पर ईश्वर का कोप न होता होगा ? (सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास, पृष्ठ २१७,२१८)

जाट द्वारा वैतरणी तरने के लिये गोदान और पोपजी की लीला

[स्वामीजी जब 'मनुष्यों के सुखदुःखरूप फल ग्रहों के कारण होते हैं' इस बात का खण्डन करते हैं, तो ग्रहदान, पुण्य, तर्पण आदि के उद्भावक गरुडपुराण के विषय में पूर्वपक्षी प्रश्न करता है –]

प्रश्न – क्या गरुडपुराण भी झूठा है ?

उत्तर – हां, असत्य है ।

प्रश्न – फिर मरे हुए जीव की क्या गति होती है ?

उत्तर – जैसे उसके कर्म हैं ।

प्रश्न – जो यमराज राजा, चित्रगुप्त मन्त्री, उसके बड़े भयंकर गण कज्जल के पर्वत के तुल्य शरीरवाले, जीव को पकड़ कर ले जाते हैं । पाप, पुण्य के अनुसार नरक, स्वर्ग में डालते हैं । उसके लिये दान, पुण्य, श्राद्ध, तर्पण गोदानादि वैतरणी नदी तरने के लिये करते हैं । ये सब बातें झूठ क्योंकर हो सकती हैं ?

उत्तर – से सब बातें पोपलीला के गपोड़े हैं । जो अन्यत्र के जीव वहां जाते हैं, उनका धर्मराज चित्रगुप्त आदि न्याय करते हैं, तो वे यमलोक के जीव पाप करें तो दूसरा यमलोक मानना चाहिये, कि वहां के न्यायाधीश उनका न्याय करें और पर्वत के समान यमगणों के शरीर हों तो दीखते क्यों नहीं ? और मरनेवाले जीव को लेने में छोटे द्वार में उनकी एक अंगुली भी नहीं जा सकती और सड़क गली में क्यों नहीं रुक जाते । जो कहो कि वे सूक्ष्म देह भी धारण कर लेते हैं, तो प्रथम पर्वतवत् शरीर के बड़े-बड़े हाड़ पोपजी बिना अपने घर के कहां धरेंगे ?

जब जङ्गल में आगी लगती है, तब एकदम पिपीलिका आदि जीवों के शरीर छूटते हैं । उनको पकड़ने के लिये असंख्य यम के गण आवें तो वहां अन्धकार

हो जाना चाहिये और जब आपस में जीवों को पकड़ने को दौड़ेंगे तब कभी उनके शरीर ठोकर खा जायेंगे, तो जैसे पहाड़ के बड़े-बड़े शिखर टूटकर पृथिवी पर गिरते हैं, वैसे उनके बड़े बड़े अवयव गरुड-पुराण के बांचने, सुनने वालों के आंगन में गिर पड़ेंगे, तो वे दब मरेगें वा घर का द्वार अथवा सड़क रुक जायेगी, तो वे कैसे निकल और चल सकेंगे ?

श्राद्ध, तर्पण, पिण्डप्रदान उन मरे जीवों को तो नहीं पहुंचता, किन्तु मृतकों के प्रतिनिधि पोपजी के घर, उदर और हाथ में पहुंचता है। जो वैतरणी के लिये गोदान लेते हैं, वह तो पोपजी के घर में अथवा कसाई आदि के घर में पहुंचता है। वैतरणी पर गाय नहीं जाती, पुनः किसकी पूंछ पकड़कर तरेगा ? और हाथ तो यहीं जलाया वा गाड़ दिया गया, फिर पूंछ को कैसे पकड़ेगा ? यहां एक दृष्टान्त इस बात में उपयुक्त है कि –

एक जाट था। उसके घर में एक गाय बहुत अच्छी और बीस सेर दूध देने वाली थी। दूध उसका बड़ा स्वादिष्ठ होता था। कभी कभी पोपजी के मुख में भी पड़ता था। उसका पुरोहित यही ध्यान कर रहा था, कि जब जाट का बुड्ढा बाप मरने लगेगा, तब इसी गाय का संकल्प करा लूंगा। कुछ दिनों में दैवयोग से उसके बाप का मरण समय आया। जीभ बन्द हो गई और खाट से भूमि पर ले लिया अर्थात् प्राण छोड़ने का समय आ पहुंचा। उस समय जाट के इष्ट मित्र और सम्बन्धी भी उपस्थित हुए थे। तब पोपजी ने पुकारा कि यजमान ! अब तू इसके हाथ से गोदान करा। जाटने १० रुपया निकाल पिता के हाथ में रखकर बोला 'पढ़ो संकल्प'। पोपजी बोला वाह-वाह ! क्या बाप बारंबार मरता है ? इस समय तो साक्षात् गाय को लाओ ,जो दूध देती हो, बुड्ढी न हो, सब प्रकार उत्तम हो। ऐसी गौ का दान करना चाहिये।

जाटजी – हमारे पास तो एक ही गाय है, उसके बिना हमारे लड़के वालों का निर्वाह न हो सकेगा, इसलिये उसको न दूंगा। लो २० रुपये का संकल्प पढ़ देओ और इन रुपयों से दूसरी दुधारु गाय ले लेना।

पोपजी – वाहजी वाह ! तुम अपने बाप से भी गाय को अधिक समझते हो ? क्या अपने बाप को वैतरणी नदी में डुबाकर दुःख देना चाहते हो ? तुम अच्छे सुपुत्र हुए ?

तब तो पोपजी की ओर सब कुटुम्बी हो गये, क्योकिं उन सबको पहिले ही पोपजी ने बहका रक्खा था और उस समय भी इशारा कर दिया। सबने मिलकर हठ से उसी गाय का दान उसी पोपजी को दिला दिया। उस समय जाट कुछ भी न बोला। उसका पिता मर गया और पोपजी बछड़ा सहित गाय और दोहने की बटलोही को ले अपने घर में गाय बछडे को बांध, बटलोही धर, पुनः जाट के घर

आया और मृतक के साथ श्मशानभूमि में जाकर दाहकर्म कराया । वहाँ भी कुछ कुछ पोपलीला चलाई । पश्चात् दशगात्र सपिंडी कराने आदि में भी उसको मूंडा । महाब्राह्मणों ने भी लूटा और भुक्खड़ों ने भी बहुत सा माल पेट में भरा अर्थात् जब सब क्रिया हो चुकी तब जाट ने जिस किसी के घर से दूध मांग-मूंग निर्वाह किया । चौदहवें दिन प्रातःकाल पोपजी के घर पहुंचा । देखा तो पोपजी गाय दुह, बटलोई भर, पोपजी की उठने की तैयारी थी । इतने ही में जाटजी पहुंचे । उसको देख पोपजी बोला आइये यजमान ! बैठिये !

जाटजी - तुम भी पुरोहित जी इधर आओ ।

पोपजी - अच्छा दूध धर आऊँ ।

जाटजी - नहीं-नहीं, दूध की बटलोई इधर लाओ ।

पोपजी बिचारे जा बैठे और बटलोई सामने धर दी ।

जाटजी - तुम बड़े झूठे हो ।

पोपजी - क्या झूठ किया ?

जाटजी - कहो ! तुमने गाय किसलिये ली थी ?

पोपजी - तुम्हारे पिता के वैतरणी नदी तरने के लिये ।

जाटजी - अच्छा तो तुमने वहां वैतरणी के किनारे पर गाय क्यों न पहुंचाई ? हम तो तुम्हारे भरोसे पर रहे और तुम अपने घर बांध बैठे । न जाने मेरे बाप ने वैतरणी में कितने गोते खाये होंगे ?

पोपजी - नहीं-नहीं, वहां इस दान के पुण्य के प्रभाव से दूसरी गाय बनकर उसको उतार दिया होगा ।

जाटजी - वैतरणी नदी यहां से कितनी दूर और किधर की ओर है ?

पोपजी - अनुमान से कोई तीस करोड़ कोश दूर है, क्योंकि उञ्चास कोटि योजन पृथिवी है और दक्षिण नैर्ऋत दिशा में वैतरणी नदी है ।

जाटजी - इतनी दूर से तुम्हारी चिट्ठी वा तार का समाचार गया हो, उसका उत्तर आया हो , कि वहां पुण्य की गाय बन गई । अमुक के पिता को पार उतार दिया, दिखलाओ ?

पोपजी - हमारे पास गरुडपुराण के लेख के बिना डाक वा तारवर्की दूसरी कोई नहीं ।

जाटजी - इस गरुडपुराण को हम सच्चा कैसे मानें ?

पोपजी - जैसे सब मानते हैं ।

जाटजी - यह पुस्तक तुम्हारे पुरुषाओं ने तुम्हारी जीविका के लिये बनाया है, क्योंकि पिता को बिना अपने पुत्रों के कोई प्रिय नहीं । जब मेरा पिता मेरे पास चिट्ठी पत्री वा तार भेजेगा, तभी मैं वैतरणी नदी के किनारे गाय पहुँचा दूंगा और उनको पार उतार, पुनः गाय को घर ले आ दूध को मैं और मेरे लड़के

वाले पिया करेंगे। लाओ! दूध की भरी हुई बटलोही। गाय, बछड़ा लेकर जाटजी अपने घर को चला।

पोपजी – तुम दान देकर लेते हो, तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा।

जाटजी – चुप रहो। नहीं तो तेरह दिन लों दूध के बिना जितना दुःख हमने पाया है सब कसर निकाल दूंगा।

तब पोपजी चुप रहे और जाटजी गाय बछडा ले अपने घर पहुंचे। जब ऐसे ही जाटजी के से पुरुष हों तो पोपलीला संसार में न चले।

[सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास, पृष्ठ-२४५-२४७]

विद्या के शत्रु खाखी

[स्वामीजी वेदविरुद्ध वैष्णव-मत-सम्प्रदायों की बुराइयों का खण्डन करते हुए खाखी लोगों की लीलाओं का वर्णन करते हैं –]

अब इनमें बहुत से खाखी लकड़े की लंगोटी लगा धूनी तापते, जटा बढ़ाते, सिद्ध का वेश कर लेते हैं। बगुले के समान ध्यानावस्थित होते हैं। गांजा, भांग चरस के दम लगाते; लाल नेत्र कर रखते; सबसे चुटकी-चुटकी अन्न, पिसान, कौड़ी, पैसे मांगते, गृहस्थों के लड़कों को बहकाकर चेले बना लेते हैं। बहुत करके मजूर लोग उनमें होते हैं। कोई विद्या को पढ़ता हो तो उसको पढ़ने नहीं देते, किन्तु कहते हैं कि– 'पठितव्यं तदपि मर्तव्यं दन्तकटाकटेति किं कर्तव्यम्' ॥

सन्तों को विद्या पढ़ने से क्या काम, क्योंकि विद्या पढ़ने वाले भी मर जाते हैं, फिर दन्त कटाकट क्यों करना? साधुओं को चार धाम फिर आना, सन्तों की सेवा करनी, रामजी का भजन करना।

जो किसी ने मूर्ख अविद्या की मूर्ति न देखी हो, तो खाखीजी का दर्शन कर आवे। उनके पास जो कोई जाता है, उनको बच्चा बच्ची कहते हैं, चाहे वे खाखीजी के बाप मां के समान क्यों न हों। जैसे खाखीजी हैं, वैसे ही रूंखड़, सूंखड़, गोदड़िये और जमातवाले सुतरेसाई और अकाली, कानफटे, जोगी, औघड़ आदि सब एक से हैं।

एक खाखी का चेला 'श्री गणेशाय नमः' घोखता-घोखता कुंवे पर जल भरने को गया। वहां पण्डित बैठा था। वह उसको 'स्रीगने साजनमें' घोखते देखकर बोला 'अरे साधु! अशुद्ध घोखता है 'श्री गणेशाय नमः' ऐसा घोख। 'उसने झट लोटा भर गुरुजी के पास जा कहा, कि एक बम्मन मेरे घोखने को असुद्ध कहता है। ऐसा सुनकर झट खाखीजी उठा, कूप पर गया और पण्डित से कहा – 'तू मेरे चेले को बहकाता है? तू गुरु की लंडी क्या पढ़ा है? देख तूं एक प्रकार का पाठ जानता है, हम तीन प्रकार का जानते हैं। 'स्रीगनेसाजन्नमें, 'स्रीगनेसायन्नमें', 'श्री गनेसाय नमें'।

पण्डित - सुनो साधुजी ! विद्या की बात बहुत कठिन है । बिना पढ़े नहीं आती ।

खाखी - चल बे, सब विद्वान् को हमने रगड़ मारे, जो भांग में एकदम घोट सब उड़ा दिये । सन्तों का घर बड़ा है । तू बाबूड़ा क्या जाने ?

पण्डित - देखो ! जो तुमने विद्या पढ़ी होती, तो ऐसे अपशब्द क्यों बोलते ? सब प्रकार का तुमको ज्ञान होता ।

खाखी - अबे तू हमारा गुरु बनता है ? तेरा उपदेश हम नहीं सुनते ।

पण्डित - सुनो कहां से ? बुद्धि ही नहीं है । उपदेश सुनने समझने के लिये विद्या चाहिये ।

खाखी - जो सब वेदशास्त्र पढ़े, सन्तों को न माने, तो जानो कि वह कुछ भी नहीं पढ़ा ।

पण्डित - हां, हम सन्तों की सेवा करते हैं, परन्तु तुम्हारे से हुर्दङ्गों की नहीं करते, क्योंकि सन्त सज्जन, विद्वान्, धार्मिक, परोपकारी पुरुषों को कहते हैं ।

खाखी - देख ! हम रातदिन नंगे रहते, धूनी तापते, गांजा चरस के सैंकड़ों दम लगाते, तीन तीन लोटा भांग पीते, गांजे भांग धतूरा की पत्ती की भाजी [शाक] बना खाते, संखिया और अफीम भी चट निगल जाते, नशा में गर्क रात दिन बेगम रहते, दुनिया को कुछ नहीं समझते, भीख मांगकर टिक्कड़ बना खाते, रात भर ऐसी खांसी उठती जो पास में सोवे उसको भी नींद कभी न आवे, इत्यादि सिद्धियां और साधुपन हम में हैं, फिर तू हमारी निन्दा क्यों करता है ? चेत बाबूड़े ! जो हमको दिक्क करेगा हम तुमको भस्म कर डालेंगे ।

पण्डित - ये सब लक्षण असाधु, मूर्ख और गवर्गण्डों के हैं, साधुओं के नहीं । सुनो ! **'साध्नोति पराणि धर्मकार्याणि स साधुः'** जो धर्मयुक्त उत्तम काम करे, सदा परोपकार में प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमें न हो, विद्वान्, सत्योपदेश से सब का उपकार करे उसको 'साधु' कहते हैं ।

खाखी - चल बे ! तू साधु के कर्म क्या जाने ? सन्तों का घर बड़ा है । किसी सन्त से अटकना नहीं, नहीं तो देख एक चीमटा उठाकर मारेगा, कपाल फुड़वा लेगा ।

पण्डित - अच्छ खाखी ! जाओ अपने आसन पर, हमसे बहुत गुस्से मत हो । जानते हो राज्य कैसा है ? किसी को मारोगे तो पकड़े जाओगे, कारावास भोगोगे, बेंत खाओगे वा कोई तुमको भी मार बैठेगा फिर क्या करोगे ? यह साधु का लक्षण नहीं ।

खाखी - चल बे चेले ! किस राक्षस का मुख दिखलाया ।

पण्डित - तुमने कभी किसी महात्मा का संग नहीं किया है । नहीं तो ऐसे जड मूर्ख न रहते ।

खाखी – हम आप ही महात्मा हैं। हमको किसी दूसरे की गर्ज नहीं।

पण्डित – जिनके भाग्य नष्ट होते हैं, उनकी तुम्हारी सी बुद्धि और अभिमान होता है। खाखी चला गया आसन पर और पण्डित घर को गये।

जब सन्ध्या आरती हो गई, तब उस खाखी को बुड्ढा समझ बहुत से खाखी 'डण्डोत-डण्डोत' कहते साष्टांग करके बैठे। उस खाखी ने पूछा अबे रामदासिया! तू क्या पढ़ा है?

रामदास – महाराज! मैंने 'वेस्नुसहसरनाम'* पढ़ा है।

खाखी – अबे गोविन्ददासिये! तू क्या पढ़ा है?

गोविन्ददास – मैं 'रामसतवराज' पढ़ा हूं ∇ अमुक खाखीजी के पास से। तब रामदास बोला कि महाराज आप क्या पढ़े हैं?

खाखी – हम गीता पढ़े हैं।

रामदास – किसके पास?

खाखी – चल्बे छोकरे! हम किसी को गुरु नहीं करते। देख, हम 'परागराज' में रहते थे। हमको अक्खर नहीं आता था। जब किसी लम्बी धोती वाले पण्डित को देखता था, तब गीता के गोटके में पूछता था, कि इस कलङ्गीवाले अक्खर का क्या नाम है? ऐसे पूछता-पूछता अठारा अध्याय गीता रगड़ मारी। गुरु एक भी नहीं किया।

भला ऐसे विद्या के शत्रुओं को अविद्या घर करके ठहरे नहीं, तो कहां जाय? ये लोग बिना नशा, प्रमाद, लड़ना, खाना, सोना, झांझ पीटना, घण्टा घड़ियाल शंख बजाना, धूनी चिता रखनी, नहाना, धोना, सब दिशाओं में व्यर्थ घूमने फिरने के अन्य कुछ भी अच्छा काम नहीं करते। चाहे कोई पत्थर को भी पिघला लेवे, परन्तु इन खाखियों के आत्माओं को बोध कराना कठिन है, क्योंकि वे बहुधा शूद्रवर्ण मजूर, किसान, कहार आदि अपनी मजूरी छोड़ केवल खाख रमा के वैरागी खाखी आदि हो जाते हैं। उनको विद्या वा सत्सङ्ग आदि का माहात्म्य नहीं जान पड़ सकता।

[सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास, पृष्ठ २५५, २५६]

नाककटा-सम्प्रदाय और नारायण-दर्शन

[स्वामीजी वेदविरुद्ध स्वामीनारायण-सम्प्रदाय और उसके संस्थापक सहजानन्द की लीलाओं की समालोचना करते हुए बताते हैं, कि किस प्रकार 'स्वार्थी चालाक लोग भोले भाले लोगों को अपने जाल में फंसाकर अपना नया मत-सम्प्रदाय स्थापित करते हैं –]

इसमें यह दृष्टान्त उचित होगा, कि जैसे कोई एक चोरी करता पकड़ा गया था। न्यायाधीश ने उसकी नाक काट डालने का दण्ड किया। जब उसकी नाक

* वेस्नुसहसरनाम = विष्णुसहस्रनाम। ∇ रामसतवराज = रामस्तवराज।

काटी गई, तब वह धूर्त नाचने गाने और हंसने लगा । लोगों ने पूछा कि तू क्यों हंसता है ? उसने कहा 'कुछ कहने की बात नहीं है ।' लोगोंने पूछा 'ऐसी कौन सी बात है ?' उसने कहा 'बड़ी भारी आश्चर्य की बात है, हमने ऐसी कभी नहीं देखी ।' लोगोंने कहा 'कहो, क्या बात है ?' उसने कहा कि 'मेरे सामने साक्षात् चतुर्भुज नारायण खड़े हैं । मैं देखकर बड़ा प्रसन्न होकर नाचता गाता अपने भाग्य को धन्यवाद देता हूं, कि मैं नारायण का साक्षात् दर्शन कर रहा हूं ।' लोगों ने कहा 'हमको दर्शन क्यों नहीं होता ?' वह बोला 'नाक की आड़ हो रही है । जो नाक कटवा लो तो नारायण दीखे, नहीं तो नहीं ।'

उनमें से किसी मूर्ख ने चाहा कि नाक जाय तो जाय परन्तु नारायण का दर्शन अवश्य करना चाहिये । उसने कहा कि 'मेरी भी नाक काटो, नारायण को दिखलाओ ।' उसने उसकी नाक काटकर कान में कहा कि 'तू भी ऐसा ही कर,नहीं तो मेरा और तेरा उपहास होगा ।' उसने भी समझा कि अब नाक तो आती नहीं, इसलिये ऐसा ही कहना ठीक है । तब तो वह भी वहां उसी के समान नाचने, कूदने, गाने, बजाने, हंसने और कहने लगा कि 'मुझको भी नारायण दीखता है ।'

वैसे होते होते एक सहस्र मनुष्यों का झुण्ड हो गया और बड़ा कोलाहल मचा और अपने सम्प्रदाय का नाम 'नारायणदर्शी' रक्खा । किसी मूर्ख राजा ने सुना, उनको बुलाया । जब राजा उनके पास गया, तब तो वे बहुत कुछ नाचने कूदने, हंसने लगे । तब राजाने पूछा कि 'यह क्या बात है ?' उन्होंने कहा कि 'साक्षात् नारायण हमको दीखता है ।'

राजा – हमको क्यों नहीं दीखता ?

नारायणदर्शी – जब तक नाक है तब तक नहीं दीखेगा और जब नाक कटवा लोगे तब नारायण प्रत्यक्ष दीखेंगे ।

उस राजा ने विचारा कि यह बात ठीक है । [तब राजा ज्योतिषी से बोला–] 'ज्योतिषीजी ! मुहूर्त्त देखिये ।' ज्योतिषीजी ने उत्तर दिया – 'जो हुकम अन्नदाता ।' दशमी के दिन प्रातःकाल आठ बजे नाक कटवाने और नारायण के दर्शन करने का बड़ा अच्छा मुहूर्त्त है ।' वाह रे पोपजी ! अपनी पोथी में नाक कटने कटवाने का भी मुहूर्त लिख दिया । जब राजा को इच्छा हुई और उन सहस्र नकटों के सीधे बांध दिये तब तो वे बड़े ही प्रसन्न होकर नाचने, कूदने और गाने लगे । यह बात राजा के दीवान आदि कुछ-कुछ बुद्धिवालों को अच्छी न लगी । राजा के एक चार पीढ़ी का बूढ़ा ९० वर्ष का दीवान था । उसको जाकर उसके परपोते ने जो कि उस समय दीवान था, वह बात सुनाई । तब उस वृद्ध ने कहा कि 'वे धूर्त हैं । तू मुझको राजा के पास ले चल । वह ले गया । बैठते समय राजा ने बड़े हर्षित हो के उन नाककटों की बातें सुनाई । दीवान ने कहा कि 'सुनिये महाराज ! ऐसी

शीघ्रता न करनी चाहिये । बिना परीक्षा किये पश्चात्ताप होता है ।'

राजा - क्या ये सहस्त्र पुरुष झूठ बोलते होंगे ?

दीवान - झूठ बोलो वा सच, बिना परीक्षा के सच झूठ कैसे कह सकते हैं ?

राजा - परीक्षा किस प्रकार करनी चाहिये ?

दीवानः - विद्या, सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से ।

राजा - जो पढ़ा न हो वह परीक्षा कैसे करे ?

दीवान - विद्वानों के संग से ज्ञान में वृद्धि करके ।

राजा - जो विद्वान् न मिलें तो ?

दीवान - पुरुषार्थी को कोई बात दुर्लभ नहीं है ।

राजा - तो आप ही कहिये, कैसा किया जाय ?

दीवान - मैं बुड्ढा और घर में बैठा रहता हूं और अब थोडे दिन जीऊँगा भी । इसलिये प्रथम परीक्षा मैं कर लेऊँ । तत्पश्चात् जैसा उचित समझें वैसा कीजियेगा ।

राजा - बहुत अच्छी बात है । 'ज्योतिषीजी दीवान के लिये मुहूर्त्त देखो' ।

ज्योतिषी - जो महाराज की आज्ञा । यही शुक्ल पंचमी १० बजे का मुहूर्त्त अच्छा है । जब पञ्चमी आई, तब राजाजी के पास आकर आठ बजे बुड्ढे दीवानजी ने राजाजी से कहा कि 'सहस्त्र दो सहस्त्र सेना लेके चलना चाहिये ।'

राजा - वहां सेना का क्या काम है ?

दीवान - आपको राज्य-व्यवस्था की जानकारी नहीं है । जैसा में कहता हूं वैसा कीजिये ।

राजा - अच्छ, जाओ भाई, सेना को तैयार करो ।

साढ़े नौ बजे सवारी करके राजा सबको लेकर गया । उसको देखकर वे [नाक-कटे नारायणदर्शी] नाचने और गाने लगे । जाकर बैठे । उनके महन्त जिसने यह सम्प्रदाय चलाया था, जिसकी प्रथम नाककटी थी, उसको बुलाकर कहा कि आज हमारे दीवानजी को नारायण का दर्शन कराओं । उसने कहा अच्छा । दश बजे का समय जब आया तब एक थाली मनुष्य ने नाक के नीचे पकड़ रक्खी । उसने पैना चाकू ले नाक काट थाली में डाल दी और दीवानजी की नाकसे रुधिर की धार छूटने लगी । दीवानजी का मुख मलिन पड़ गया । फिर उस धूर्त्तने दीवानजी के कान में मन्त्रोपदेश किया कि "आप भी हंसकर सबसे कहिये कि मुझ को नारायण दीखता है । अब नाक कटी हुई नहीं आवेगी । जो ऐसा न कहोगे तो तुम्हारा बड़ा ठट्ठा होगा । सब लोग हंसी करेंगे ।" वह इतना कह अलग हुआ और दीवानजी ने अंगोछा हाथ में ले नाक की आड़ में लगा दिया । जब दीवानजी से राजाने पूछा, 'कहिये ! नारायण

दीखता है वा नहीं ?' दीवानजी ने राजा के कान में कहा, कि 'कुछ भी नहीं दीखता । वृथा इस धूर्त्त ने सहस्रों मनुष्यों को भ्रष्ट किया ।' राजा ने दीवान से कहा 'अब क्या करना चाहिये ?' दीवान ने कहा 'इनको पकड़ के कठिन दण्ड देना चाहिये । जब लों जीवें तब लों बन्दीघर में रखना चाहिये और इस दुष्ट को कि जिसने इन सबको बिगाड़ा है, गधे पर चढ़ा बड़ी दुर्दशा के साथ मारना चाहिये ।'

जब राजा और दीवान कान में बातें करने लगे तब उन्होंने डरके भागने की तैयारी की, परन्तु चारों और फौज ने घेरा दे रक्खा था, न भाग सके । राजाने आज्ञा दी कि 'सबको पकड़ बेड़ियां डाल दो और इस दुष्ट का काला मुख कर, गधे पर चढ़ा, इसके कण्ठ में फटे जूतों का हार पहिना, सर्वत्र घुमा, छोकरों से धूल राख इस पर डलवा, चौक-चौक में जूतों से पिटवा, कुत्तों से लुंचवा मरवा डाला जावे । जो ऐसा न होवे तो पुनः दूसरे भी ऐसा काम करते न डरेंगे ।' जब ऐसा हुआ तब नाककटे का सम्प्रदाय बन्द हुआ ।

इसी प्रकार सब वेदविरोधी दूसरों का धन हरने में बड़े चतुर हैं । यह सम्प्रदायों की लीला है । ये स्वामिनारायण मतवाले धनहरे छल-कपटयुक्त काम करते हैं । कितने ही मूर्खों के बहकाने के लिये मरते समय कहते हैं कि सफेद घोड़े पर बैठ सहजानन्द जी मुक्ति को ले जाने के लिये आये हैं और नित्य इस मन्दिर में आया करते हैं ॥

[सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास, पृष्ठ-२६८-२७०]

जिज्ञासु और सम्प्रदायवादी

[स्वामीजी ने वेदविरोधी वाममार्गी, शैव, वैष्णव, शाक्त तथा स्वामिनारायण आदि की बुराइयों का खण्डन किया है, जिससे कि लोग इनके भ्रमजाल में न फंसें और सत्य वैदिक मत को अपनाकर अपना मनुष्य-जन्म सार्थक करें । स्वामीजी के खण्डन-मण्डन के वास्तविक अभिप्राय को न समझकर मतवादी प्रश्न करता है —]

प्रश्न – आप सब का खण्डन करते ही आते हो, परन्तु अपने अपने धर्म में सब अच्छे हैं । खण्डन किसी का न करना चाहिये । जो करते हो तो आप इनसे विशेष क्या बतलाते हो ? जो बतलाते हो, तो क्या आप से अधिक वा तुल्य कोई पुरुष न था ? और न है ? ऐसा अभिमान करना आपको उचित नहीं, क्योंकि परमात्मा की सृष्टि में एक-एक से अधिक, तुल्य और न्यून बहुत हैं । किसी को घमण्ड करना उचित नहीं ।

उत्तर-धर्म सबका एक होता है वा अनेक ? जो कहो अनेक होते हैं तो एक दूसरे के विरुद्ध होते हैं वा अविरुद्ध ? जो कहो कि विरुद्ध होते हैं, तो एक के बिना दूसरा धर्म नहीं हो सकता और जो कहो कि अविरुद्ध हैं, तो पृथक्-पृथक् होना व्यर्थ है । इसलिये धर्म और अधर्म एक ही हैं, अनेक नहीं । यही हम विशेष कहते हैं, कि जैसे सब सम्प्रदायों के उपदेशों को कोई राजा इकट्ठा करे, तो एक

सहस्र से कम नहीं होंगे, परन्तु इनका मुख्य भाग देखो तो पुरानी, किरानी, जैनी और कुरानी चार ही हैं। क्योंकि इन चारों में सब सम्प्रदाय आ जाते हैं। कोई राजा उनकी सभा करके, कोई जिज्ञासु होकर प्रथम वाममार्गी से पूछे — 'हे महाराज ! मैंने आज तक न कोई गुरु और न किसी धर्म का ग्रहण किया है। कहिये ! सब धर्मों में उत्तम धर्म किसका है ? जिसको मैं ग्रहण करूं।'

वाममार्गी – हमारा है।

जिज्ञासु – ये नौ सौ निन्यानवे कैसे हैं ?

वाममार्गी – सब झूठे और नरकगामी हैं। क्योंकि 'कौलात् परतरं नहि'। इस वचन के प्रमाण से हमारे धर्म से परे कोई धर्म नहीं है।

जिज्ञासु – आपका क्या धर्म है ?

वाममार्गी – भगवती का मानना, मद्य मांसादि पंच मकारों का सेवन और रुद्रयामल आदि चौसठ तन्त्रों का मानना इत्यादि। जो तू मुक्ति की इच्छा करता है, तो हमारा चेला हो जा।

जिज्ञासु – अच्छा ! परन्तु और महात्माओं का भी दर्शन कर पूछ पाछ आऊँगा। पश्चात् जिसमें श्रद्धा और प्रीति होगी उसका चेला हो जाऊँगा।

वाममार्गी – अरे ! क्यों भ्रांति में पड़ा है। ये लोग तुझे बहका कर अपने जाल में फंसा देंगे। किसी के पास मत जावे। हमारे ही शरणागत हो जा, नहीं तो पछतावेगा। देख ! हमारे मत में भोग और मोक्ष दोनों हैं।

जिज्ञासु – अच्छा, देख तो आऊँ।

आगे चलकर शैव के पास जाके पूछा तो ऐसा ही उत्तर उसने दिया। इतना विशेष कहा कि बिना शिव, रुद्राक्ष, भस्मधारण और लिङ्गार्चन के मुक्ति कभी नहीं होती। वह उसको छोड़ नवीन वेदान्तीजी के पास गया।

जिज्ञासु – कहो महाराज ! आपका धर्म क्या है ?

वेदान्ती – हम धर्माऽधर्म कुछ भी नहीं मानते। हम साक्षात् ब्रह्म हैं। हममें धर्माऽधर्म कहां है ? यह जगत् सब मिथ्या है। और जो ज्ञानी शुद्ध चेतन हुआ चाहै तो अपने को ब्रह्म मान, जीव-भाव को छोड़, नित्यमुक्त हो जायेगा।

जिज्ञासु – जो तुम ब्रह्म नित्यमुक्त हो, तो ब्रह्म के गुण, कर्म, स्वभाव तुम में क्यों नहीं ? और शरीर में क्यों बंधे हो ?

वेदान्ती – तुमको शरीर दीखते हैं इसी से तू भ्रान्त है। हमको कुछ नहीं दीखता, बिना ब्रह्म के।

जिज्ञासु – तुम देखने वाले कौन और किसको देखते हो ?

वेदान्ती – देखने वाला ब्रह्म और ब्रह्म को ब्रह्म देखता है।

जिज्ञासु - क्या दो ब्रह्म हैं ?
वेदान्ती - नहीं, अपने आपको देखता है ।
जिज्ञासु - क्या कोई अपने कंधे पर आप चढ़ सकता है ? तुम्हारी बात कुछ नहीं केवल पागलपने की है ।

उसने आगे चलकर जैनियों के पास जाकर पूछा । उन्होनें भी वैसा ही कहा, परन्तु इतना विशेष कहा कि 'जिणधर्म' के बिना सब धर्म खोटा । जगत् का कर्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं । जगत् अनादि काल से जैसा का वैसा बना है और बना रहेगा । आ तू हमारा चेला हो जा । क्योंकि हम सम्यक्त्वी अर्थात् सब प्रकार से अच्छे हैं । उत्तम बातों को मानते हैं । जैनमार्ग से भिन्न सब मिथ्यात्वी हैं । आगे चल के ईसाई से पूछा । उसने वाममार्गी के तुल्य सब जवाब सवाल किये । इतना विशेष बतलाया 'सब मनुष्य पापी हैं, अपने सामर्थ्य से पाप नहीं छूटता । बिना ईसा पर विश्वास के पवित्र होकर मुक्ति को नहीं पा सकता । ईसा ने सबके प्रायश्चित्त के लिये अपने प्राण देकर दया प्रकाशित की है । तू हमारा ही चेला हो जा । जिज्ञासु सुनकर मौलवी साहब के पास गया । उनसे भी ऐसे ही जवाब सवाल हुए । इतना विशेष कहा 'लाशरीक खुदा, उसके पैगम्बर और कुरानशरीफ के बिना माने कोई निजात नहीं पा सकता । जो इस मजहब को नहीं मानता वह दोजखी और काफिर है, वाजिबुल्कत्ल है ।' जिज्ञासु सुनकर वैष्णव के पास गया । वैसा ही संवाद हुआ । इतना विशेष कहा कि 'हमारे तिलकछापे देखकर यमराज डरता है ।' जिज्ञासु ने मन में समझा कि जब मच्छर, मक्खी, पुलिस के सिपाही, चोर, डाकू और शत्रु नहीं डरते, तो यमराज के गण क्यों डरेंगे ?

फिर आगे चला तो सब मतवालों ने अपने-अपने को सच्चा कहा । कोई हमारा कबीर सच्चा, कोई नानक, कोई दादू, कोई वल्लभ, कोई सहजानन्द, कोई माध्व आदि को बड़ा और अवतार बतलाते सुना । सहस्र से पूछ उनके परस्पर एक दूसरे का विरोध देख, विशेष निश्चय किया कि इनमें कोई गुरु करने योग्य नहीं । क्यों कि एक-एक की झूठ में नौ सौ निन्यानवे गवाह हो गये । जैसे झूठे दुकानदार वा वेश्या और भडुवा आदि अपनी-अपनी वस्तु की बड़ाई, दूसरे की बुराई करते हैं, वैसे ही ये हैं ।

[तब वह जिज्ञासु किसी ब्रह्मनिष्ठ, परमात्मा को जानने हारे, शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, निःस्वार्थ आप्त विद्वान् की खोज में निकला । सौभाग्य से ऐसा आप्त पुरुष उसे प्राप्त हो गया ।]

जब वह ऐसे पुरुष के पास जाकर बोला कि महाराज ! अब इन सम्प्रदायों के बखेड़ों से मेरा चित्त भ्रान्त हो गया, क्योंकि जो मैं इनमें से किसी एक का चेला होऊँगा तो नौ सौ निन्यानवे से विरोधी होना पड़ेगा । जिसके नौ सौ निन्यानवे शत्रु और एक मित्र है, उसको सुख कभी नहीं हो सकता । इसलिये आप मुझको उपदेश कीजिये जिसको मैं ग्रहण करूं ।

आप्त विद्वान् – ये सब मत अविद्याजन्य विद्याविरोधी हैं। मूर्ख, पामर और जंगली मनुष्य को बहकाकर अपने जाल में फंसा के अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वे बिचारे अपने मनुष्य जन्म के फल से रहित होकर अपना मनुष्य जन्म व्यर्थ गमाते हैं। देख, जिस बात में ये सहस्र एक मत हों, वह वेदमत ग्राह्य और जिसमें परस्पर विरोध हो वह कल्पित, झूठा, अधर्म अग्राह्य है।

जिज्ञासु – इसकी परीक्षा कैसे हो ?

आप्त – तू जाकर इन-इन बातों को पूछ। सबकी एक सम्मति हो जायगी। तब वह उन सहस्र की मंडली के बीच में खड़ा होकर बोला कि सुनो सब लोगो ! सत्यभाषण में धर्म है वा मिथ्या में ? सब एक-स्वर होकर बोले कि सत्यभाषण में धर्म और असत्यभाषण में अधर्म है। वैसे ही विद्या पढ़ने, ब्रह्मचर्य करने, पूर्ण युवावस्था में विवाह, सत्सङ्ग, पुरुषार्थ, सत्य व्यवहार आदि में धर्म और अविद्याग्रहण, ब्रह्मचर्य न करने, व्यभिचार करने, कुसंग, आलस्य, असत्य-व्यवहार, छल, कपट, हिंसा, परहानि करने आदि कर्मों में ? सबने एकमत हो के कहा कि विद्यादि के ग्रहण में धर्म और अविद्यादि के ग्रहण में अधर्म।

तब जिज्ञासु ने सबसे कहा कि तुम इसी प्रकार सब जने एकमत हो सत्यधर्म की उन्नति और मिथ्यामार्ग की हानि क्यों नहीं करते हो ? वे सब बोले – "जो हम ऐसा करें तो हमको कौन पूछे ? हमारे चेले हमारी आज्ञा में न रहें। जीविका नष्ट हो जाय। इसलिये हम जानते हैं, तो भी अपने-अपने मत का उपदेश और आग्रह करते ही जाते हैं, क्योंकि 'रोटी खाइये शक्कर से और दुनिया ठगिये मक्कर से' ऐसी बात है। देखो ! संसार में सूधे सच्चे मनुष्य को कोई नहीं देता और न पूछता। जो कुछ ढोंगबाजी और धूर्त्तता करता है, वही पदार्थ पाता है।"

जिज्ञासु – तो तुम ऐसा पाखण्ड चलाकर अन्य मनुष्यों को ठगते हो, तुमको राजा दण्ड क्यों नहीं देता ?

मतवाले – हमने राजा को भी अपना चेला बना लिया है। हमने पक्का प्रबन्ध किया है; छूटेगा नहीं।

जिज्ञासु – जब तुम छल से अन्य मतस्थ मनुष्यों को ठग उनकी हानि करते हो, परमेश्वर के सामने क्या उत्तर दोगे ? और घोर नरक में पड़ोगे। थोडे जीवन के लिये इतना बड़ा अपराध करना क्यों नहीं छोड़ते ?

मतवाले – जब जैसा होगा तब देखा जाएगा। नरक और परमेश्वर का दण्ड जब होगा तब होगा, अब तो आनन्द करते हैं। हमको प्रसन्नता से धनादि पदार्थ देते हैं, कुछ बलात्कार से नहीं लेते, फिर राजा दण्ड क्यों देवे ?

जिज्ञासु – जैसे कोई छोटे बालक को फुसलाके धनादि पदार्थ हर लेता है, जैसे

उसको दण्ड मिलता है, वैसे तुमको क्यों नहीं मिलता ? क्योंकि – 'अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः' [मनु] जो ज्ञानरहित होता है, वह बालक और जो ज्ञान का देनेवाला है वह पिता और वृद्ध कहाता है । जो बुद्धिमान् विद्वान् है, वह तो तुम्हारी बातों में नहीं फंसता, किन्तु अज्ञानी लोग जो बालक के सदृश हैं, उनको ठगने में तुमको राजदण्ड अवश्य होना चाहिये ।

मतवाले – जब राजा प्रजा सब हमारे मत में हैं, तो हमको दण्ड कौन देनेवाला है ? जब ऐसी व्यवस्था होगी, तब इन बातों को छोड़कर दूसरी व्यवस्था करेंगे ।

जिज्ञासु – जो तुम बैठे-बैठे व्यर्थ माल मारते हो, सो विद्याभ्यास कर गृहस्थों के लड़के लड़कियों को पढ़ाओ तो तुम्हारा और गृहस्थों का कल्याण हो जाय ।

मतवाले – जब हम बाल्यावस्था से लेकर मरण तक के सुखों को छोड़ें, बाल्यावस्था से युवावस्था पर्यन्त विद्या पढ़ने में रहें, पश्चात् पढ़ाने में और उपदेश करने में जन्म भर परिश्र करें, हमको क्या प्रयोजन ? हमको ऐसे ही लाखों रुपये मिल जाते है । चैन करते हैं । उसको क्यों छोड़ें ?

जिज्ञासु – इसका परिणाम तो बुरा है । देखो, तुमको बड़े रोग होते हैं । शीघ्र मर जाते हो । बुद्धिमानों में निन्दित होते हो । फिर भी क्यों नहीं समझते ?

मतवाले – अरे भाई !

टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम् ।
यस्य गृहे टका नास्ति हा टकां टकटकायते ॥१॥
आना अंशकलाः प्रोक्ता रूप्योऽसौ भगवान् स्वयम् ।
अतस्तं सर्व इच्छन्ति रूप्यं हि गुणवत्तमम् ॥२॥

तू लड़का है । संसार की बातें नहीं जानता । देख ! टका* के बिना धर्म, टका के बिना कर्म, टका के बिना परम पद नहीं होता । जिसके घर में टका नहीं है वह 'हाय ! टका टका' करता उत्तम पदार्थों को टक-टक देखता रहता है कि हाय ! मेरे पास टका होता तो इस उत्तम पदार्थ को मैं भोगता ॥१॥ क्योंकि सब कोई सोलह कलायुक्त अदृश्य भगवान् का कथन-श्रवण करते हैं, सो तो नहीं दीखता, परन्तु सोलह आने∇ और पैसे कौडी रूप अंश कला युक्त जो रुपैया है, वह साक्षात् भगवान् है । इसीलिये सब कोई रुपयों की खोज में लगे रहते हैं, क्योंकि सब काम रुपयों से सिद्ध होते हैं ॥२॥

---

* टका – पुराने दो पैसे बराबर का एक सिक्का जो कि धन का प्रतिनिधि समझा जाता था । जैसे 'वह पैसेवाला है' अर्थात् धनवाला है । कहीं कहीं रुपये को भी टका कहते थे।

∇ आना – पहिले रुपये के सोलहवें अंश को आना कहते थे । एक आने में चार पैसे होते थे । अतःरूपये में चौसठ पैसे ।

जिज्ञासु – ठीक है । तुम्हारी भीतर की लीला बाहर आ गई । तुमने जितना यह पाखण्ड खड़ा किया है, वह सब अपने सुख के लिये किया है, परन्तु इसमें जगत् का नाश होता है, क्योंकि जैसा सत्योपदेश से संसार को लाभ पहुंचता है, वैसी ही असत्योपदेश से हानि होती है । जब तुमको धन का ही प्रयोजन था, तो नौकरी और व्यापारादि कर्म करके धन को इकट्ठा क्यों नहीं कर लेते हो ?

मतवाले – उसमें परिश्रम अधिक और हानि भी हो जाती है, परन्तु इस हमारी लीला में हानि कभी नहीं होती, किन्तु सर्वदा लाभ ही लाभ होता है । देखो ! तुलसीदल डाल के चरणामृत दें, कण्ठी बांध देते । चेला मूंडने से जन्म भर को पशुवत् हो जाता है । फिर चाहें जैसे चलावें, चल सकता है ।

जिज्ञासु – ये लोग तुमको बहुत सा धन किसलिये देते हैं ?

मतवाले – धर्म, स्वर्ग और मुक्ति के अर्थ ।

जिज्ञासु – जब तुम ही मुक्त नहीं और न मुक्ति का स्वरूप साधन जानते हो, तो तुम्हारी सेवा करने वालों को क्या मिलेगा ?

मतवाले – क्या इस लोक में मिलता है ? नहीं, किन्तु मरकर पश्चात् परलोक में मिलता है । जितना ये लोग हमको देते हैं और सेवा करते हैं, वह सब लोगों को परलोक में मिल जाता है ।

जिज्ञासु – इनको तो दिया हुआ मिल जाता है वा नहीं ! तुम लेने वालों को क्या मिलेगा ? नरक वा अन्य कुछ ?

मतवाले – हम भजन किया करते हैं । इसका सुख हमको मिलेगा ।

जिज्ञासु – तुम्हारा भजन तो टका ही के लिये है । वे सब टके यहीं पड़े रहेंगे और जिस मांसपिण्ड को यहां पालते हो वह भी भस्म होकर यहीं रह जायेगा । जो तुम परमेश्वर का भजन करते होते तो तुम्हारा आत्मा पवित्र होता ।

मतवाले – क्या हम अशुद्ध हैं ?

जिज्ञासु – भीतर के बड़े मैले हो ।

मतवाले – तुमने कैसे जाना ?

जिज्ञासु – तुम्हारे चाल-चलन व्यवहार से ।

मतवाले – महात्माओं का व्यवहार हाथी के दांत के समान होता है । जैसे हाथी के दांत खाने के भिन्न और दिखलाने के भिन्न होते हैं । वैसे ही भीतर से हम पवित्र हैं और बाहर से लीलामात्र करते हैं ।

जिज्ञासु – जो तुम भीतर से शुद्ध होते तो तुम्हारे बाहर के काम भी शुद्ध होते, इसलिये भीतर भी मैले हो ।

मतवाले – हम चाहे जैसे हों, परन्तु हमारे चेले तो अच्छे हैं ।

जिज्ञासु – जैसे तुम गुरु हो वैसे तुम्हारे चेले भी होंगे ।

मतवाले – एक मत कभी नहीं हो सकता, क्योंकि मनुष्यों के गुण, कर्म, स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं ।

जिज्ञासु – जो बाल्यावस्था में एक सी शिक्षा हो, सत्यभाषणादि धर्म का ग्रहण और मिथ्याभाषणादि अधर्म का त्याग करें तो एकमत अवश्य हो जायें और दो मत अर्थात् धर्मात्मा और अधर्मात्मा सदा रहते हैं, वे तो रहें । परन्तु धर्मात्मा अधिक होने और अधर्मी न्यून होने से संसार में सुख बढता है और जब अधर्मी अधिक होते हैं तब दुःख । जब सब विद्वान् एक सा उपदेश करें तो एक मत होने में कुछ भी विलम्ब न हो ।

मतवाले – आजकल कलियुग है, सतयुग की बात मत कहो ।

जिज्ञासु – कलियुग नाम काल का है । काल निष्क्रिय होने से, कुछ धर्माधर्म के करने में साधक बाधक नहीं, किन्तु तुम ही कलियुग की मूर्तियां बन रहे हो । जो मनुष्य ही सत्ययुग, कलियुग न हों तो कोई भी संसार में धर्मात्मा नहीं होता । ये सब सङ्ग के गुणदोष हैं । स्वाभाविक नहीं ।

इतना कहकर [वह जिज्ञासु] आप्त के पास गया । उनसे कहा कि महाराज ! तुमने मेरा उद्धार किया । नहीं तो मैं भी किसी के जाल में फंस कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता । अब मैं भी इन पाखण्डियों का खण्डन और वेदोक्त सत्य मत का मण्डन किया करूँगा ।

आप्त – यही सब मनुष्यों का विशेष विद्वान् और संन्यासियों का काम है कि सब मनुष्यों को सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन पढ़ा सुना के सत्योपदेश से उपकार पहुंचाना चाहिये ॥

[सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास पृष्ठ, २७५-२८०]

धनसारी के धूर्त्त ठग

चेत रक्खो ! बहुत सी पाखण्ड की बातें तुमको सचमुच दीख पड़ती हैं । जैसे कोई साधु दुकानदार, पुत्रादि देने की सिद्धियां बतलाता है । तब उसके पास बहुत स्त्री जाती हैं और हाथ जोडकर पुत्र मांगती हैं । और बाबाजी सबको पुत्र होने का आशीर्वाद देता है । उसमें से जिस-जिस के पुत्र होता है । वह-वह समझती हैं कि बाबाजी के वचन से ऐसा हुआ । जब उससे कोई पूछे कि सूअरी, कुत्ती, गधी और कुक्कुरी आदिके कच्चे-बच्चे किस बाबाजी के वचन से होते हैं ? तब कुछ भी उत्तर न दे सकेंगी ! जो कोई कहे कि मैं लड़के को जीता रख सकता हूं, तो आप ही क्यों मर जाता है ?

कितने ही धूर्त्त लोग ऐसी माया रचते हैं, कि बड़े बड़े बुद्धिमान् भी धोखा खा जाते हैं, जैसे धनसारी के ठग । ये लोग पांच सात मिल के दूर-दूर देश में जाते हैं । जो शरीर से डौलडाल में अच्छा होता हैं, उसको सिद्ध बना लेते हैं । जिस नगर वा ग्राम में धनाढ्य होते हैं, उसके समीप जंगल में उस सिद्ध को बैठाते हैं । उसके साधक नगर में जा के अजान बनके जिस किसी को पूछते हैं 'तुमने ऐसे महात्मा को यहां कहीं देखा वा नहीं ?' वे ऐसा सुनकर पूछते हैं कि वह महात्मा कौन और कैसा है ?

साधक कहता है – बड़ा सिद्ध पुरुष है । मन की बातें बतला देता है । जो मुख से कहता है, वह हो जाता है । बड़ा योगीराज है । उसके दर्शन के लिये हम अपने घर द्वार छोड़कर देखते फिरते हैं । मैंने किसी से सुना था कि वे महात्मा इधर की ओर आये हैं ।

गृहस्थ कहता है – जब वह महात्मा तुमको मिले तो हमको भी कहना । दर्शन करेंगे और मन की बात पूछेंगे । इसी प्रकार दिन भर नगर में फिरते और प्रत्येक को उस सिद्ध की बात कहकर रात्रि को इकट्ठे सिद्धसाधक होकर खाते पीते और रहते हैं । फिर भी प्रातःकाल नगर वा ग्राम में जा के उसी प्रकार दो तीन दिन कहकर, फिर चारों साधक किसी एक-एक धनाढ्य से बोलते हैं, कि वह महात्मा मिल गये । तुमको दर्शन करना हो तो चलो । वे जब तैयार होते हैं , तब साधक उनसे पूछते हैं कि तुम क्या बात पूछना चाहते हो ? हम से कहो । कोई पुत्र की इच्छा करता, कोई धन की, कोई रोगनिवारण की और कोई शत्रु को जीतने की । उनको वे साधक ले जाते हैं । सिद्ध-साधकों ने जैसा संकेत किया होता है अर्थात् जिसको धन की इच्छा हो उसको दाहिनी ओर, जिसको पुत्र की इच्छा हो उसको सम्मुख, जिसको रोगनिवारण की इच्छा हो उसको बांई ओर और जिसको शत्रु जीतने की इच्छा हो उसको पीछे से ले जा के सामने वाले के बीच में बैठाते हैं । जब नमस्कार करते हैं, उसी समय वह सिद्ध अपनी सिद्धाई की झपट से उच्च स्वर से बोलता है 'क्या यहां हमारे पास पुत्र रखे हैं, जो तू पुत्र की इच्छा करके आया है' ? इसी प्रकार धन की इच्छा वाले से 'क्या यहां थैलियां रक्खी हैं, जो धन की इच्छा करके आया' ? 'फकीरों के पास धन कहां धरा है ?' रोगवाले से 'क्या हम वैद्य है, जो तू रोग छुड़ाने की इच्छा से आया ? हम वैद्य नहीं जो तेरा रोग छुडावें, जा किसी वैद्य के पास ।' परन्तु जब उसका पिता रोगी हो तो उसका साधक अंगूठा, जो मां रोगी हो तो तर्जनी, जो भाई रोगी हो तो मध्यमा, जो स्त्री रोगी हो तो अनामिका, जो कन्या रोगी हो तो कनिष्ठिका अंगुली चला देता है । उसको देख वह सिद्ध कहता है कि तेरा पिता रोगी है । तेरी माता, तेरा भाई, तेरी स्त्री और तेरी कन्या रोगी है । तब तो वे चारों के चारों बड़े मोहित हो जाते हैं । साधक लोग उनसे कहते हैं, 'देखो ! जैसा हमने कहा था वैसे ही हैं वा नहीं !

दानाध्यक्ष – वाह वाह ! बारह रुपये कहां गये ?

स्वार्थी ने जैसा हुआ था वैसा कह दिया ।

दानाध्यक्ष – अच्छा तो चार मेरे गये और आठ तेरे ।

स्वार्थी – अच्छा जैसी आपकी इच्छा हो ।

तब छब्बीस लिये दानाध्यक्ष ने और बाईस स्वार्थी ने ले के कहा कि मैं घर हो आऊँ, कल आ जाऊँगा । वह दूसरे दिन आया । उससे दानाध्यक्ष ने कहा कि तू गंगाजी पर जाकर राजा का जप कर और ले यह धोती, अंगोछा, पंचपात्र, माला और गोमुखी । वह गङ्गा पर गया । वहां स्नान कर माला ले के जप करने बैठा । विचारा कि जो दानाध्यक्ष ने कहा था वही मन्त्र है । ऐसा वह मूर्ख समझ गया । "सरक माला खटक मणका मैं राजा का जप करूँ, मैं राजा का जप करूँ, मैं राजा का जप करूँ" जपने लगा ।

तब किसी दूसरे मूर्ख ने विचारा कि जब उसका लग गया है, तो मेरा भी लग जायगा । चलो । वह गया । वैसा ही हुआ । चलते समय दानाध्यक्ष बोले कि तू जा । जैसा वह करता है वैसा करना । वह गया । वैसे ही आसन पर बैठकर, [पहले] पढ़ने वाले [= जप करने वाले] का मन्त्र सुनकर जपने लगा कि "तू करे सो मैं करूँ, तू करे सो मैं करूँ ।" वैसे ही तीसरा कोई धूर्त जा के सब कुछ कर करा लाया । चलते समय दानाध्यक्ष ने कहा कि जब तक निर्वाह होता दीखे तब तक करना । वह भी इसी अभिप्राय को मन्त्र समझ के वहां जाकर, जप करने को बैठ के जपने लगा कि "ऐसा निभेगा कब तक, ऐसा निभेगा कब तक" वैसे ही चौथा कोई मूर्ख सब प्रबन्ध कर करा के गङ्गा पर जाने लगा तब दानाध्यक्षने कहा कि जब तक निभे तब तक निर्वाह करना । वह भी इसको मन्त्र ही समझ के, गङ्गा पर जाके जप करने को बैठ के, उन तीनों का मन्त्र सुना तो एक कहता है – "मैं राजा का जप करूँ, मैं राजा का जप करूँ, मैं राजा का जप करूँ ।" दूसरा – "तू करे सो मैं करूँ, तू करे सो मैं करूँ ।" तीसरा – "ऐसा निभेगा कब तक, ऐसा निभेगा कब तक, ऐसा निभेगा कब तक" और [तब] चौथा जपने लगा कि, "जब तक निभे तब तक, जब तक निभे तब तक, जब तक निभे तब तक ॥"

ध्यान रखो कि सब अधर्मी और स्वार्थी लोगों की लीला ऐसी ही हुआ करती है, कि अपने मतलब के लिये अनेक अन्यायरूप कर्म करके अन्य मनुष्यों को ठग लेते हैं । अभाग्य है ऐसे मनुष्यों का कि जिनके आत्मा अविद्या और अधर्मान्धकार में गिरके कदापि सुख को प्राप्त नहीं होते ॥ ['व्यवहारभानु' पृष्ठ ३२४-३२७]

धर्मात्मा राजा और उसके राज्याधिकारी

[स्वामीजी का मन्तव्य है, कि जहां धर्मात्मा राजा होता है एवं उसके राज्याधिकारी भी धर्मात्मा होते हैं, वहां धूर्तों की दाल नहीं गलती और सज्जन लोग सुख पाते हैं –]

यहां किसी एक धार्मिक राजा का दृष्टान्त सुनो —

कोई एक विद्वान् धर्मात्मा राजा था । उसके दानाध्यक्ष के पास किसी धूर्त ने जाकर कहा कि मेरी जीविका करा दो ।

दानाध्यक्ष – तुमने कौन कौन सा शास्त्र पढ़ा और क्या क्या काम करते हो ?

अर्थी – मैं कुछ नहीं पढ़ा और बीस वर्ष तक खेलता कूदता गाय-भैंस चराता खेतों में डोलता रहा और माता-पिता के सामने आनन्द करता था । अब सब घर का बोझ [मुझ पर] पड़ गया है । आपके पास आया हूं, कुछ करा दीजिये ।

दानाध्यक्ष – नौकरी चाकरी करो तो करा देंगे ।

अर्थी – मैं ब्राह्मण साधु जहां तहां बाजारों में उपदेश करने वाला हूं । मुझ से ऐसा परिश्रम कहां बन सकता है ?

दानाध्यक्ष – तू विद्या के बिना ब्राह्मण, परोपकार के बिना साधु और विज्ञान के बिना उपदेश का काम कैसे कर सकता होगा ? इसलिये नौकरी चाकरी करना हो तो कर, नहीं तो चला जा ।

वह मूर्ख वहां से निराश हो चला कि यहां मेरी दाल न गलेगी । चलो राजा से कहें । जब राजा के पास जाके वैसे ही कहा, तब राजा ने वैसा ही जवाब दिया कि जैसा दानाध्यक्ष जी ने कहा है, वैसा करना हो तो कर, नहीं तो चला जा । वह वहां से चला गया ।

इसके पश्चात् एक योग्य विद्वान् ने आके दानाध्यक्ष से मिलके बातचीत की तो दानाध्यक्ष ने समझ लिया कि यह बहुत अच्छा सुपात्र विद्वान् है । जाके राजा से मिलके कहा कि पण्डित जी से आप भी कुछ बातचीत कीजिये । वैसा ही किया । तब राजा ने परीक्षा करके जाना कि यह अतिश्रेष्ठ विद्वान् है । ऐसा जानकर उसने कहा कि आपको हजार रुपये मासिक मिलेगा । आप सदा हमारी पाठशाला में विद्यार्थिओं को पढ़ाया और धर्मोपदेश किया कीजिये । वैसा ही हुआ । धन्य ऐसे राजा और दानाध्यक्षादि हैं, कि जिनके हृदय में विद्या, परमात्मा और धर्मरूप सूर्य प्रकाशित होता है ॥

['व्यवहारभानु' पृष्ठ ३२७,३२८]

अन्धेर नगरी गवर्गण्ड राजा । टके सेर भाजी टके सेर खाजा ॥

[स्वामीजी राजा तथा प्रजा की परिभाषा करते हुए कहते हैं, कि जो मनुष्य विद्या, न्याय, शौर्य आदि गुणयुक्त होकर प्रजा का पुत्रवत् पालन करे वह राजा और जो जनता धर्मयुक्त व्यवहारों से पदार्थों को सिद्ध करके राजसभा को कर देकर पुत्रादि के समान राजा आदि को प्रसन्न रखे वह प्रजा कहाती है । इसके विपरीत जो मनुष्य प्रजा का अहित करना चाहे वह न राजा और जो राजा का अहित करना चाहे वह न प्रजा कहलाने योग्य है । ऐसे अहितकारी राजा और प्रजा को एक दूसरे के शत्रु और डाकू समझना चाहिये । ऐसों का अवश्य नाश होता है ।] जैसे –

एक बड़ा धार्मिक विद्वान् सभाध्यक्ष राजा यथावत् राजनीति से युक्त होकर प्रजा-पालनादि [कार्य] उचित समय में ठीक ठीक करता था । उसकी नगरी का नाम 'प्रकाशवती', राजा का नाम 'धर्मपाल', व्यवस्था का नाम 'यथायोग्य करनेहारी' था । वह तो मर गया । पश्चात् उसका लड़का जो महा अधर्मी मूर्ख था, उसने गद्दी पर बैठ के सभा से कहा कि जो मेरी आज्ञा माने वह मेरे पास रहे और जो न माने वह यहां से निकल जाय । तब बड़े बड़े धार्मिक सभासद् बोले, कि जैसे आपके पिता सभा की सम्मति के अनुकूल वर्तते थे, वैसे आपको भी वर्तना चाहिये ।

राजा – उनका काम उनके साथ गया । अब मेरी जैसी इच्छा होगी वैसा करूँगा ।

सभा – जो आप सभा का कहना न करेंगे, तो राज्य का नाश अथवा आपका ही नाश हो जायगा ।

राजा – मेरा तो जब होगा तब होगा, परन्तु तुम यहां से चले जाओ, नहीं तो तुम्हारा नाश तो अभी कर दूंगा ।

सभासदों ने कहा "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ।" जिसका शीघ्र विनाश होना होता है, उसकी बुद्धि पहले ही से विपरीत हो जाती है । चलिये यहां अपना निर्वाह न होगा । वे चले गये और महामूर्ख धूर्त खुशामदी लोगों की मण्डली उसके साथ हो गई । राजा ने कहा कि आज से मेरा नाम "गवर्गण्ड", नगरी का नाम "अन्धेर" और जो मेरा पिता और सभासद रात में सोते और दिन में राज्यकार्य करते थे, वैसे ही उससे विपरीत हम लोग दिन में सोवें और रात में राज्यकार्य करेंगे । उनके सामने उनके राज्य में सब चीज अपने अपने भाव पर बिकती थी, हमारे राज्य में केशर कस्तूरी से लेके मिट्टी पर्यन्त सब चीज एक टके सेर बिकेगी ।

जब ऐसी प्रसिद्धि देश देशान्तरों में हुई, तब किसी स्थान में दो गुरु-शिष्य वैरागी अखाड़ों में मल्लविद्या करते, पांच पांच सेर खाते और बड़े मोटे थे । चेले ने गुरु से कहा कि चलिये 'अन्धेर नगरी' में, वहां दश टकों से दश सेर मलाई आदि माल चाब के खूब तैयार होंगे । गुरु ने कहा कि वहां गवर्गण्ड के राज्य में कभी न जाना चाहिये, क्योंकि किसी दिन खाया पिया सब निकल जायेगा, किन्तु

प्राण भी बचाना कठिन होगा। फिर जब चेले ने हठ किया, तब गुरु भी मोह से साथ चला गया। वहां जाके अन्धेरनगरी के समीप बगीचे में निवास किया और खूब माल चबाते और कुश्ती किया करते थे।

इतने में कभी एक आधी रात में किसी साहूकार का नौकर एक हजार रुपयों की थैली लेके किसी साहूकार की दुकान पर जमा करने को जाता था। बीच में उचक्के आकर रुपयों की थैली छीन कर भागे। उसने जब पुकारा तब थाने के सिपाहियों ने आकर पूछा कि क्या है ? उसने कहा कि अभी उचक्के मुझसे रुपयों को छीनकर ले जाते हैं। सिपाही धीरे धीरे चल के किसी भले आदमी को पकड़ लाये कि तू ही चोर है। उसने उनसे कहा कि मैं फलाने साहूकार का नौकर हूं, चलो पूछ लो।

सिपाही – हम नहीं पूछते, चल राजा के पास।

[उन्होंने उसे] पकड़कर राजा के पास ले जा के कहा कि इसने हजार रुपयों की थैली चोर ली है। गवर्गण्ड और आसपास वालों में से किसी ने कुछ न पूछा न गाछा। वह बिचारा पुकारता ही रहा कि मैं उस साहूकार का नौकर हूं, परन्तु किसी ने न सुना। झट हुक्म चढ़ा दिया कि इसको शूली पर चढ़ा दो। शूली लोहे की बरछी और सरों के वृक्ष के समान अणीदार होती है। उस पर मनुष्य को चढ़ा, उलय कर, नाभि में उसकी अणी लगा देने से पार निकल जाने पर, वह कुछ विलम्ब में मर जाता है।

गवर्गण्ड के नौकर भी उसके सदृश क्यों न हों ? क्योंकि **"समान [शील] व्यसनेषु मैत्री"** जिनका स्वभाव एक सा होता है, उन्हीं की परस्पर मित्रता भी होती है। जैसे धर्मात्माओं की धर्मात्माओं, पण्डितों की पण्डितों, दुष्टों और व्यभिचारियों की व्यभिचारियों के साथ मित्रता होती है। न कभी धर्मात्माओं का अधर्मात्मादि और न अधर्मात्माओं का धर्मात्माओं के साथ मेल हो सकता है।

गवर्गण्ड के सिपाहियों ने विचारा कि शूली तो मोटी और मनुष्य है दुबला, अब क्या करना चाहिये। तब राजा के पास जाके सब बात कही। उस पर गवर्गण्ड ने हुक्म दिया, कि अच्छा तो इसको छोड़ दो और जो कोई शूली के सदृश मोटा हो उसको पकड़ के इसके बदले चढ़ा दो। तब गवर्गण्ड के सिपाहियों ने विचारा कि शूली के सदृश खोजो। तब किसी ने कहा कि इस शूली के सदृश तो बगीचे वाले गुरु चेला दोनों वैरागी ही हैं। सब बोले ठीक ठीक तो उसका चेला ही है। जब बहुत से सिपाहियों ने बगीचे में जाके उसके चेले से कहा कि तुमको महाराज का हुक्म है, शूली पर चढ़ने के लिये चल। तब तो वह घबड़ा के बोला कि हमने तो कोई अपराध नही किया।

सिपाही – अपराध तो नहीं किया परन्तु तू ही शूली के समतुल्य है, हम क्या करें ?

साधु – क्या दूसरा कोई नहीं है ?

सिपाही - नहीं, बहुत बर-बर मत कर, चल । महाराज का हुक्म है ।
तब चेला बोला कि अब क्या करना चाहिये ?
गुरु - हमने तुझ से प्रथम ही कहा था, कि अन्धेर नगरी गवर्गण्ड के राज्य में मुफ्त के माल चाबने को मत चलो, तूने नहीं माना । अब हम क्या करें ? जैसे हो वैसा भोग । देख, अब सब खाया पिया निकल जायेगा ।
चेला - अब किसी प्रकार बचाओ तो यहां से दूसरे राज्य में चले जायें ।
गुरु - एक युक्ति है बचने की । सो करो तो बचने का सम्भव है । [वह यह है] कि शूली पर चढ़ते समय तू मुझको हटा, मैं तुझको हटाऊँ । इस प्रकार परस्पर लड़ने से कुछ बचने का उपाय निकल आवेगा ।
चेला - अच्छा तो चलिये ।

सब बातें दूसरे देश की भाषा में की । इससे सिपाही कुछ भी न समझे । सिपाहियोंने कहा 'चलो, देर मत लगाओ, नहीं तो बांध के ले जायेंगे । साधुओं ने कहा कि हम प्रसन्नतापूर्वक चलते हैं, तुम क्यों बांधो ।
सिपाही - अच्छा तो चलो ।
जब शूली के पास पहुंचे तब दोनों लंगोटे बांध, मिट्टी लगा के खूब लड़ने लगे ।
गुरुने कहा कि शूली पर मैं ही चढूंगा ।
चेला - चेला का धर्म नहीं कि मेरे होते गुरु शूली पर चढ़े ।
गुरु - मेरा भी धर्म नहीं की मेरे सामने चेला शूली पर चढ़ जाय । हां ! मुझको मारकर पीछे भले ही शूली पर चढ़ जाना । क्यों बकता है ? चुप रह । समय चला जाता है ।

ऐसा कहकर शूली पर चढ़ने लगा । तब चेले ने गुरु को पकड़ कर, धक्का देकर अलग किया । आप चढ़ने लगा । फिर गुरु ने भी वैसा ही किया । तब तो गवर्गण्ड के सिपाही कामदार सब तमाशा देखते थे । उन्होंने कहा कि तुम शूली पर चढ़ने के लिये क्यों लड़ते हो ? तब दोनों साधु बोले कि हमसे इस बात को मत पूछो । चढ़ने दो । क्योंकि हमको ऐसा समय मिलना दुर्लभ है ।

यह बात तो यहां ऐसे ही होती रही और गवर्गण्ड के पास खुशामदियों की सभा भरी हुई थी । आप वहां से उठ और भोजन करके सिंहासन पर बैठकर सबसे बोला कि बैंगन का शाक अत्युत्तम होता है । सुनकर खुशामदी लोग बोले कि धन्य है महाराज की बुद्धि को । बैंगन का शाक चाखते ही शीघ्र उसकी परीक्षा कर ली । सुनिये महाराज ! जब बैंगन अच्छा है, तभी तो परमेश्वर ने उसके ऊपर मुकुट, चारों ओर कलंगी, ऊपर का वर्ण घनश्याम, भीतर का वर्ण मक्खन के समान बनाया है । ऐसा सुनकर गवर्गण्ड और सब सभा के लोग अतिप्रसन्न होकर हँसे ।

तब गवर्गण्ड अपने महलों में सोने को गया । डौढ़ी बन्द हुई । तब तक

खुशामदी लोगों ने चौकी पहरेवालों से कहा कि जब तक प्रातःकाल हम न आवें, तब तक किसी का मिलाप महाराज के साथ मत होने देना । उसने कहा कि अच्छा, आज के दिन कुछ गहरी प्राप्ति नहीं हुई ।

खुशामदी – आज न हुई कल हो जायेगी । हमारा और तुम्हारा तो साझा ही है । जो कुछ खजाने और प्रजा से निकल कर अपने घर पहुंचे वही अपना है । जब राजा को नशा और रंडीबाजी आदि खेल में सब लोग मिलकर लगा देंगे तभी अपना गहरा होगा । खजाना अपना ही है और सब आपस में मिले रहो, फूटना न चाहिये । सबने कहा 'हां जी हां, यही ठीक है ।'

ये तो चले गये । जब गवर्गण्ड सोने गया तब गरम मसाले पड़े हुए बैंगन के शाकने गर्मी की और जङ्गल की हाजत हुई । ले लोटा जाजरू में गया । रात भर खूब जुलाब लगा । रात्रि में कोई तीस दस्त हुए । रात्रि भर में नींद न आई । बड़ा व्याकुल रहा । उसी समय वैद्यों को बुलवाया । वे भी गवर्गण्ड के सदृश ही थे । ऊटपटांग औषधियां दी । उन्होंने और भी बिगाड किया, क्योंकि गवर्गण्ड के पास बुद्धिमान् क्योंकर ठहर सकते हैं । जब प्रातःकाल हुआ तब खुशामदियों की मण्डली ने सभा का स्थान घेर के दासियों से पूछा कि महाराज क्या करते हैं ?

दासी – आज रात भर जुलाब लगा, व्याकुल रहे ।

खुशामदी – क्या कोई रात्रि को महाराज के पास आया भी था ?

दासी – दस बारह जने आये थे ।

खुशामदी – कौन कौन आये थे ? उनके नाम भी जानती हो ?

दासी – हां, तीन के नाम जानती हूं, अन्य के नहीं ।

तब तो खुशामदी लोग विचारने लगे कि किसी ने अपनी निन्दा तो न कर दी हो । इसलिये आज हम में से एक दो पुरुषों को रात में भी डौढ़ी में अवश्य रहना चाहिये । सबने कहा बहुत ठीक है । इतने में जब आठ बजे के समय मुखमलीन गवर्गण्ड आकर गद्दी पर बैठा । तब खुशामदियों ने भी उससे सो गुना मुख बिगाड़कर शोकाकृतिमुख होकर ऊपर से झूठ मूठ अपनी चेष्टा जताई ।

गवर्गण्ड – बैंगन का शाक खाने में तो स्वादु होता है, परन्तु बादी करता है, उससे हमको बहुत दस्त लगने से रात्रि भर दुःख हुआ ।

खुशामदी – वाह वाहजी वाह महाराज ! आपके सदृश न कोई राजा हुआ और न होगा और न कोई इस समय है । क्योंकि महाराज ने खाते समय उसके गुणों की परीक्षा की और रात्रि भरमें उसके दोष भी जान लिये । देखिये महाराज ! जब बैंगन दुष्ट है, तभी तो परमेश्वर ने उसके ऊपर खूंटी, चारों ओर कांटे लगा दिये । ऊपर का वर्ण कोयलों के समान और भीतर का रंग कोढ़ी की चमड़ी के सदृश किया है ।

गवर्गण्ड – क्योंजी ! कल रात को तो तुमने इसकी प्रशंसा मुकुट आदि का अलंकार [बताया] और इस समय उन्हीं की निन्दा में खूंटी आदि की उपमा देते हो ? अब हम किसको सच्ची मानें ?

खुशामदी – [घबरा के बोले कि] धन्य धन्य धन्य है आपकी विशाल बुद्धि को ! क्योंकि कल सन्ध्या की बात अब तक भी नहीं भूले । सुनिये महाराज ! हमको साले बैंगन से क्या लेना देना था । हमको तो आपकी प्रसन्नता में प्रसन्नता और अप्रसन्नता में अप्रसन्नता है । जो आप रात को दिन और दिन को रात, सत्य को झूठ वा झूठ को सत्य कहें, सो सभी ठीक है ।

गवर्गण्ड – हां हां, नौकरों का यही धर्म है, कि कभी स्वामी को किसी बात में प्रत्युत्तर न दें, किन्तु हाँजी-हाँजी ही करते जायँ ।

खुशामदी – ठीक है । राजाओं का यही धर्म है, कि किसी बात की चिन्ता कभी न करें । रातदिन अपने सुख में मग्न रहें । नौकर चाकरों पर सदा विश्वास करके सब काम उनके आधीन रक्खें । बनिये बक्काल के समान हिसाब किताब कभी न देखें । जो कुछ सुपेद का काला और काले का सुपेद करें सो ही ठीक रक्खें । जिस दरख्त को लगावें उसको कभी न काटें । जिसको ग्रहण किया उसको कभी न छोड़ें चाहे कितना ही अपराध करे । क्योंकि जब राजा होके भी किसी काम पर ध्यान देकर आप अपने आत्मा, मन और शरीर से परिश्रम किया तो जानो उनका कर्म फूट गया और जब हिसाब किताब आदि में दृष्टि की तो वह महादरिद्र है, राजा नहीं ।

गवर्गण्ड – क्योंजी ! कोई मेरे तुल्य राजा और तुम्हारे सदृश सभासद् कभी हुए होंगे वा नहीं ?

खुशामदी – नहीं नहीं, कदापि नहीं । न हुआ, न होगा और न है ।

गवर्गण्ड – सत्य है, क्या ईश्वर भी हमसे अधिक उत्तम होगा ?

खुशामदी – कभी नहीं हो सकता । क्योंकि उसको किसने देखा है ? आप तो साक्षात् परमेश्वर हैं । क्योंकि आपकी कृपा से दरिद्र का धनाढ्य, अयोग्य का योग्य और अकृपा से धनाढ्य का दरिद्र, योग्य से अयोग्य तत्काल ही हो सकता है ।

इतने में नियत किये प्रातःकाल को सायंकाल मानकर सोने को सब गये । जब सायंकाल हुआ तब फिर सभा लगी । इतने में सिपाहियों ने आकर साधुओं के झगड़े की बात कही । सुनकर गवर्गण्ड ने सभासहित वहां जाके साधुओं से पूछा कि तुम शूली पर चढ़ने के लिये क्यों सुख मानते हो ?

साधु – तुम हम से मत पूछो, चढ़ने दो, समय चला जाता है । ऐसा समय हमको बड़े भाग्य से मिला है ।

गवर्गण्ड – इस समय में शूली पर चढ़ने से क्या फल होगा ?

साधु – हम नहीं कहते, जो चढ़ेगा वह फल देख लेगा, हमको चढ़ने दो ।

गवर्गण्ड – नहीं नहीं । जो फल होता हो सो कहो । सिपाहियो ! इनको इधर पकड़ लाओ । [सिपाही उन्हें] पकड़ लाये ।

साधु – हमको क्यों नहीं चढ़ने देते ? झगड़ा क्यों करते हो ?

गवर्गण्ड – जब तक तुम इसका फल न कहोगे, तब तक हम कभी न चढ़ने देंगे ।

साधु – दूसरे को कहने की तो यह बात नहीं है, परन्तु तुम हठ करते हो तो सुनो । जो कोई मनुष्य इस समय में शूली पर चढ़कर प्राण छोड़ देगा वह चतुर्भुज होकर विमान में बैठके आनन्दस्वरूप स्वर्ग को प्राप्त होगा ।

गवर्गण्ड – अहो ! ऐसी बात है, तो मैं ही चढ़ता हूं, तुमको न चढ़ने दूंगा ।

ऐसा कहकर झटपट ही शूली पर चढ़कर प्राण छोड़ दिये । साधु अपने आसन पर आये । चेले ने कहा कि महाराज चलिये, अब यहां न रहना चाहिये । गुरु ने कहा की अब कुछ चिन्ता नहीं, जो पाप की जड़ गवर्गण्ड था, वह मर गया । अब धर्मराज्य होगा, क्या चिन्ता है, यहीं रहो ।

उसी समय उसका छोटा भाई बड़ा विद्वान् पिता के सदृश धार्मिक और जो उसके पिता के समान धार्मिक सभासद् और प्रजा में सत्पुरुष जो कि उसके पिता के मरने के पश्चात् गवर्गण्ड ने निकाल दिये थे, वे सब आये [उन्होंने] सुनीत नामक छोटे भाई को राज्याधिकारी करके, उस मुरदे को शूली पर से उतार के जला दिया और खुशामदियों की मण्डली को अत्युग्र दण्ड देके कुछ को कैद कर लिया और बहुतों को नौका में बिठाकर किसी, समुद्र के बीच निर्जन द्वीपान्तर में बन्दीखाने में डालकर अत्युत्तम विद्वान् धार्मिकों की सम्मति से श्रेष्ठों का पालन, दुष्टों का ताडन; विद्या, विज्ञान और सत्यधर्म की वृद्धि आदि उत्तम कर्म करके पुरुषार्थ से यथायोग्य राज्य की व्यवस्था चलाने लगे और पुनः प्रकाशवती नगरी का 'प्रकाशवती' नाम प्रकाशित हुआ और उचित समय पर सब उत्तम काम होने लगे ।

जब जिस देशस्थ प्राणियों का अभाग्य उदय होता है, तब गवर्गण्ड के सदृश स्वार्थी, अधर्मी, प्रजा का नाश करने हारे राजा, धनाढ्य और खुशामदियों की सभा और उनके समान अधर्मी, उपद्रवी, राज-विद्रोही प्रजा भी होती है और जब जिस देशस्थ प्राणियों का सौभाग्य उदय होने वाला होता है, तब सुनीत के समान धार्मिक विद्वान् [राजा], पुत्रवत् प्रजा का पालन करने वाली राजसहित सभा और धार्मिक पुरुषार्थी पिता के समान राजप्रबन्ध में प्रीतियुक्त मङ्गलकारिणी प्रजा होती है ।

['व्यवहारभानु' पृष्ठ ३२९-३३७)

॥ इति पूर्वखण्डः ॥

ओ३म्

दयानन्द-दृष्टान्त-निधिः

उत्तरखण्डः

[स्वामी दयानन्द सरस्वती का संक्षिप्त जीवन-चरित;
एक अकल्पित महादृष्टान्त]

: संकलयिता-सम्पादक :
सत्यानन्द वेदवागीश

दयानन्द-दृष्टान्तनिधिः [उत्तरखण्डः]

स्वामी दयानन्द सरस्वती [संक्षिप्त जीवनचरित]

जन्म, मातापिता और बाल्यकाल

गुजरात के काठियावाड [= सौराष्ट्र] क्षेत्र में प्राचीन मोरवी रियासत के टंकारा नामक ग्राम में औदीच्य ब्राह्मण श्री करसनजी लालजी तिवाड़ी के घर में भाद्रपद शुक्ला नवमी वि० संवत् १८८१ के दिन स्वामी दयानन्द का जन्म हुआ। इनकी माता का नाम अमृताबेन [= अमू बा] था। स्वामीजी का बचपन का नाम मूलशंकर [= मूलजी] था। परिवार के लोग उन्हें दयाराम अथवा दयालजी नाम से भी पुकारते थे।

मूलशंकर के पिता करसनजी लालजी तिवाड़ी मोरवी राज्य की ओर से टंकारा के जमेदार [= वहीवटदार] थे। राज्य की ओर से उनके पास कुछ सिपाही भी रहते थे। साथ ही कई गांवो में उनकी जिमीदारी भी थी। उनकी पर्याप्त प्रतिष्ठा भी थी और वे सुसम्पन्न थे।

पांच वर्ष की आयु में अक्षराभ्यास कराके मूलशंकर को अनेक श्लोक तथा मन्त्र स्मरण कराये गये। आठ वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत हुआ। तदनन्तर उसे विशेष विद्याध्ययन में लगाया गया। चौदह वर्ष की आयु तक उसने सम्पूर्ण शुक्ल यजुर्वेद और अन्य वेदों के भी कुछ मन्त्र कण्ठाग्र कर लिये। साथ ही व्याकरण के शब्दरूपावली आदि छोटे छोटे ग्रन्थ भी कण्ठस्थ कर लिये।

इसी अन्तराल में पक्के शिवभक्त पिता ने अपने पुत्र को भी पक्का शैव मतानुयायी बनाने के उद्देश्य से शिवलिंग आदि की पूजा करने, शिवपुराण की कथा सुनने तथा व्रत-उपवास रखने आदि कर्मों में लगाने का प्रयास किया।

शिवरात्रि-व्रत और मूर्तिपूजा से विरक्ति

चौदहवें वर्ष में एक विशेष घटना ने बालक मूलशंकर के मन को पाषाण-पूजा से विरक्त कर दिया। उस वर्ष शिवरात्रि के अवसर पर पिता के दृढ आग्रह के कारण त्रयोदशी से बालक ने भी उपवास रक्खा। चतुर्दशी के दिन शिवालय में अपने पिता तथा अन्य भक्तों के साथ मूलशंकर भी रात्रि-जागरण हेतु गया। उसने शिवकथा में सुना था कि व्रतोपवासी मनुष्य को शिवरात्रि के दिन शिव के दर्शन होते हैं। इसलिये पिता आदि सबके सो जाने पर भी मूलशंकर दृढतापूर्वक जागता रहा। शिव के तो दर्शन नहीं हुए पर, शिवपिंडी पर चूहों की उछलकूद को देखकर बालक के मन में महान् सन्देह हो गया कि कथा के शिव तो वृषभ पर आरूढ़, त्रिशूलधारी, डमरूवादक और महाशक्तिशाली हैं। जब कि इस पिंडी को चूहे दूषित

कर रहे हैं। इतने पर भी यह शिवप्रतिमा – प्रतीकार करना तो दूर – हिलती जुलती भी नहीं है। इससे उसे निश्चय हो गया कि यह शिव नहीं है। पिता को जगाकर जब बालक ने अपना संशय बताया, तो पिता ने 'शिव तो कैलाशवासी हैं, उनकी मूर्ति की पूजा करने से वे प्रसन्न हो जाते हैं' कहकर उसको शान्त करने का प्रयास किया, पर मूलशंकर की जिज्ञासा का समाधान नहीं हुआ। तब वह पिता की आज्ञा लेकर अपने घर आ गये और इस व्रतोपवास को व्यर्थ समझकर माता से कहकर मिष्टान्न भोजन कर लिया।

मृत्यु पर विजय पाने हेतु ज्ञानार्जन और योगसाधना की लालसा

इसके पश्चात् पांच वर्ष के अन्तराल में दो घटनाएँ ऐसी घटीं, जिन्होंने मूलशंकर को वैराग्यवान् बना दिया। जब वह सोलह वर्ष का था, तब उससे दो वर्ष छोटी बहिन की हैजे से मृत्यु हो गई। सम्भवतः बालक ने यही पहली मौत देखी थी। इसे देखकर उसे बड़ा धक्का लगा और डर लगा कि ऐसे मेरी भी मृत्यु होगी! इस घटना के तीन वर्ष बाद मूलशंकर से अतीव प्यार करने वाले चाचा की मृत्यु हो गई। उस समय वह फूट फूट कर रोया और उसे निश्चय हो गया कि सबकी ही मृत्यु होती है, अतः यह संसार असार है। अतएव मृत्यु से बचने का कोई उपाय ढूंढ़ना चाहिये।

व्रत-पूजा तथा कर्मकाण्ड से वह पहले ही विरक्त हो चुका था। अब उसने विशेष विद्या-प्राप्ति की इच्छा से काशी जाने हेतु आग्रह किया, किन्तु माता पिता ने समीपस्थ ग्राम के एक विद्वान् के पास ही उसे पढ़ाने की व्यवस्था कर दी। इसी अध्ययनादि के अन्तराल में उसे कुछ लोगों से पता लगा कि योगाभ्यास से मृत्यु पर विजय पाई जा सकती है। परिणामतः उसकी योग में रुचि उत्पन्न हो गई और योगियों से मिलकर योगसाधना सीखने की उत्कट इच्छा हुई। माता पिता को जब यह पता लगा तो उन्होंने उसका विवाह करने का निर्णय ले लिया। तब तक मूलशकंर २१ वर्ष के हो चुका था।

गृहत्याग

घर में विवाह की तैयारियों को देखकर विवाह-बंधन से बचने के लिये वि० सं० १९०३ में एक दिन सन्ध्या के समय वह घर से भाग खड़ा हुआ।

मृत्यु पर विजय पाने और सच्चे शिव की खोज करने के लिये ही मूलशंकर का यह गृहत्याग था। कुछ समय पश्चात् सायला ग्राम में उसने एक ब्रह्मचारी जी से ब्रह्मचर्य की दीक्षा ली और अब उसका नाम 'शुद्धचैतन्य' हो गया। वे भ्रमण करते हुए कार्तिक मास में सिद्धपुर के मेले में पहुंचे। मूलशंकर के गृहत्याग के समय से ही उसे ढूंढने में तत्पर उनके पिता ने किसी वैरागी साधु से सूचना पाकर,

सिपाहियों के साथ जाकर, मेले में उसे जा पकड़ा। कड़ा पहरा होने पर भी, तीव्र वैराग्यवान् मूलशंकर (= शुद्धचैतन्य) मौका पाकर फिर भाग निकले।

संन्यासग्रहण

सिद्धपुर से अहमदाबाद होते हुए शुद्धचैतन्य बड़ौदा के चेतन मठ पहुंचे। वहां संन्यासी ब्रह्मानंद आदि के सम्पर्क में रहकर वे नवीन वेदान्ती बन गये। फिर उन्होंने चाणोद कर्नाली में परमानन्द परमहंस से वेदान्तसार, वेदान्त-परिभाषा आदि ग्रन्थ पढ़े। तदनन्तर वहीं वन में प्रवास में ठहरे हुए दण्डी संन्यासी पूर्णानन्द सरस्वती से शुद्धचैतन्य ब्रह्मचारी ने विधिवत् संन्यास-दीक्षा ली और अब वे स्वामी दयानन्द सरस्वती बन गये।

योगियों का अनुसन्धान और योगाभ्यास

तत्पश्चात् उन्होंने व्यासाश्रम जाकर योगी योगानन्द से कुछ योगक्रियाएँ सीखीं और 'सिनोर' में संवत् १९०५ में कृष्ण शास्त्री से व्याकरण का अभ्यास किया। तदनन्तर अहमदाबाद के दुग्धेश्वर मन्दिर में संवत् १९०७ में भ्रमणशील योगिराज शिवानन्द गिरि तथा ज्वालानन्दपुरी से योगविद्या का व्यावहारिक और क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त किया। संवत् १९०९ में आबू पर्वत पर गये। योगियों के अनुसन्धान के क्रम में वहां उन्होंने कुछ और रीतियां सीखीं। वि० संवत् १९१२ के आरंभ में दयानन्द हरिद्वार के कुम्भ मेले में पहुंचे। त्यागी और तत्त्वदर्शी कुछ महानुभावों से सत्संग के साथ ही उन्होंने वहां चण्डी के जङ्गल में तथा पश्चात् हृषीकेशमें योगानुशीलन किया। वि० संवत् १९१२ की वसन्त में वे टिहरी पहुंचे। वहां एक श्रद्धालु राजपण्डित द्वारा उपलब्ध कराये गये कुछ तन्त्रगन्थों को देख-पढ़कर उनके प्रति दयानन्द को भारी घृणा हो गई। क्योंकि उनमें मांसाहार, अगम्य-गमन और मद्यपान आदि पैशाचिक कर्मों को श्रेष्ठ और मुक्ति का साधन बताया गया था।

कुछ समय पश्चात् दयानन्द श्रीनगर होते हुए केदारघाट गये। वहां एक निर्मलचरित्र वाले 'गङ्गागिरि' नामक साधु के साथ दो मास तक योगतत्त्व-संलाप करते रहे। वर्षाकाल की समाप्ति पर वे वहां से प्रस्थान करके रुद्रप्रयाग और अगस्त्य मुनि आश्रम आदि स्थानों पर भ्रमण करते हुए शिवपुरी पहुँचे तथा शीतकाल वहीं बिताया। वहां से नीचे उतरकर भ्रमण करते हुए गुप्तकाशी, गौरी कुण्ड, भीमगुफा और त्रियुगीनारायण-मन्दिर देखते हुए पुनः वे केदारघाट आ गये। वहां उन्होंने केदारनाथ मन्दिर के जङ्गम-सम्प्रदायी पण्डे-पुजारियों के विषय में ज्ञातव्य बातें जान लीं।

दुर्गम यात्रा में शरीर क्षतविक्षत

हिमाच्छादित पर्वतों और उनकी गुफाओं में योगसिद्ध महापुरुष तपस्वी-जनों के मिल जाने की आशा से दयानन्द इन पर्वतमालाओं में भ्रमणार्थ उत्सुक थे। स्थानीय लोगों द्वारा अनुत्साहित करने पर भी वे निराश नहीं हुए। वे पहले तुंगनाथ शिखर

पर पहुंचे । वहां पर पण्डों और मूर्ति वालों की लीला देखकर वे नीचे उतरने लगे । एक अनजान मार्ग पर चल पड़ने से वे एक ऐसे निर्जन दुर्गम तथा पत्थरों-चट्टानों और झाड़ियों से भरे हुए स्थान पर पहुंच गये, जहां से निकलने में उनके वस्त्र फट गये, शरीर क्षत-विक्षत हो गया और पैर कांटों से छिद गये । अतः वे लुञ्जपुञ्ज हो गये । किन्तु मनःसंयम और प्रबल पुरुषार्थ से कुछ दूरी पर जाकर एक मार्ग प्राप्त किया और कुटीवासियों से पता पाकर ओखीमठ पहुंचे । धन-सम्पत्ति-सम्पन्न और धर्म एवं साधुओं के आडम्बरों से परिपूर्ण ओखीमठ के क्रिया-कलापों और रीतिनीति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये वहां वे कुछ दिन रुके ।

महन्त द्वारा मठाधीश होने का प्रलोभन

ओखीमठ के महन्त तो दयानन्द से इतने प्रभावित हुए कि वे उनसे उत्तराधिकारी शिष्य बनने के लिये प्रलोभन-भरा आग्रह करने लगे । किन्तु वित्तैषणा से विरक्त दयानन्द ने यह कहकर उसे अस्वीकार कर दिया कि मुझे धन की ही लालसा होती तो मैं गृहत्याग ही क्यों करता, इस मठ की जितनी सम्पत्ति है, उससे मेरे पिता की सम्पत्ति भी किसी अंश में कम न थी । वहां से दयानन्द जोशीमठ चले गये । वहां दाक्षिणात्य शास्त्रियों, योगियों और संन्यासियों के संसर्ग में कुछ दिन रहकर वे बदरीनारायण के मन्दिर पहुंचे ।

सिद्धानुसन्धान में अलखनंदा के स्रोत की यात्रा में शरीर लहूलुहान

बदरीनारायण मन्दिर के प्रधान पण्डे रावलजी के साथ कुछ दिन दयानन्द की वेदादि-शास्त्र-विषयक चर्चा हुई । रावलजी द्वारा योगिजनों के समीपस्थ स्थानों में मिलने की कुछ सम्भावना प्रकट करने पर दयानन्द उनके अनुसन्धान में लग गये । इस अनुसन्धान-क्रम में इन्हें एक दिन जैसा कष्टपीड़ित होना पड़ा वैसा जीवन में कभी नहीं होना पड़ा । उस दिन वे बदरीनारायण मन्दिर से निकल कर पर्वतों के नीचे नीचे चलकर बर्फीली अलखनन्दा नदी के तट पर पहुंचे । वहां से वे नदी के किनारे किनारे उसके उद्‌गम स्थान की ओर चल पड़े । सब पर्वत और पर्वतीय स्थान एवं मार्ग बर्फ से ढके हुए थे । बड़े क़ष्ट से उस बर्फीले मार्ग को पार करके वे अलखनन्दा के उत्पत्ति स्थान पर पहुंच गये । वहां चारों ओर ऊँची पर्वतमालाओं के अतिरिक्त कुछ न था । मार्ग ढूंढ़ने के उद्देश्य से नदी को पार करने का निश्चय किया । आठ दस हाथ चौड़ी नदी का पाट नुकीले ब्रर्फ के खण्डों से युक्त तलेवाले जल से पूरिपूर्ण था । उसे पार करते हुए प्यास और भूख से व्याकुल दयानन्द के दोनों पांव लहू-लुहान हो गये, शरीर ठंड से निर्जीव सा हो गया और पैर डगमगाने लगे । मानों वहीं शरीर अन्तिम बार के लिये गिर जायेगा । पर अत्यन्त कष्ट और अति परिश्रम से उन्होंने नदी को पार किया । शरीर पर से कपड़े उतारकर उन्हें फाड़कर रक्तरंजित पांवों पर पट्टियां बांधीं । अतिकष्ट-प्राप्ति के कारण शरीर को वहीं समाप्त करने की

बात मन में आई, पर तुरत दयानन्द ने इस मनोनिर्बलता पर विजय पा ली और आजीवन ज्ञानानुशीलन-पूर्वक स्वलक्ष्यप्राप्ति हेतु प्रयत्न करने का संकल्प लिया। कुछ समय तक विश्राम करके सामर्थ्य जुटाकर वे वसुधारा तीर्थ होते हुए रात्रि में बदरीनारायण मन्दिर लौटे।

गंगा के मैदानी तट पर भ्रमण

अगले दिन से पुनः यात्रा आरंभ की। पर्वतों और घने वनों में घूमते हुए वे चिल्किया घाट होते हुए रामपुर आ पहुंचे। वहां वे रामगिरि नामक साधु के मठ में कुछ समय रहे। वहां से चलकर दयानन्द काशीपुर और द्रोणसागर में कुछ काल रहकर शीतकाल के अन्त में मुरादाबाद तथा सम्भल होते हुए गढमुक्तेश्वर की मैदानी गंगा की भूमि पर आ गये।

लगभग दो वर्ष का उपर्युक्त समय दयानन्द ने दुर्गम, बर्फीले जङ्गलबहुल पर्वतीय स्थानो में योगियों तपस्वियों के अनुसन्धान के उद्देश्य से बिताया। भूख, प्यास, थकावट, कंटक-पाषाण-पीड़ा, हिम-बाधा, वस्त्राभाव आदि कोई भी विघ्न उन्हें अपने लक्ष्य से डिगा नहीं सका।

शवपरीक्षा से तन्त्रोक्त नाडीचक्र का मिथ्यात्व

गढ़मुक्तेश्वर के गङ्गातट पर विचरते हुए दयानन्द को हठयोग-प्रदीपिका तथा योगबीज आदि ग्रन्थों में वर्णित नाडीचक्रों से सम्बद्ध संशय का निवारण करने का सुयोग प्राप्त हो गया। एक दिन गङ्गा में बहते हुए शव को निकालकर दयानन्द ने नाभि, हृदय तथा ग्रीवा आदि भागों का तीखी छुरी से छेदन करके उन ग्रन्थों के वर्णन के साथ मिलान किया। परन्तु शव-शरीर में कुछ भी वैसा न पाकर उन मिथ्या ग्रन्थों को उस शव के साथ ही बहा दिया।

तत्पश्चात् दयानन्द फर्रुखाबाद और शृङ्गीरामपुर होते हुए कानपुर पहुंचे। वि० संवत् १९१३ के प्रथम पांच मास वे कानपुर से इलाहाबाद के बीच भ्रमण करते रहे। फिर मिर्जापुर में एक मास बिताकर काशी पहुंचे। वहां पं० काकाराम तथा राजाराम आदि विद्वानों से वार्तालाप किया। बारह दिन के पश्चात् वे चुनारगढ गये।

नर्मदा-उद्गम की विकट यात्रा

वहां से नर्मदा नदी के उद्गम स्थान को देखने की इच्छा से वे दक्षिण की ओर चल दिये। कुछ देर पीछे पर्वतीय निर्जन भीषण वन में पहुंच गये। वहां एक बड़े रीछ ने गरज कर उन पर आक्रमण किया, पर दयानन्द के दण्ड को देखकर वह भाग गया। बाघ, रीछ, हाथी आदि जगंली पशुओं से भरे हुए उस बीहड़ जंगल में वे अकेले ही ईश्वर-विश्वास के बल पर आगे बढ़ते गये। अन्त में वे एक ऐसे महा घने जगंल में पहुंच गये जहां से बाहर निकलने को कोई मार्ग न था। उन्होंने

कहीं बैठकर, कहीं घुटनों के बल सरक सरक कर उस वनस्थली को पार किया। परन्तु इस प्रयत्न में उनके सारे वस्त्र लीर लीर हो गये और कांटे लगने से शरीर से अनेक स्थानो पर रक्त धारा बहने लगी। रक्त बहने से और भूख प्यास की व्याकुलता से पीड़ित होते हुए भी दयानन्द आगे बढ़ते ही गये। मानो संसार में किसी भी प्रकार की विपत्ति और विघ्न उनके लिये विपत्ति और विघ्न न थे। सायंकाल वे एक छोटे ग्राम के निकट पहुंचे। ग्रामवासियों के आग्रह करने पर भी वे उनके समीप नहीं ठहरे क्योंकि वे मूर्तिपूजक थे। समीपस्थ जगंल में ही उन्होंने रात्रि-विश्राम किया।

इसी यात्राक्रम में वे एक बार लोगों के चेताने पर भी एक भुतहा मकान में ठहरे। दयानन्द पर भूतों का क्या असर होना था। लोगों को तो भ्रान्ति और कुशंका रूपी भूत ही डराते रहते हैं। यह घटना वि० संवत् १९१३ के कार्तिक मास के आसपास की है। तदनन्तर दयानन्द नर्मदा के मूलस्रोत को देखने के बाद नर्मदा-तट पर भ्रमण करते हुए महात्माओं का सत्संग करते रहे। इस यात्रा में उनके तीन वर्ष लग गये।

मथुरा में दंडी विरजानन्द से आर्ष-अध्ययन

वि० संवत् १९१७ की शरद ऋतु में सम्भवतः दयानन्द हाथरस तथा मुरसान होते हुए मथुरा पहुंचे। स्वामी विरजानन्द सरस्वती – जो कि 'दण्डी' नाम से विख्यात थे – की यशोगाथा दयानन्द स्वामी पूर्णाश्रम से तथा अन्य पण्डितों से सुन चुके थे। योगविद्या में पर्याप्त सफलता पा लेने पर भी सच्चे शिव की प्राप्ति और मृत्यु पर विजय पाने हेतु अपेक्षित सद्ज्ञान की तीव्र पिपासा दयानन्द के हृदय में पूर्ववत् वर्तमान थी। इसी हेतु वे स्वामी विरजानन्द की शरण के अभिलाषी थे। स्वामी विरजानन्द सरस्वती यद्यपि प्रायः जन्मान्ध थे, तथापि वे पूर्ण प्रज्ञाचक्षु थे। प्रायः सर्वशास्त्रों में उनकी पैठ थी। वे ऋषिकृत ग्रन्थों के मर्मज्ञ और पक्षपोषक थे और पाणिनिकृत अष्टाध्यायी एवं पातञ्जल-महाभाष्य के अद्वितीय व्याख्याता थे।

मथुरा आकर दयानन्द पहले रंगेश्वर के मन्दिर में ठहरे। स्वामी विरजानन्द की सेवा में उपस्थित होकर ज्ञानार्जन की स्वेच्छा प्रकट करने पर "जो कुछ मनुष्यप्रणीत ग्रन्थ तुमने पढ़े हैं उन्हें तुम भूल जाओ और उन ग्रन्थों को यमुना में प्रवाहित कर दो, किंच अपने निवास तथा भोजन का स्थायी प्रबन्ध करके आओ" यह स्पष्ट आदेश दयानन्द को इस नये गुरु से मिला।

मथुरा में दयानन्द के सहायक

अनार्ष ग्रन्थों को बहा देना कथञ्चित् सरल था। विशिष्ट योगबल से स्मृत अनार्ष ज्ञान को भुला देना भी केनापि प्रकारेण सम्भव था। परन्तु सर्वथा अनजान

बात मन में आई, पर तुरत दयानन्द ने इस मनोनिर्बलता पर विजय पा ली और आजीवन ज्ञानानुशीलन-पूर्वक स्वलक्ष्यप्राप्ति हेतु प्रयत्न करने का संकल्प लिया। कुछ समय तक विश्राम करके सामर्थ्य जुटाकर वे वसुधारा तीर्थ होते हुए रात्रि में बदरीनारायण मन्दिर लौटे।

गंगा के मैदानी तट पर भ्रमण

अगले दिन से पुनः यात्रा आरंभ की। पर्वतों और घने वनों में घूमते हुए वे चिल्किया घाट होते हुए रामपुर आ पहुंचे। वहां वे रामगिरि नामक साधु के मठ में कुछ समय रहे। वहां से चलकर दयानन्द काशीपुर और द्रोणसागर में कुछ काल रहकर शीतकाल के अन्त में मुरादाबाद तथा सम्भल होते हुए गढमुक्तेश्वर की मैदानी गंगा की भूमि पर आ गये।

लगभग दो वर्ष का उपर्युक्त समय दयानन्द ने दुर्गम, बर्फीले जङ्गलबहुल पर्वतीय स्थानो में योगियों तपस्वियों के अनुसन्धान के उद्देश्य से बिताया। भूख, प्यास, थकावट, कंटक-पाषाण-पीड़ा, हिम-बाधा, वस्त्राभाव आदि कोई भी विघ्न उन्हें अपने लक्ष्य से डिगा नहीं सका।

शवपरीक्षा से तन्त्रोक्त नाडीचक्र का मिथ्यात्व

गढ़मुक्तेश्वर के गङ्गातट पर विचरते हुए दयानन्द को हठयोग-प्रदीपिका तथा योगबीज आदि ग्रन्थों में वर्णित नाडीचक्रों से सम्बद्ध संशय का निवारण करने का सुयोग प्राप्त हो गया। एक दिन गङ्गा में बहते हुए शव को निकालकर दयानन्द ने नाभि, हृदय तथा ग्रीवा आदि भागों का तीखी छुरी से छेदन करके उन ग्रन्थों के वर्णन के साथ मिलान किया। परन्तु शव-शरीर में कुछ भी वैसा न पाकर उन मिथ्या ग्रन्थों को उस शव के साथ ही बहा दिया।

तत्पश्चात् दयानन्द फर्रुखाबाद और शृङ्गीरामपुर होते हुए कानपुर पहुंचे। वि० संवत् १९१३ के प्रथम पांच मास वे कानपुर से इलाहाबाद के बीच भ्रमण करते रहे। फिर मिर्जापुर में एक मास बिताकर काशी पहुंचे। वहां पं० काकाराम तथा राजाराम आदि विद्वानों से वार्तालाप किया। बारह दिन के पश्चात् वे चुनारगढ गये।

नर्मदा-उद्गम की विकट यात्रा

वहां से नर्मदा नदी के उद्गम स्थान को देखने की इच्छा से वे दक्षिण की ओर चल दिये। कुछ देर पीछे पर्वतीय निर्जन भीषण वन में पहुंच गये। वहां एक बड़े रीछ ने गरज कर उन पर आक्रमण किया, पर दयानन्द के दण्ड को देखकर वह भाग गया। बाघ, रीछ, हाथी आदि जगंली पशुओं से भरे हुए उस बीहड़ जंगल में वे अकेले ही ईश्वर-विश्वास के बल पर आगे बढ़ते गये। अन्त में वे एक ऐसे महा घने जगंल में पहुंच गये जहां से बाहर निकलने को कोई मार्ग न था। उन्होंने

कहीं बैठकर, कहीं घुटनों के बल सरक सरक कर उस वनस्थली को पार किया। परन्तु इस प्रयत्न में उनके सारे वस्त्र लीर लीर हो गये और कांटे लगने से शरीर से अनेक स्थानो पर रक्त धारा बहने लगी। रक्त बहने से और भूख प्यास की व्याकुलता से पीड़ित होते हुए भी दयानन्द आगे बढ़ते ही गये। मानो संसार में किसी भी प्रकार की विपत्ति और विघ्न उनके लिये विपत्ति और विघ्न न थे। सायंकाल वे एक छोटे ग्राम के निकट पहुंचे। ग्रामवासियों के आग्रह करने पर भी वे उनके समीप नहीं ठहरे क्योंकि वे मूर्तिपूजक थे। समीपस्थ जगंल में ही उन्होंने रात्रि-विश्राम किया।

इसी यात्राक्रम में वे एक बार लोगों के चेताने पर भी एक भुतहा मकान में ठहरे। दयानन्द पर भूतों का क्या असर होना था। लोगों को तो भ्रान्ति और कुशंका रूपी भूत ही डराते रहते हैं। यह घटना वि० संवत् १९१३ के कार्तिक मास के आसपास की है। तदनन्तर दयानन्द नर्मदा के मूलस्रोत को देखने के बाद नर्मदा-तट पर भ्रमण करते हुए महात्माओं का सत्संग करते रहे। इस यात्रा में उनके तीन वर्ष लग गये।

मथुरा में दंडी विरजानन्द से आर्ष-अध्ययन

वि० संवत् १९१७ की शरद ऋतु में सम्भवतः दयानन्द हाथरस तथा मुरसान होते हुए मथुरा पहुंचे। स्वामी विरजानन्द सरस्वती – जो कि 'दण्डी' नाम से विख्यात थे – की यशोगाथा दयानन्द स्वामी पूर्णाश्रम से तथा अन्य पण्डितों से सुन चुके थे। योगविद्या में पर्याप्त सफलता पा लेने पर भी सच्चे शिव की प्राप्ति और मृत्यु पर विजय पाने हेतु अपेक्षित सद्ज्ञान की तीव्र पिपासा दयानन्द के हृदय में पूर्ववत् वर्तमान थी। इसी हेतु वे स्वामी विरजानन्द की शरण के अभिलाषी थे। स्वामी विरजानन्द सरस्वती यद्यपि प्रायः जन्मान्ध थे, तथापि वे पूर्ण प्रज्ञाचक्षु थे। प्रायः सर्वशास्त्रों में उनकी पैठ थी। वे ऋषिकृत ग्रन्थों के मर्मज्ञ और पक्षपोषक थे और पाणिनिकृत अष्टाध्यायी एवं पातञ्जल-महाभाष्य के अद्वितीय व्याख्याता थे।

मथुरा आकर दयानन्द पहले रंगेश्वर के मन्दिर में ठहरे। स्वामी विरजानन्द की सेवा में उपस्थित होकर ज्ञानार्जन की स्वेच्छा प्रकट करने पर "जो कुछ मनुष्यप्रणीत ग्रन्थ तुमने पढ़े हैं उन्हें तुम भूल जाओ और उन ग्रन्थों को यमुना में प्रवाहित कर दो, किंच अपने निवास तथा भोजन का स्थायी प्रबन्ध करके आओ" यह स्पष्ट आदेश दयानन्द को इस नये गुरु से मिला।

मथुरा में दयानन्द के सहायक

अनार्ष ग्रन्थों को बहा देना कथञ्चित् सरल था। विशिष्ट योगबल से स्मृत अनार्ष ज्ञान को भुला देना भी केनापि प्रकारेण सम्भव था। परन्तु सर्वथा अनजान

मथुरा नगरी में निवास तथा भोजन की स्थायी व्यवस्था का कार्य प्रायः असम्भव सा था। पर ईश्वर-विश्वासी पर अहैतुकी ईश्वरकृपा अवश्य होती है। मथुरानिवासी गुजराती ब्राह्मण श्री अमरलाल जोषी ने दयानन्द के भोजन का भार सहर्ष अपने ऊपर ले लिया। जिसे उन्होंने दयानन्द के पूरा मथुरा-निवास काल [= लगभग तीन वर्ष] तक श्रद्धापूर्वक निभाया। दयानन्द आजीवन इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते रहे। निवास-हेतु विश्राम घाट पर लक्ष्मीनारायण मन्दिर की निचली मंजिल में एक कोठरी किराये पर मिल गई। श्री गोवधर्न सर्राफ ने दीप-तैल की और श्री हरदेव पत्थरवाले ने दूध की व्यवस्था कर दी।

दयानन्द का नये गुरु से अध्ययनसत्र आरम्भ हो गया। दयानन्द को अब तक विरजानन्द सरीखा गुरु न मिला था। विरजानन्द को भी दयानन्द सदृश मेधावी, निर्मल-हृदय, विरक्त, पाखण्ड-विरोधी एवं ज्ञानपिपासु शिष्य पहले नहीं मिला था। अल्प समय में ही व्याकरण के अष्टाध्यायी एवं महाभाष्य ग्रन्थों का विशिष्ट ज्ञान शिष्य ने गुरु से प्राप्त कर लिया। तदनन्तर वेदार्थोपयोगी निघण्टु-निरुक्त आदि का तथा अन्य शास्त्रों का भी आलोचन-अध्ययन किया। अध्ययन के अन्तराल में अपने इस नये शिष्य की योग्यता एवं शक्ति को पहचानकर गुरु देश की दुर्दशा, वेद-विरुद्ध मतमतान्तरों के विस्तार, अनार्षग्रन्थों के प्रसार आदि पर चिन्ता व्यक्त करते हुए उनके निराकरणार्थ भी अवश्य उससे विचार विमर्श करते थे। गुरुसेवा, गुरु-आज्ञापालन, अधीत विषय पर अधिकार आदि से भी दयानन्द ने गुरु को सदा सन्तुष्ट किया। लगभग तीन वर्ष में विरजानन्द से दयानन्द ने पठनीय विषय पढ़ लिया। यहां आकर ही दयानन्द की ज्ञानपिपासा शान्त हुई।

गुरु की आज्ञापालन-हेतु दयानन्द का जीवन-समर्पण

विद्या-समाप्ति पर गुरु-दक्षिणा की वेला आई। स्वामी विरजानन्द ने अपने इस विशिष्ट एवं स्नेहपात्र शिष्य दयानन्द से कहा "मैं तुझसे धन नहीं मांगता बल्कि तेरा जीवन चाहता हूं। तू अपना जीवन मुझे दक्षिणा में दे दे और प्रतिज्ञा कर कि जितने दिन जीवित रहेगा उतने दिन वैदिक धर्म को प्रतिष्ठित करने और भारत के अज्ञानान्धकार को नष्ट करने का यत्न करेगा।" गुरुमुख से अपने लिये यह गुरुतर स्नेहस्निग्ध आदेश सुनकर अद्वितीय शिष्य दयानन्द ने तुरत "तथास्तु" कहकर अपनी जीवनरूपी अनुपम दक्षिणा गुरुचरणों में समर्पित कर दी। अहा! कैसी गुरुभक्ति है!!

धर्मोपदेश और पाखण्डखण्डन-यात्रा का आरम्भ

स्वामी दयानन्द अपने गुरु की आज्ञा का पालन करने हेतु मथुरा से विदा हुए। यह वि० संवत् १९२१ की ग्रीष्म ऋतु थी। मथुरा से दयानन्द आगरा पहुंचे। वहां पं० सुन्दरलाल, पं० बालमुकुन्द और दयाराम ने स्वामीजी के सत्संग का विशेष लाभ उठाया। यहां स्वामीजी १८-१८ घंटों की समाधि लगाते थे। सत्संग में अनार्ष ग्रन्थों

का और भागवत पुराण का खण्डन करते थे। स्वामी कैलाशपर्वत तथा मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या भी आगरे में स्वामीजी के सम्पर्क में आये।

आगरा नगर में रहते हुए कभी साक्षात् जाकर तथा कभी पत्र द्वारा स्वामीजी गुरुवर विरजानन्द से स्व-शंकाओं का समाधान करवाते रहे। दो वर्ष आगरे में ऋग्वेद का मनन करते हुए और योगाभ्यास करते हुए सत्संग-धर्मोपदेश करके स्वामीजी ग्वालियर गये।

ग्वालियर में उस समय महाराजा जियाजीराव की ओर से भागवत पुराण के १०८ पारायण का आयोजन होने वाला था। भागवत पुराण की अवैदिकता सिद्ध करने हेतु स्वामीजी ने दिग्दिगन्त से आये पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये बुलाया, पर उनमें से प्रत्यक्ष रूप से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

राजस्थान में धर्मोपदेश

स्वामीजी ग्वालियर से करौली गये। वहां के महाराजा मदनपाल ने स्वामीजी के भोजन आदि का प्रबन्ध करवा दिया। सात दिन पश्चात् स्वामीजी खुशहालगढ़ गये। वहां के ब्राह्मणवर्ग ने उनका सुसत्कार किया।

तत्पश्चात् स्वामीजी वि० सं० १९२३ के कार्तिक में जयपुर पहुंचे। वहां गोपालानन्द परमहंस और लक्ष्मणनाथ, स्वामीजी की विद्वत्ता से अतीव प्रभावित हुए। जयपुर संस्कृत पाठशाला के पण्डितों के साथ स्वामीजी की शास्त्रचर्चा राजराजेश्वर के मन्दिर में हुई। जिसमें पण्डितों के व्याकरण-महाभाष्य के ज्ञान की कलई खुल गई। ओसवालों के गुरु जतीजी को भी स्वामीजी ने प्रश्नोत्तर माध्यम से निरुत्तर कर दिया। अचरौल के ठाकुर रणजीतसिंह, स्वामीजी की विद्वत्ता से प्रभावित होकर, उन्हें अपने जयपुरस्थित बाग में निवासार्थ ले आये। ठाकुरसाहब ने स्वामीजी से उपनिषदें और उनके कुंवर लक्ष्मणसिंह ने गीता पढ़ी। स्वामीजी की ख्याति सुनकर अनेक विद्यार्थी उनसे अष्टाध्यायी-महाभाष्य आदि पढ़ने लगे।

उस समय जयपुर में शैवों और वैष्णवों का विवाद चरम सीमा पर था। संवत् १९२१ से १९२७ तक यह विवाद चलता रहा। तत्कालीन जयपुराधीश रामसिंह का झुकाव भी शैवमत की ओर था। महाराजा वैष्णवमन्दिरों में व्याप्त दुराचार से अतिखिन्न थे। स्वामीजी भी उस समय तक शैवमत को वैदिक समझते थे। फलतः उन्होंने भी वैष्णवमतों का खण्डन तथ शैवमत का प्रबल समर्थन किया। परिणामतः मनुष्यों के तो क्या हाथी घोड़ों के भी गलों में रुद्राक्ष मालाएँ पड़ गई। स्वामीजी शिवमन्दिरों में वार्तालाप हेतु जाते अथवा ठहरते थे, पर न कभी मूर्तिपूजा करते और न उसका समर्थन करते थे।

साढ़े चार मास रहकर स्वामीजी ने जयपुर से चैत्र कृ०पं० को प्रस्थान

किया। दो दिन बगरू, दो दिन दूदू और सात दिन किशनगढ़ रहे। तत्कालीन किशनगढ़नरेश वल्लभसम्प्रदायी पृथ्वीसिंह के राजपण्डित विठ्ठलदास और देवीदत्त स्वामीजी से वार्तालाप में ही परास्त हो गये।

पुष्कर में अनेक लोगों ने कंठियां उतारीं

तत्पश्चात् स्वामीजी पुष्कर पधारे। वहां भारत-प्रसिद्ध ब्रह्मा के मन्दिर में स्वामीजी ने डेरा लगाया। वहाँ भी मूर्तिपूजा और वैष्णवमतों का खण्डन आरंभ कर दिया। वहाँ के दक्षिणी विद्वान् व्यंकट शास्त्री और उनके गुरु अघोरी ने स्वामीजी से परास्त होकर उनके सिद्धान्तों की सत्यता को स्वीकारा। स्वामीजी के उपदेशों से प्रभावित होकर सैंकड़ों लोगों ने कंठियां उतार दीं। स्वामीजी सबको सच्चिदानन्द परमेश्वर की उपासना करने को कहते थे।

अजमेर में जैनी-पादरी-मौलवी परास्त

दो मास धर्मोपदेश करके स्वामीजी पुष्कर से अजमेर गये। अजमेर में स्वामीजी की प्रसिद्धि 'दण्डीजी' के नाम से थी और लोग उन्हें वेदोद्धारक के रूप में जानते थे। वहां स्वामीजी का एक मौलवी तथा पादरी ग्रे, पादरी शूलब्रेड और पादरी जॉन रोबसन से शास्त्रार्थ हुआ। प्रत्यक्षदर्शियों की साक्षी थी कि मौलवी और पादरी परास्त हुए। अजमेर में ठहरे हुए रामस्नेही महन्त को स्वामीजी ने शास्त्रार्थ के लिये बुलाया, पर वे शास्त्रार्थ के डर से अजमेर छोड़कर ही चले गये। स्वामीजी ने मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ-हेतु विज्ञापनों द्वारा पण्डितों का आह्वान किया, पर कोई उद्यत नहीं हुआ।

स्वामीजी मतमतान्तरवादियों के निराकरण के प्रसंग में अजमेर के डिप्टी कमिश्नर मेजर ए०जी० डेविडसन से भी मिले। गवर्नर जनरल के एजेंट कर्नल ब्रुक से भी स्वामीजी ने गोरक्षार्थ दो दिन चर्चा की। गोवध की हानियों को स्वीकारते हुए ब्रुक ने स्वामीजी को लाट से मिलने की सलाह दी और तदर्थ एक पत्र भी दिया। स्वामीजी भागवत को भड़ुआ पुराण, मन्दिरों को अड्डा, तुलसी मालाओं को काष्ठभार कहा करते थे। बाबूलाल जैनी से तीन दिन तक स्वामीजी का धर्म-विषयक वार्तालाप हुआ। अन्त में उसने स्वामीजी से सहमति प्रकट की। धन्नालाल तथा अमृतसिंह नामक जैनियों से भी स्वामीजी का वार्तालाप हुआ।

अजमेर में भी स्वामीजी के उपदेश से अनेक लोगों ने कंठियां उतार फेंकीं, जिनमें सावर के ठाकुर भी थे।

किशनगढ़ में स्वामीजी पर वल्लभसम्प्रदायियों का हमला

आषाढ में अजमेर से लौटते हुए स्वामीजी पांच दिन के लिये किशनगढ़ रुके। वहां पं० कृष्णवल्लभ जोषी, दीवान महेशदास, वृद्धिचन्द्र और रूपराम स्वामीजी के भक्त बन गये। यहाँ एक दिन सायं प्रवचनकाल में ठाकुर गोपालसिंह के नेतृत्व में

वल्लभसम्प्रदायी चालीस मनुष्यों ने स्वामीजी पर आक्रमण करने का प्रयास किया। किन्तु स्वामीजी की प्रतीकारार्थ की गई गर्जना से तथा अन्य श्रद्धालुओं के आ जाने से वे लोग चले गये।

तत्पश्चात् स्वामीजी तीन दिन दूदू और एक रात्रि बगरू रुककर जयपुर पहुंचे। वहां अचरौल के पूर्वचर्चित ठाकुर रणजीतसिंह के बाग में उतरे। तत्कालीन जयपुराधीश रामसिंह की स्वामीजी के दर्शन की तीव्र इच्छा को देखकर ठा० रणजीतसिंह तथा अन्य सरदारों के तीव्र अनुरोध पर स्वामीजी ने महलों में जाना मान लिया। पर महाराजा की दिनचर्या गड़बड़ जाने से वे स्वामीजी के सत्संग से वञ्चित ही रहे।

प्रचारार्थ हरिद्वार-कुम्भ जाने की तैयारी

आधे आश्विन तक जयपुर रुककर स्वामीजी ने आगे को प्रस्थान किया। का० कृ०९ को वे आगरा पहुंचे और वायसराय लार्ड लारेंस के दरबार के प्रसङ्ग में उपस्थित जनसमुदाय को धर्मोपदेश करते रहे। 'वैष्णवमत-खण्डन' पुस्तिका भी स्वामीजी ने लोगों में बंटवाई।

आगरे से मथुरा पहुंचकर स्वामीजी ने गुरु विरजानद की सेवा में दो अशरफी और मलमल का थान भेंट किया, खण्डन-पुस्तिका दिखाई और धर्मोपदेशार्थ हरिद्वार कुम्भ पर जाने का स्वनिश्चय बताया। गुरु ने आशीर्वाद दिया।

मथुरा से स्वामीजी मेरठ पहुंचे। वहां के प्रसिद्ध रईस श्री पं० गंगाराम को गोरक्षार्थ प्रेरित किया और उसे स्वनिर्मित कृष्ण-अभ्रक-भस्म देते हुए स्वानुभव के आधार पर बताया कि भस्मसेवनकाल में विषय-श्रवण-दर्शन-मनन से दूर रहते हुए प्रणव-जप करते रहोगे तो कामवासना-विकार से बचते रहोगे।

कुम्भ पर प्रचार और अधिक साधनापूत बनने के लिये सर्वस्वत्याग

तत्पश्चात् स्वामीजी फा०शु० १ सं० १९२३ को हरिद्वार पहुंचे और सप्तसरोवर पर ठहरे। 'पाखण्ड-खण्डन' पताका गाड़कर मूर्तिपूजा, अवतारवाद, भागवतपुराण, तीर्थ, तिलक, छाप, कण्ठी, चक्राङ्कण आदि का खण्डन और सद्-धर्मोपदेश करने लगे। कुम्भ मेले में हलचल मच गई और इस अद्भुत संन्यासी का दर्शन करने या उससे चर्चा करने साधारण जन, मतमतान्तरों के ठेकेदार तथा संस्कृतज्ञ पण्डित सभी प्रकार के लोंग आने लगे। स्वरचित 'भागवत-खण्डन' पुस्तिका की सहस्रों प्रतियां छपवाकर स्वामीजी ने मेले में बंटवाई। दादूपन्थी संस्कृतज्ञ विद्वान् महानन्द स्वामीजी से प्रभावित होकर वैदिक धर्म के अनुयायी और प्रचारक बन गये।

स्वामीजी ने कुम्भ पर देखा कि साधारण जनता अविद्यान्धकार में फंसी हुई है। विद्वान् स्वार्थवश जनता को धर्म के नाम पर लूट रहे हैं। शाखा-प्रशाखाओं में बंटा

हुआ साधुसमाज आडम्बरों और व्यसनों में ग्रस्त होकर पारस्परिक कलहों में लीन है। यह देखकर स्वामीजी ने देशहित और जनकल्याण की भावना से गुरु विरजानद को दिये स्ववचन को चरिचार्थ करने हेतु और अधिक तप तथा त्यागको लक्ष्य में रखकर सर्वस्व-परित्याग का संकल्प कर लिया। अचरौल के ठाकुर रणजीतसिंह के द्वारा प्रेषित रूपराम जोशी ने हरिद्वार पहुंचकर देखा कि स्वामीजी अपनी सब वस्तुएँ बांट रहे हैं। स्वामीजी ने ३५ रुपये, मलमल का थान और महाभाष्य की पुस्तक पं० दयाराम के साथ गुरु विरजानन्द के पास मथुरा भी भेजी। स्वामी कैलाशपर्वत के मना करने पर, स्वामीजी ने कहा कि हम अब सब कुछ स्पष्ट स्पष्ट कहना चाहते हैं और यह तब तक नहीं हो सकता जब तक कि हम अपनी आवश्यकताएँ कम न कर दें। सर्वस्व त्यागकर स्वामीजी ने मात्र कौपीनधारी तपस्वी बनकर इष्टसिद्धि होने तक के लिये मौनव्रत धारण करने तथा गंगातट पर भ्रमणरत रहने का संकल्प लिया। यह बात कुम्भ मेले की समाप्ति के १०-१२ दिन बाद की है।

स्वामीजी का मौनव्रत तब टूट गया जब एक पण्डित उनकी कुटिया के आगे आकर 'निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्' [= भागवत पुराण वेदवृक्ष का पका हुआ फल है] वह वाक्य बोलने लगा। स्वामीजी को वेदविरोधी भागवतपुराण की यह प्रशंसा नहीं सुहाई और तुरत उसका खण्डन करने लग गये। "मौनात् सत्यं विशिष्यते"। परन्तु अब वे मात्र संस्कृत-भाषण ही करते थे।

गंगातटीय क्षेत्रों में धर्मप्रचार, शास्त्रार्थ और साधना

स्वामीजी गंगातट-विचरण हेतु निकले। कनखल, लंढोरा [सहारनपुर], शुक्रताल होते हुए वे मीरांपुर [मुजफ्फरनगर] पहुंचे। वहां एक पण्डित से दो दिन शास्त्रार्थ किया। तब मुहम्मदपुर [बिजनौर] और परीक्षितगढ़ [मेरठ] होते हुए गढ़ मुक्तेश्वर आये। यहां कई दिन रहे। स्वामीजी किसी से कुछ मांगते नहीं थे। स्वयं कोई कुछ दे देता उसी पर निर्भर रहते। वहां से वे **कर्णवास** आये। वहां छात्रों को भागवतपुराण के स्थान पर मनुस्मृति और कौमुदी के स्थान पर अष्टाध्यायी पढ़ने को कहा।

वहां से चलकर स्वामीजी तीन दिन **फर्रुखाबाद** रुके। लाला मन्नालाल और जगन्नाथ को गायत्रीजप का फल बुद्धि-शुद्धि बताया। पश्चात् वे **अनूपशहर** आये। वहां तुलसीपत्र और कालीमिर्च का तथा मूंग की दाल में सोंठ का सेवन करके अपनी रुग्णता का निराकरण किया। यहां वैरागी रामदास, दक्षिणी स्वामी सूरजपूरी और मौज बाबा स्वामीजी के सम्पर्क में आये। यहां एक नवलजंग नाम का सदाचारी सुशील पहलवान स्वामीजी का विशेष भक्त बन गया। एक दिन स्वामीजी को कष्ट पहुंचाने हेतु आये हुए शराब में धुत कुछ वाममार्गी इस पहलवान को देखकर भाग खड़े हुए। यहाँ कौपीन-मात्रधारी स्वामीजी का रेत बिस्तर और ईंट तकिया होती थीं। ब्राह्मणों के उत्थान पर विशेष ध्यान देते थे। सन्ध्या-गायत्री-अग्निहोत्र करने

और मथुरा जाकर विरजानन्दजी से व्याकरण पढ़ने की प्रेरणा करते थे। पुराणादि की वेदविरुद्ध बातों को 'गप्पाष्टकम्' और 'मनुष्याणां कोलाहलः' कहा करते थे।

स्वामीजी के सत्योपदेश से लोग चक्रांकित बनने से बचे

अनूपशहर से स्वामीजी चासी [बुलन्दशहर] आये। वहां समीपस्थ ग्रामों के लोगों को चक्रांकित बनाने में तत्पर नन्दराम नामक ब्राह्मण को लोग स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने हेतु लाये। पर वह बिना कुछ बोले चुपके से भाग गया। परिणामतः अनेक लोग चक्रांकित होने से बच गये। चासी से थारपुर [ताहीरपुर] होते हुए वे रामघाट पहुंचे। वहां प्रवास में आये हुए कर्णवासनिवासी पं० टीकाराम के स्वामीजी के सत्संग से समस्त भ्रमजाल नष्ट हो गये और वे मूर्तिपूजा आदि छोड़कर स्वामीजी के निर्देशानुसार सन्ध्या आदि करने लगे। स्वामीजी आषाढ़ में कर्णवास पहुंचे। वहां मूर्ति, तिलक, कण्ठी का खण्डन करते हुए धर्मोपदेश करते रहे। आश्विन में गंगा-स्नानार्थ आये हुए लोग भारी संख्या में स्वामीजी के सत्संग में आने लगे।

सत्य-ग्राही पण्डित

भागवती पं० भगवान्दास ने स्वामीजी से शास्त्रार्थ के लिये पं० अम्बादत्त पर्वती को अनूपशहर से बुलवाया। शास्त्रार्थ में पराजित होने पर भी सत्याग्रही पं० अम्बादत्त ने मुक्तकंठ से स्वामीजी के कथन की सत्यता को स्वीकार और मूर्तिपूजा को अवैदिक एवं त्याज्य बताया। इस घटना से सैंकडों लोग स्वामीजी के भक्त बन गये। बीसियों क्षत्रिय यज्ञोपवीत धारण करके सन्ध्या आदि करने लगे।

कर्णवास से अहार होते हुए स्वामीजी चासी आये। यहां कार्तिकस्नान के समय सहस्रों मनुष्यों का संगम था। स्वामीजी की कुटिया पर बड़ी संख्या में आये लोगों को स्वामीजी मूर्तिपूजा, तीर्थस्नान आदि की निस्सारता बताते और सच्चे धर्म का उपदेश करते रहे। गंगास्नानार्थ आया हुआ जहांगीराबाद [बुलन्दशहर] निवासी ओंकारदास बोहरा नामक एक दण्डपेल पहलवान स्वामीजी के बल की परीक्षा-हेतु उनके पांव दबाने लगा। परन्तु लोहसम कठोर पांवों को दबाने से अल्पकाल में ही वह पसीना पसीना हो गया। स्वामीजी के एक भक्त पं० गंगाप्रसाद [जो कि अनेकों को यज्ञोपवीत धारण करवाते और गायत्री जपवाते थे] को स्वामीजी ने कहा कि जो कोई अधर्माचरण करे उसका यज्ञोपवीत उतार भी लेना चाहिये।

जगन्मिथ्या सिद्धान्त का अद्भुत निराकरण

उन दिनों स्वामीजी ने नवीन वेदान्त [= जगत्-मिथ्यावाद] का भी खण्डन आरम्भ कर दिया था। बहुत समझाने पर भी जब नवीन वेदान्ती छत्रसिंह जाट न माना, तो स्वामीजी ने उसके एक चपत लगाई। उसके रुष्ट होने पर स्वामीजी ने पूछा कि जब ब्रह्म के सिवाय कुछ है ही नहीं, तो किसने किसको क्या मारा ?

यह सुनकर छत्रसिंह की आंखें खुल गईं और उसने अवैदिक जगत्-मिथ्यावाद का परित्याग कर दिया।

एक अनपढ़ धुनिये भक्त को 'ओ३म्' का जप करने और रूई-धुनाई में सत्य व्यवहार करने का उपदेश किया। चांदोख निवासी ठा० महावीरसिंह को धर्म के 'धृतिःक्षमा' वाले दश लक्षण बताये। पुराणों के स्थान पर शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थ पढ़ने की और वेदज्ञ सत्योपदेष्टा ब्राह्मण को गुरु मानने की प्रेरणा की। शफीपुरनिवासी मायाराम जाट को जीवित पितरों का श्राद्ध करने की प्रेरणा की और तदर्थ पं० ज्वालाप्रसाद को 'जीवितश्राद्धपद्धति' बनाकर दी थी। स्वामीजी हस्तरेखा-फल को व्यर्थ और जन्मपत्र से कर्मपत्र को श्रेष्ठ मानते थे।

स्वामीजी के सदुपदेश से देवमूर्ति-भार का त्याग

वि० संवत् १९२४ के मार्गशीर्ष में स्वामीजी पुनः रामघाट पधारे । यहां बीस सेर वजनी देवमूर्तियों को घोड़े की पीठ पर लादकर चलनेवाले रुद्राक्षधारी एक ब्रह्मचारी क्षेमकरण स्वामीजी के सम्पर्क में आये। वहीं वनखण्डीश्वर महादेव के मन्दिर में दो संस्कृतज्ञ विद्वानों के साथ स्वामीजी के वार्तालाप को और वाममार्गी संन्यासी कृष्णानन्द के साथ स्वामीजी के शास्त्रार्थ को सुनकर उक्त ब्रह्मचारी पर यह प्रभाव पड़ा कि उसने उन देवमूर्तियों का बोझा गंगा में प्रवाहित कर दिया। स्वामीजी मुखसुगन्धि-हेतु तुलसीपत्र खाने और वायुशोधनार्थ घर में तुलसी लगाने को कहते थे।

रामघाट से स्वामीजी बैलोन [बुलन्दशहर] आये। यहां वे लोगों को गायत्री मन्त्र लिखकर देते और एक हजार बार जप करने को कहते। ईश्वर के अवतार लेने का निषेध करते।

देवमूर्तियों को स्वामी-हस्त से भोग लगवाने की प्रतिज्ञावाले पण्डित द्वारा मूर्तियों का गंगा में विसर्जन

तीन चार दिन बाद स्वामीजी कर्णवास चले गये। वहां पण्डित हीरावल्लभ एक सिंहासन पर देवमूर्तियों को रखकर "मैं स्वामीजी को हराकर उनके हाथ से इन्हें भोग लगवाऊँगा" यह प्रतिज्ञा करके स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हुए। छः दिन तक शास्त्रार्थ चला। अन्तिम दिन दो हजार जनों की उपस्थिति में पं० हीरावल्लभ ने स्वामीजी के पक्ष की सत्यता स्वीकारते हुए अपनी हार स्वीकार की और देवमूर्तियों को गंगा में प्रवाहित कर दिया। स्वामीजी ने पण्डितजी की न्यायप्रियता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। सैंकड़ों लोगों ने तब मूर्तिपूजा त्याग दी। अनेकों ने स्वामीजी के हाथ से विधिपूर्वक यज्ञोपवीत ग्रहण किया और शिक्षा-दीक्षा ली।

'यज्ञोपवीत-धारण और संस्कार अत्यावश्यक'

वहां माघी अमावास्या सं० १९२४ को सूर्यग्रहण था। स्वामीजी ने सूर्यग्रहण

के समय सूतक की मान्यता का खण्डन किया। कर्णवास में स्वामीजी माघ के अन्त तक रहे। स्वामीजी ने कर्णवास से एक विद्यार्थी को विरजानन्दजी के पास पढ़ने मथुरा भी भेजा था। आग्रह करने पर ठा० गोपालसिंह की नब्बे वर्षीया वृद्धा ताई हंसा ठकुरानी को स्वामीजी ने 'ओ३म्' और गायत्री जप करने का और मूर्तिपूजा छोड़ने का आदेश दिया। स्वामीजी द्विजमात्र के लिये यज्ञोपवीत की अनिवार्यता बताते थे और जीवन को सामर्थ्यवान् बनाने के लिये संस्कार को आवश्यक मानते थे। 'आप खण्डनमण्डन के बखेडे में क्यों पड़े हैं ?' ऐसा पं० इन्द्रमणि के पूछने पर स्वामीजी ने कहा "खण्डनमण्डन मेरे लिये बखेड़ा नहीं है, अपितु ऋषिऋण का चुकाना है। स्वार्थी लोगोंने ऋषिसन्तानों को कुरीतियों में फंसा रखा है, मुझसे यह दशा देखी नहीं जाती है।"

एक दिन कुटिया पर आये बुलन्दशहर के कलेक्टर को भी राजधर्मोपदेश देते हुए अमूल्य समय के सदुपयोग का महत्त्व बताया। एक दिन पं० कमलनयन और सुखदेव के नेतृत्व में १५-२० पण्डित स्वामीजी से अतिक्लिष्ट प्रश्न पूछने के लिये आये, पर स्वामीजी के तेजोमय दर्शन और उपदेश के कारण किसी का साहस प्रश्न पूछने का न हुआ।

ब्रह्मचर्य और योगबल से शीतसहनशक्ति

माघ मास के अतिशीत के समय भी मात्र-कौपीनधारी दयानन्द पद्मासनस्थ होकर उपदेश कार्य में तत्पर रहते थे। जिज्ञासा करने पर बताया कि ब्रह्मचर्य और योगबल से ही शीतसहन की शक्ति प्राप्त हुई है। आग्रह करने पर स्वामीजी ने घुटनों पर हाथों के अंगूठों को दबाकर शरीर से पसीना प्रवाहित कर दिखाया। पीलीभीत से अंगदशास्त्री के आये गर्वपूर्ण पत्र के उत्तर में स्वामीजी ने उनके पत्र की और भागवतपुराण की अशुद्धियाँ लिख भेजीं। तब अंगद शास्त्री मौन साध गये।

तत्पश्चात् स्वामीजी गंगातट पर विचरणार्थ आगे प्रस्थान कर गये। एक दिन स्वामीजी चांदनी के समय गंगा की ठंडी रेती पर समाधिस्थ थे। उस समय कार्यवशात् उधर आये बदायूं के कलेक्टर और एक पादरीने उस अतिशीत में इस प्रकार एक साधु को देखकर आश्चर्यप्रकटनपूर्वक इसका कारण पूछा तो स्वामीजी ने अभ्यास को ही शीतबाधा के अभाव का कारण बताया।

स्वामीजी विचरते हुए संवत् १९२५ के चैत्र में सोरों [जिला एटा] के समीपस्थ गड़ियाघाट पहुंचे। सोरों चक्रांकितों का गढ़ था। पं० नारायण की स्वामीजी के साथ शास्त्रचर्चा हुई, किन्तु कुछ मिनटों में ही वे निरुत्तर हो गये। वहां के सुप्रतिष्ठित अम्बागढवासी गोसाईं बलदेव गिरि स्वामीजी के विशेष भक्त बन गये और स्वामीजी के लिये नित्य भोजन भिजवाने लगे। स्वामीजी धर्मोपदेश के समय निरन्तर वेदविरुद्ध चक्रांकित मतका खण्डन करने लगे। इससे रुष्ट होकर एक ठाकुर तीन साथियों के साथ तलवार-लाठियों से लैस होकर स्वामीजी को कष्ट पहुंचाने के लिये आया।

पर बलिष्ठ बलदेव गिरि और उसके सेवक ने उन आक्रमणकारियो को गंगा के दलदल में धकेल दिया ।

तत्पश्चात् अधिक लोगों को धर्मोपदेश-लाभ पहुंचाने की दृष्टि से बलेदवगिरि स्वामीजी को सोरों ले गये और अपने स्थान अम्बागढ में ठहराया । पं० खमानी अपने दलबल के साथ शास्त्रार्थ हेतु आये पर परास्त हो गये ।

सत्यप्रिय पं० अंगदराम

बदरिया ग्राम निवासी संस्कृतज्ञ तथा विरजानन्दजी से कुछ काल पढ़े हुए पं० अंगदराम शास्त्री का स्वामीजी से मूर्तिपूजा तथा भागवत पर विचार हुआ । न्यायप्रिय शास्त्री ने स्वामीजी के पक्ष को स्वीकार करके सबके सामने देवमूर्ति को गंगा में चढ़ा दिया । तब बलदेव गिरि ने भी 'तथास्तु' कहकर वैसा ही किया । पं० अंगदराम के मूर्तिपूजा छोड़ने से प्रभावित होकर हजारों मनुष्यों ने मूर्तिपूजा छोड़ दी ।

दयानन्द द्वारा किये जाते पाखण्डखण्डन की विरजानन्द द्वारा सराहना

एक दिन स्वामीजी के सहाध्यायी मथुरावासी पं० युगलकिशोर सोरों आये । स्वामीजी के पुराण, शालिग्राम, कण्ठी, तिलक आदि के खण्डन से रुष्ट होकर उन्होंने मथुरा जाकर गुरु विरजानन्दजी से स्वामीजी की शिकायत की । किन्तु गुरुजी द्वारा स्वामी दयानन्द के कार्य को उचित बताने पर पं० युगलकिशोर ने भी कण्ठी तोडकर फेंक दी । स्वामीजी के सोरों में प्रचार का यह प्रभाव हुआ कि लोगों को चक्रांकित करने हेतु प्रतिवर्ष सोरों आने वाले वृन्दावनवासी रंगाचार्य का वहां आना बन्द हो गया ।

सोरों के पौराणिकों ने स्वामीजी से शास्त्रार्थ-हेतु पूर्वोक्त स्वामी कैलाशपर्वत को काशी से बुलाया । पर स्वा० कैलाशपर्वत स्वामीजी के खण्डनात्मक प्रश्नों का उत्तर न दे सके और खीजकर क्रुद्ध होकर कुवाच्य कहने लगे । परन्तु स्वामी दयानन्द शान्त रहे । मूर्तिपूजा सिद्ध करने की डींग मारनेवाला चिदानन्द नामक एक नग्न साधु स्वामीजी द्वारा बारबार बुलाने पर भी नहीं आया, अपितु सोरों छोड़कर जाने लगा । स्वामीजी ने एक मील पर उसे जा पकड़ा और मूर्तिपूजा पर बोलने को कहा, पर वह सर्वथा मौन साधकर बैठ गया । अन्त में स्वामीजी लौट आये ।

स्वामीजी के उपदेश के प्रभाव से उनके अनुगामी बने कासगंज निवासी पं० अयोध्याप्रसाद और चेतराम के प्रयत्न से उनके मित्र भागवती पं० सुखानन्द स्वामीजी के सम्पर्क में आये और ज्योतिष-चर्चा के अन्तर्गत 'शन्नो देवी' मन्त्र की अपूर्व व्याख्या सुनकर छः दिन तक सत्संग करते रहे और पूर्ण सन्तुष्ट होकर स्वामीजी के अनुगामी बन गये और देवमूर्तियां गंगा में बहा दीं ।

दो अंगदरामों का शास्त्रार्थ

स्वामीजी ने अम्बागढ़-निवासकाल में अपने अनुगामी पूर्वोक्त बदरियावासी पं०

अंगदराम को निर्देश दे दे कर महाभारत में से अनार्ष अंश निकलवाकर उसे शुद्ध करवाया था। पर दुर्भाग्य है कि उस संशोधित महाभारत की सुरक्षा न हो सकी। यहीं इन अंगदराम शास्त्री का पीलीभीतनिवासी अंगदराम पौराणिक से शास्त्रार्थ हुआ जिसमें पीलीभीतवासी परास्त हुए। स्वा० कैलासपर्वत के आग्रह पर बरेली से पं० जगन्नाथ स्वामीजी से शास्त्रार्थ हेतु सोरों आये। पर दूर से ही प्रश्न लिखते रहे जिनका स्वामीजी ने तुरत समाधान कर दिया।

एक रात्रि कुछ मूर्तिपूजक दुष्टों ने स्वामीजी को गंगा में डुबाने के उद्देश्य से अनजान में एक साधु को गंगाजल में फेंक दिया। एक दिन सभास्थल में उपदेश के समय एक क्रुद्ध जाट स्वामीजी के सिर पर लट्ठ का वार करने आया, पर स्वामीजी के तेजोमय दिव्य नेत्रों से नेत्र मिलते ही वह हिंस्रभाव छोड़कर स्वामीजी की चरणशरण में गिर पड़ा।

राव कर्णसिंह द्वारा स्वामीजी पर आक्रमण

ज्येष्ठ संवत् १९२५ में स्वामीजी पुनः कर्णवास पधारे और धर्मोपदेश एवं अवैदिक-मतखण्डन आरम्भ कर दिया। ज्ये० शु० दशमी को मेले के अवसर पर समीपस्थ बरोलीग्राम निवासी एवं वृन्दावनीय रंगाचारी के शिष्य राव कर्णसिंह अपने शस्त्रधारी अनुचरों के साथ स्वामीजी के सभास्थल में आकर अशिष्टतापूर्वक स्वामीजी की पाटी पर ही बैठ गये। स्वामीजी निर्भय होकर गंगा के मिथ्या माहात्म्य, रामलीला, तिलक तथा चक्रादि से शरीर दग्ध करने का खण्डन करते रहे। राव कर्णसिंह ने क्रुद्ध होकर स्वामीजी पर वार करने को तलवार निकाल ली, परन्तु ठा० किशनसिंह के ललकारने पर वह चला गया। स्वामीजी का धर्मोपदेश वहां कई मास तक चला।

शरद्पूर्णिमा के अवसर पर गंगास्नानार्थ आये राव कर्णसिंह ने स्वामीजी के प्राणहरण के उद्देश्य से रात्रि में अपने तीन सेवकों को तलवार देकर भेजा। खटके से जागे हुए स्वामीजी की प्रबल हुंकार से वे उलटे पांव भाग गये। रात्रिसेवक केथलसिंह से समाचार पाकर ठा० किशनसिंहने कर्णसिंह की भर्त्सना की और ललकारा। राव कर्णसिंह के कर्णवासनिवासी श्वशुर की चेतावनी पर कर्णसिंह वहां से चलता बना। कर्णसिंह की दुष्टवृत्ति के कारण पहले उसका एक बढ़िया घोड़ा मरा। पीछे वह स्वयं रुग्ण होकर विक्षिप्त हो गया और स्वमत के विरुद्ध मद्य-मांसाहारी हो गया।

'व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया'

कर्णवास से स्वामीजी अम्बागढ़ होते हुए सरदोल रुके। वहां ठा० हुलाससिंह आदि ने उनसे शिक्षा ग्रहण की। सरदोल से स्वामीजी शहबाजपुर पहुंचे। समाचार पाने पर सोरों से आये बलदेवगिरि आदि से स्वामीजी ने जब यह सुना कि आश्विन कृ० १३ सं० १९२५ को गुरु विरजानन्दजी का देहावसान हो गया है, तो शोकातुर

हुए स्वामी दयानन्दजी के मुख से अन्तर्वेदना-युक्त ये शब्द निकले "आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया।" पर शीघ्र स्वामीजी शोक पर विजय प्राप्त करके उपदेशरत हो गये। यहां गंगापार से दो वैरागी अपने एक मित्र ठाकुर के पास आये और स्वामीजी के प्राणहरण की अपनी योजना उन्हें बताई। पर स्वामीजी के भक्त बन चुके उस ठाकुर द्वारा की गई भर्त्सना और चेतावनी से वे भाग गये। साधु मायाराम उदासी के स्वामीजी को खण्डन से दूर रहने और आनन्दित रहने की सलाह देने पर स्वामीजी ने उत्तर दिया "हमें तो ईश्वराज्ञापालन में और वेदप्रचार में ही आनन्द आता है।"

शहबाजपुर से स्वामीजी कादिरगंज रुकते हुए नरदौली पहुंचे। बीस बीस कोस से लोग सत्संग में आये। अनेक लोग शास्त्रार्थ में परास्त हुए। ला० लीलाधर, पं० मूलचन्द और पं० प्राणनाथ स्वामीजी के भक्त बन गये। कार्तिक शु० १३ सं० १९२५ को स्वामीजी ककोड़ा ग्राम के गंगातट पर मेले में पहुंचे और धर्मोपदेश में लग गये। वहीं सोरों के भक्तगण भी आ पहुंचे। डिप्टी कलेक्टर रायबहादुर बालमुकुन्द भी उपदेश में उपस्थित हुए। दो पादरियों के साथ स्वामीजी के प्रश्नोत्तर भी हुए। अन्य पादरियों, मौलवियों तथा पण्डितों के साथ भी धर्मचर्चा हुई। बरेली निवासी पं० उमादत्त के साथ मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ के प्रसंग में स्वामीजी ने कहा कि महाभारत के एकलव्य का प्रकरण मूर्तिपूजा में प्रामाणिक हेतु नहीं है और निरन्तर अभ्यास ही उसकी लक्ष्यवेधदक्षता का कारण है, द्रोणाचार्य की मूर्ति नहीं। एक कायस्थ वैरागी गोविन्ददास के द्वारा फैलाये जा रहे निष्कर्मण्यता के पाखण्ड का भी स्वामीजी ने तीव्र खण्डन किया।

मार्ग० कृ० दशमी को स्वामीजी नरदौली लौट आये। इस बार उनके उपदेश से गुसाईं रामपुरी ने सत्यज्ञान होने पर मूर्तियों को गंगा में डाल दिया।

वहां से स्वामीजी कायमगंज गये। वहां प्रसंग से उन्होंने सत्यनारायण की कथा और मनौती की बात को असत्य बताया। पं० बंशीधर ने उनके उपदेश से मूर्तिपूजा त्याग दी। मुर्शिदाबाद से आये १०-१५ मुसलमानों की शंकाओ का स्वामीजी ने समाधान कर दिया। मौलवी मुहम्मदअली टूबान मनुष्योत्पत्ति विषय पर स्वामीजी के समाधान से प्रसन्न हुए और स्वामीजी के ज्ञान की प्रशंसा करते रहे। पादरी अनलन तथा हरप्रसाद आदि ईसाई भी बातचीत के लिये आये। स्वामीजी ने पापक्षमा होने की बात का खण्डन किया।

स्वामीजी शिवलिंगपूजन का भी निषेध करते थे। बलिष्ठ बनने के लिये अधिक स्त्रीप्रसंग से बचने और ऋतुगामी होने का उपदेश करते थे। चौबे परमानन्द और पं० बलदेवप्रसाद स्वामीजी के विशेष भक्त बन गये। तत्पश्चात् स्वामीजी कम्पिल होते हुए शकरस्त्रपुर [जि० फर्रुखाबाद] पहुंचे। वहां के रईस पं० चोखेलाल ने स्वामीजी को अपने बाग में ठहराया।

लाला जगन्नाथ आदि भक्तों द्वारा यज्ञोपवीत-ग्रहण

कायमगंज से स्वामीजी पौष में फर्रुखाबाद पधारे और पूर्वतः भक्त बने लाला जगन्नाथ के विश्रान्त घाट पर उतरे। लालाजी ने सब गृह्यानुष्ठान तथा संस्कार स्वामीजी के निर्देशानुसार करने आरम्भ कर दिये। यहां भी स्वामीजी रात्रि में अपने नीचे ऊपर पियार ही डाल लेते, किन्तु कम्बल आदि न लेते थे। यहां सहस्रों मनुष्यों ने उनके धर्मोपदेश से लाभ उठाया। लाला द्वारकाप्रसाद, गिरधारी लाल, जगन्नाथ तथा बाबू दुर्गाप्रसाद ने स्वामीजी-प्रोक्त विधि से यज्ञोपवीत ग्रहण किया। गणेशपूजन को और शुक्रास्त होने पर संस्कार न करने को स्वामीजी ने अवैदिक तथा भ्रान्तियुक्त बताया। साध सुखवासीलाल द्वारा लाये गये कढ़ी-भात का स्वामीजी के द्वारा सेवन करने पर ब्राह्मणों ने आपत्ति की, तो स्वामीजी ने कहा कि भोजन दो ही प्रकार से भ्रष्ट होता है। या तो वह किसी को दुःख देकर प्राप्त किया गया हो अथवा उसमें कोई मलिन वस्तु पड़ी हो। साध लोगों का भोजन परिश्रम द्वारा प्राप्त एवं निर्मल है, अतः शुद्ध है।

यहां बाबू दुर्गाप्रसाद रईस के पुरोहित पं० गंगादास ने स्वामीजी से मनुस्मृति के कुछ भाग पढ़े। बरतिया निवासी पं० गंगाराम जो पहले स्वामीजी से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करने की डींग हांका करते थे, अब परोक्षरूप से स्वामीजी की विद्या की ख्याति सुनकर शास्त्रार्थ-समर से विमुख हो गये।

मूर्तिपूजकों ने मेरठ से पं० श्रीगोपाल को बुलाकर पं० पीताम्बरदास की मध्यस्थता में स्वामीजी से शास्त्रार्थ करवाया। कुछ समय पश्चात् श्रीगोपाल निरुत्तर हो गये।

मूर्तिपूजा पर काशी के पण्डितों की भ्रान्त 'व्यवस्था'

व्यापारी कृष्णलाल के सहयोग से मूर्तिपूजा के पक्ष में काशी के पण्डितों की व्यवस्था लाने हेतु गये पं० श्रीगोपाल, काशी में श्री पं० शालिग्राम शास्त्री के द्वारा पं० राजाराम शास्त्री के पास गये। उन्होंने एक पुरानी व्यवस्था की नकल की अनुमति दे दी। उसमें मूर्तिपूजा पर कोई वैदिक प्रमाण न था। पं० श्री गोपाल ने फर्रुखाबाद आकर इसी व्यवस्था को नई ताजा व्यवस्था बताकर झूठा प्रचार किया। पर वह सम्मुख शास्त्रार्थ करने को उद्यत न हुआ।

पं० श्रीगोपाल द्वारा लाई गई व्यवस्था की सचाई जानने के लिये यहां के प्रसिद्ध धर्मनिष्ठ रईस लाला पन्नालाल ने पं० पीताम्बरदास को काशी भेजा। वहां के पण्डितों ने कहा कि "श्रीगोपाल तो एक पड़ी हुई पुरानी व्यवस्था की नकल ले गया है। पर चार वेद संहिता के आधार पर कोई व्यवस्था नहीं दी गई है, मूर्तिपूजा लौकिक है और समझदारों के लिये गुड़ियों का खेल है। लाला पन्नालाल पंडितों की बात जानकर पं० श्रीगोपाल की करतूत समझ गये और उन्होंने मूर्तिपूजा त्याग दी।

फर्रुखाबाद में वैदिक संस्कृत-पाठशाला की स्थापना

उन्होंने स्वसंकल्पित देवालय के स्थान पर संस्कृत-पाठशाला स्थापित की। पं० व्रजकिशोर अध्यापक नियुक्त हुए। छात्रों के अन्नवस्त्र का व्यय बाबू दुर्गाप्रसाद देने लगे।

यहां के पोस्टमास्टर पद पर स्थित ज्वालाप्रसाद नामक एक शराबी कवाबी ब्राह्मण ने स्वामीजी को दुर्वचन भरी उद्दण्डता से अपमानित किया। स्वामीजी तो शान्त रहे पर भक्तगणोंने जब उसकी जूता-पूजा की तो स्वामीजी ने भक्तों को खूब डांटा। इसी प्रकार जूता फेंककर अपमानित करने वाले को भी स्वामीजी ने भक्तों के द्वारा पीटे जाने से बचाया। संस्कृतज्ञ पं० रामसहाय ने भी कुछ समय स्वामीजी से बातचीत की। कुछ मुसलमानों के साथ भी स्वामीजी ने मुहम्मद साहब, दाढ़ी, बांग और खतने के विषय में चर्चा की।

वेश्यागमनरूप पाप से अन्य सम्भाव्य पाप

फर्रुखाबाद के एक प्रतिष्ठित पुरुष के वेश्यागामी पुत्र को "एक वेश्यागामी की, वेश्या से उत्पन्न हुई कन्या के कालान्तर में निश्चय ही वेश्या बनने पर क्या वह वेश्यागामी पुरुष ही अपनी पुत्री से वेश्यावृत्ति कराने के पाप का भागीदार नहीं होगा?" ऐसा तर्कमय मार्मिक प्रश्न स्वामीजी द्वारा करने पर उस नवयुवक ने वेश्यागमन छोड़ने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली और उसका जीवन सुधर गया।

फर्रुखाबाद-शास्त्रार्थ

पौराणिकों ने रईस प्रेमदास और देवीदास खत्री के सहयोग से कानपुर से पं० हलधर ओझा को स्वामीजी से शास्त्रार्थहेतु बुलाया। वि० सं० १९२६ की ज्ये० शु० दशमी और एकादशी [= १९, २०-६-१८६९ ई०] को शास्त्रार्थ हुआ। सुरापान, संन्यासी के लक्षण, ब्राह्मण के लक्षण, 'प्रकरण' शब्द, धातु का सामर्थ्य-असामर्थ्य, 'कल्म' संज्ञा और 'समर्थः पदविधिः' सूत्र की सर्वत्र व्यापकता आदि पर चर्चा हुई। अन्त में लाला जगन्नाथ के निवेदन पर उपस्थित पण्डितवर्ग ने स्पष्ट कहा कि "पं० हलधर अपनी प्रतिज्ञा प्रमाणित नहीं कर सके" फलतः भक्त-समुदाय में स्वामीजी की जीत पर हर्ष छा गया और पं० हलधर कानपुर लौट गये।

उजड्ड और गुण्डा भी स्वामी-सद्व्यवहार से भक्त बना

स्वामीजी को अपमानित करनेवाला एक उजड्ड निरक्षर सद्धू नामक ब्राह्मण स्वामीजी के कोमल शिष्टचारपूर्वक व्यवहार से क्षमाप्रार्थी होकर उनका भक्त बन गया। इसी प्रकार परसाद नामक एक गुजराती ब्राह्मण वहां एक नामी गुण्डा था। वह उद्दण्डतापूर्वक स्वामीजी से मूर्तिपूजा और अवतार रूप में ईश्वर के जन्म लेने की वकालत करने लगा। स्वामीजी द्वारा प्रस्तुत सर्वसम्मत शास्त्रों में कथित ईश्वरीय 'अजन्मा' विशेषण

की व्याख्या को सुनकर वह उद्दण्डता त्यागकर चरणशरण हो गया और आजीवन सदाचारी बना रहा।

चौबे परमानन्द रईस और पं० बलदेवप्रसाद के पूछने पर स्वामीजी ने बताया कि हिंसक पशुओं को मारने में दोष नहीं है। जिससे मनुष्यों की हानि होती हो वह पाप है, वृद्धों को मारने में कृतघ्नतारूप महापाप है और मद्य आदि नशीले पदार्थों का सेवन सर्वथा निन्दनीय और अन्य पापों की जड़ है।

लाला जगन्नाथ को ईश्वर-प्राप्ति ही मानव का कर्तव्य बताया। उसके लिये ईश्वराज्ञापालन, वेदानुकूल आचरण और धृति-क्षमा आदि धर्म के दश लक्षणों के सेवन को तथा अधर्मत्याग को आवश्यक बताया।

फर्रुखाबाद से चलकर स्वामीजी शृंगीरामपुर होते हुए जलालाबाद गये। वहां पं० गयाप्रसाद द्वारा स्वगृहनिर्मित कच्ची रसोई को स्वामीजी के स्थान पर लाने में संकोच करने पर स्वामीजी ने कहा कि 'वह कच्ची नहीं पक्की है, उसे ही ले आओ।' वहां के प्रसिद्ध पं० हकूमतराय सिरदर्द का बहाना करके शास्त्रार्थ से जी चुरा गये।

आषाढ के आरम्भ में स्वामीजी कन्नौज गये और यमुनातट पर आसन जमाया। पं० हरिशंकर के समक्ष मूर्तिपूजा-खण्डन करते हुए पंचमहायज्ञ की आवश्यकता और बलिवैश्वदेव की अनिवार्यता पर स्वामीजी ने बल दिया। उनसे शास्त्रार्थ-चर्चा में स्वामीजी ने मनूक्त प्रतिमारक्षण को नापतोल का रक्षण बताया। पूर्वमीमांसा के प्रतिमाप्रकरण के मूर्तिपूजा के पोषक सिद्ध न होने पर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पं० हरिशंकर द्वारा हार मानकर संन्यास लेने को उद्यत होने पर, स्वामीजी ने संन्यास लेने से मनाकर दिया और उनकी सत्यवादिता और धार्मिकता की बहुत प्रशंसा की। पं० गुलजारीलाल भी उस समय स्वामीजी के उपदेश सुनकर और पीछे सत्यार्थप्रकाश पढ़कर वैदिक-सिद्धान्ती बन गये। पं० पुतईलाल भट्टाचार्यने भी मूर्तिपूजा को वेदविरुद्ध स्वीकार किया। एक प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने बताया कि कायस्थ शूद्र नहीं है, अपितु चित्रगुप्त के वंशज होने के कारण वैश्य हैं।

आठ गप्प और आठ सत्य

कन्नौज सात दिन ठहरकर स्वामीजी बिठूर-मदारपुर होते हुए कानपुर पहुंचे। वहां मूर्तिपूजा आदि पर शास्त्रार्थ-हेतु आह्वान करते हुए स्वामीजी ने एक विज्ञापन संस्कृत में छपवाकर बंटवाया, जिसमें निम्नलिखित आठ गप्पों को त्याज्य और आठ सत्यों को ग्राह्य बताया था –

आठ गप्प – १. सब मनुष्यकृत ग्रन्थ ब्रह्मवैवर्तादि पुराण, २. पाषाण आदि की पूजा, ३. शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य आदि सम्प्रदाय, ४. तन्त्रग्रन्थोक्त वाममार्ग,

५. भांग आदि मादक द्रव्यों का सेवन, ६. परस्त्री-गमन, ७. चोरी, ८. छल, कपट, अभिमान, मिथ्याभाषण ॥

आठ सत्य – १. ईश्वरकृत ऋग्वेदादि चार वेद और अन्य २१ ऋषिकृत ग्रन्थ, २. गुरु-सेवा तथा स्वधर्मानुष्ठानपूर्वक ब्रह्मचर्याश्रम में वेदाध्ययन, ३. वेदोक्त वर्णाश्रम में सन्ध्यावन्दन-अग्निहोत्रादि का करना, ४. पञ्चमहायज्ञानुष्ठान, ऋतुकाल में स्वस्त्रीसहवास तथा श्रुति-स्मृति-कथित सदाचार, ५. शम-दम-तपश्चरण-पूर्वक यमादि समाधिपर्यन्त योग से उपासना एवं सत्यसत्संगपूर्वक वानप्रस्थाश्रम का अनुष्ठान, ६. विचार-विवेक-वैराग्यपूर्वक पराविद्या के अभ्यास के साथ संन्यासग्रहण करके सर्वकर्मफल-कामना का परित्याग, ७. ज्ञान-विज्ञान से सर्व अनर्थ मरण-जन्म, हर्ष-शोक, काम-क्रोध-लोभ-मोह-रागद्वेष का त्याग, ८. अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेशरूप क्लेशों एवं तमस्, रजस्, सत्त्व की निवृत्तिपूर्वक पञ्चमहाभूतों से अतीत होकर मोक्षस्वरूप और स्वराज्य की प्राप्ति ॥

संस्कृतज्ञ अंग्रेज की अध्यक्षता में शास्त्रार्थ

ब्रह्मानन्द सरस्वती नामक एक संन्यासी की प्रेरणा से वहां के पं० गुरुप्रसाद शुक्ल और प्रयागनारायण ने स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये पं० हलधर ओझा एवं लक्ष्मणशास्त्री को बुला लिया। संस्कृतज्ञ असिस्टेंट कलेक्टर मि० थेन साहब की अध्यक्षता में ता० ३१-७-१८६९ को शास्त्रार्थ हुआ। सब जज बाबू क्षेत्रनाथ घोष, मुंसिफ काशीनारायण, कोतवाल सुलतान मुहम्मद आदि प्रतिष्ठित पुरुषों के अतिरिक्त बीस सहस्र मनुष्यों की भीड़ थी। विपक्षियों द्वारा महाभारत के एकलव्य द्वारा द्रोणप्रतिमा-स्थापना की बात कहने पर स्वामीजी ने उसे एक अज्ञानी का कर्म बताया और उसके लक्ष्यवेध के श्रेष्ठत्व का कारण उसके मनोयोगपूर्वक निरन्तर अभ्यास को बताया एवं वेदमन्त्र-प्रमाणों से मूर्तिपूजा की अशास्त्रीयता सिद्ध कर दी। विपक्षियों के चुप हो जाने पर मि० थेन साहब के प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने हवन के विषय में कहा कि "यह अग्निपूजा नहीं है, अपितु सुगन्ध आदि पदार्थ अग्नि में डालने से उनका सर्वत्र विस्तार हो जाता है।" विपक्षियों ने 'शोला ए तूर' अखबार के सम्पादक से मिलकर उसमें स्वामीजी के पराजय का झूठा समाचार छपवा दिया। स्वामीजी के भक्त पं० शिवसहाय आदि के द्वारा जब मध्यस्थ मि० थेन साहब से पूछा गया, तो उन्होंने लिख कर दिया कि ..."I Believe his (Swamigee's) arguments are in accordance with the Vedas I think he won the day.... ['मुझे विश्वास है कि स्वामीजी के तर्क वेदानुकूल थे और उस दिन स्वामीजी की विजय हुई'...]।

स्वामीजी सरलतर और मधुर संस्कृत बोलते थे। फलतः पं० हृदयनारायण वकील कश्मीरी उनके संग से संस्कृत समझने लग गये। इन्हीं के घर से प्रायः स्वामीजी का भोजन आया करता था। स्वामीजी कश्मीरी पाकक्रिया की सराहा करते थे।

स्वामीजी शिवलिंग पर बिल्वपत्र चढ़ाने को और रुद्राक्ष की माला धारण करने को व्यर्थ समझते थे ।

अपने पराजय के कुछ दिन पश्चात् पं० हलधर ओझा ने संस्कृत, हिन्दी और उर्दू में इस आशय का एक विज्ञापन छपवाया कि जो लोग स्वामी दयानन्द के मत को स्वीकार कर लें, वे कृपया देवमूर्तियों को गंगा में प्रवाहित न करें, अपितु उन्हें वे 'कैलाशमन्दिर' में अथवा 'वैकुण्ठमन्दिर' में पहुंचा दें ॥

इससे स्पष्ट होता है कि पं० हलधर मूर्तिपूजा के अपने पक्ष को निराधार मानने लगे थे ।

एक दिन गंगातट पर सामगान में लीन स्वामीजी पर लाठी और पत्थरों से लैस कुछ उपद्रवियों ने आक्रमण कर दिया, पर स्वामीजी ने तुरत सचेत होकर समीप के वृक्ष की शाखा तोड़कर उसी से उनको मार पीटकर खदेड़ दिया । स्वामीजी इन दिनों मालकांगनी के तैल का सेवन करते थे, जो कि स्मरणशक्ति-वर्धक और शीतनिवारक होता है ।

स्वामीजी-कृत ग्रन्थ पढ़ने से विरोधी का हृदयपरिवर्तन

यहां एक पं० सूर्यकुमार शर्मा रईस स्वामीजी के बड़े विरोधी थे और स्वामीजी के देहावसान से एक वर्ष पूर्व तक वैसे ही रहे । पर संवत् १९३९ में स्वामीजी की कुछ पुस्तकों को पढ़कर वे संशयरहित हो गये और श्रावण १९४० में जब कानपुर में आर्यसमाज स्थापित हुआ, तो वे भी उसके सभासद् बन गये । स्वामीजी बालविवाह और अति विषयासक्ति को बल का नाशक बताते थे तथा गायत्री-जप एवं प्राणायाम आदि योगाङ्गों को मानसिक और शारीरिक सामर्थ्यों की वृद्धि करने वाला बताते थे ।

गङ्गार्थ-दान से जीविका करने वाला एक व्यक्ति नित्य स्वामीजी को गालियां दिया करता था, किन्तु स्वामीजी के 'दानं च प्रियकारकं' के अनुसार सद्व्यवहार से उसने दुष्टता त्याग दी और उनका भक्त बन गया । पुरानी होने के आधार पर मूर्तिपूजा करने की युक्ति देने पर स्वामीजी कहा करते थे कि 'पुरानी तो चोरी भी है, इससे क्या तुम चोरी करोगे ?'

कानपुर में तीन मास निवास करने के पश्चात् गंगातट पर विचरते हुए स्वामीजी आश्विन सं० १९२६ में काशी समीपस्थ रामनगर पधारे । उस समय वहां के नरेश ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह ने स्वामीजी द्वारा मूर्तिपूजा के खण्डन की बात सुनकर 'यदि स्वामीजी मूर्तिपूजा-खण्डन छोड़ दें तो राज्य से सौ रुपये की मासिक वृत्ति उन्हें मिलेगी' ऐसा सन्देश भिजवाया । स्वामीजी ने उत्तर में "यदि सारा राज्य भी मुझे देवें तब भी मैं मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं छोडूंगा" ऐसा कहलवा दिया ॥

रामनगरनरेश [= काशीनरेश] यद्यपि स्वामीजी से अप्रसन्न थे तथापि स्वामीजी

को कष्ट पहुंचाने के विरोधी थे। यहां अनेक पण्डितों ने मूर्तिपूजा विषय पर स्वामीजी से घण्टों वार्तालाप किया। प्रसिद्ध उदासी विद्वान् पं० ज्योतिःस्वरूप ने स्वामीजी के कथन को सत्य कहा। स्वामी निरंजनानन्द ने भी रामनगरनरेश को मूर्तिपूजा के वेदानुकूल न होने की बात दबी जबान से कही थी।

काशी-विजयार्थ प्रयाण

रामनगर में एक मास रहकर स्वामीजी का० कृ० ३ संवत् १९२६ को विद्या और पाण्डित्य के नाम से प्रसिद्ध तथा हजारों पण्डितों से भरपूर काशी नगरी में आये और दुर्गाकुण्ड के समीपस्थ आनन्दबाग में विराजे। वे यहां पर भी वेदधर्मोपदेश और मूर्तिपूजा आदि-पाखण्डखण्डन में लग गये। इससे सारे नगर में आश्चर्य, उत्तेजना और घबराहट फैल गई। इनके उपदेश से अनेक मनुष्यों ने मूर्तिपूजा त्याग दी। फलस्वरूप मन्दिरों में चढ़ावा कम हो गया। पण्डितों ने स्वामीजी के शास्त्रज्ञान की थाह लेने के लिये अपने छात्रों को भेजा और रामशास्त्री, दामोदर शास्त्री एवं बालशास्त्री आदि भी प्रच्छन्नरूप से स्वामीजी के पास आये। स्वामीजी की विद्या, प्रतिभा और अलौकिक तर्कशक्ति की तथा उनके मन्तव्यों की वेदानुकूलता की उन पर गहरी छाप पड़ गई।

रामनगरनरेश द्वारा बाधित करने पर काशी के पण्डित स्वामीजी से शास्त्रार्थ-हेतु तैयारी में लग गये। पूर्वोक्त पं० ज्योतिःस्वरूप उदासी से स्वामीजी की नवीन वेदान्त पर १४ दिन तक चर्चा हुई और अन्त में उदासीजी ने स्वामीजी की सब बातें स्वीकार कर लीं।

२१ गन्थ प्रामाणिक

शास्त्रार्थ-हेतु तैयारी में लगे पण्डितों द्वारा स्वामीजी से प्रामाणिक ग्रन्थों के नाम पुछवाने पर स्वामीजी ने "चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग, छः उपाङ्ग और प्रक्षेपरहित मनुस्मृति" इन इक्कीस ग्रन्थों की सूची स्वहस्ताक्षरों सहित भिजवा दी। का० शु० १२ मंगलवार सं० १९२६ [१६-११-१८६९ ई०] का दिन शास्त्रार्थ-हेतु निश्चित हुआ।

शास्त्रार्थ के दिन प्रातः बलदेवप्रसाद के द्वारा काशी के उद्दण्डों से भय की चर्चा करने पर स्वामीजी ने कहा "सत्य का सूर्य अज्ञान-अन्धकार की सेना पर अकेला विजय पा लेता है। एक मैं हूं तथा एक ईश्वर और एक धर्म मेरा सहायक है। चिन्ता मत करो।"

काशी-शास्त्रार्थ

येन केन प्रकारेण स्वामी दयानन्द को परास्त करने के उद्देश्य से काशीपण्डितमण्डली काशीनरेश-प्रदत्त तामझामों में बैठकर शास्त्रार्थ स्थल पर आ पहुंची। काशीनरेश जो कि मध्यस्थ थे उन्होंने, व्यवस्था के लिये कलेक्टर द्वारा नियुक्त कोतवाल रघुनाथप्रसाद

के द्वारा की गई व्यवस्था के विपरीत पक्षापातपूर्वक पण्डितों को स्वामीजी के चारों और घेर के बैठा दिया। जो २७ प्रमुख पण्डित शास्त्रार्थ-हेतु निश्चित थे उनमें दाक्षिणात्य पं० बालशास्त्री भी थे। लगभग पचास हजार मनुष्य श्रोता थे।

शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। स्वामीजी ने पं० ताराचरण तर्करत्न को मूर्तिपूजा पर वेदप्रमाण विषय में, स्वामी विशुद्धानन्द को सर्वशास्त्रज्ञता पर, पं० बालशास्त्री को धर्मलक्षणों पर, पं० शिवसहाय को अधर्मलक्षण पर और पं० माधवाचार्य को पुराण शब्द के 'ब्राह्मण' के विशेषणत्व पर चुप कर दिया। तब वामनाचार्य ने छल से वेद के नाम से दो पत्रे [जो कि अस्पष्ट अक्षरों वाले थे] रखे और कहा कि इसमें पुराण शब्द विशेषण नहीं है। स्वामीजी सायंकाल के झुटपुटे में मन्दे प्रकाश में उन पत्रों को पढ़ने का यत्न कर ही रहे थे, कि स्वामी विशुद्धानन्द के नेतृत्व में पण्डितों ने और काशीनरेश ने जान बूझकर 'दयानन्द हार गये' का शोर कर दिया। सभा में कोलाहल मच गया और पहले से तैयार गुण्डे स्वामीजी पर ढेले फेंकने लगे, परन्तु कर्तव्यपरायण रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने स्वामीजी को खिड़की के अन्दर करके उनकी रक्षा की। उस न्यायप्रिय कोतवाल का कोटिशः धन्यवाद है।

काशीशास्त्रार्थ पर निष्पक्ष अखबारों की सम्मति

यह शास्त्रार्थ जिसके लिये काशी ने अपना सारा विद्या, धन और वैभव-बल लगा दिया था और जिसके लिये रातों रात जगकर पण्डितों ने तैयारी की थी, उच्छृंखलता के साथ अनिर्णीत ही समाप्त हो गया। यद्यपि पण्डितों ने जनता में प्रचारित किया कि 'दयानन्द हार गया' तथापि सत्य छिप न सका। अनेक समाचारपत्रों में स्पष्ट प्रकाशित हुआ कि "शास्त्रार्थ में छल से काम लेकर स्वामी दयानन्द के साथ अन्याय किया गया। काशी के पण्डित स्वामी दयानन्द के प्रश्नों का उत्तर न दे सके।" इनमें इलाहाबाद से निकलने वाले अंग्रेजी पत्र 'पायोनियर' आदि प्रमुख थे। 'हिन्दु पेट्रियट'ने भी अपने अंक में पण्डितों के पराजय को स्वीकारा। कलकत्ता से निकलने वाली पत्रिका 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' में वहां के सत्यव्रत सामश्रमी [जो शास्त्रार्थ-समय उपस्थित थे]ने भी पूरा विवरण छापा और पण्डितों के अन्याय का उल्लेख किया। स्वामीजी ने विज्ञापन छपवाकर बंटवाये कि पुनरपि मूर्तिपूजा पर न्यायपूर्वक शास्त्रार्थ होना चाहिये। साथ ही स्वामीजी पूर्ववत् पाखण्ड-खण्डन करते रहे, पर कोई सामने नहीं आया। इस शास्त्रार्थ के पश्चात् भी स्वामीजी स्वजीवनकाल में चार बार काशी गये और शास्त्रार्थ-हेतु ललकारा किन्तु किसी ने मूर्तिपूजा को वेदानुकूल सिद्ध करने का साहस नहीं दिखाया।

उपर्युक्त शास्त्रार्थ का पूरा विवरण 'काशी-शास्त्रार्थ' नाम से छपा हुआ है। जिसे पाठक देखें। शास्त्रार्थ के पश्चात् एक वेदान्ती साधु पं० ईश्वरसिंह स्वामीजी के स्थान पर गये और वार्तालाप में उन्होंने पाया कि स्वामीजी के चित्त पर घोर अपमान का कोई प्रभाव नहीं है और स्वामीजी मात्र वेदज्ञ विद्वान् ही नहीं अपितु वीतराग

महात्मा भी हैं।

कालान्तरमें काशीनरेश द्वारा स्वामीजी से क्षमायाचना

शास्त्रार्थ के कई वर्ष बाद जब स्वामीजी बम्बई से लौटते हुए काशी आये तो महाराजा ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंहने स्वामीजी को ससम्मान स्वबग्घी से महल में बुलवाकर स्वयं पुष्पहार से स्वामीजी का सत्कार किया और काशीशास्त्रार्थ के समय के अपने व्यवहार के लिये क्षमा मांगी। दयालु दयानन्दने क्षमा कर दिया।

स्वामीजी को विष देने का प्रयास

एक अभिमानी पण्डित रामस्वामी मिश्र 'पराजय पर नाक काटने' की शर्त के साथ स्वामीजी से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करने आया पर कुछ समय बाद ही निरुत्तर होकर लौट गया। स्वामीजी द्वारा की गई इस्लाम की समीक्षा से चिढ़कर कुछ मुसलमानों ने एक दिन गंगातट पर ध्यानमग्न स्वामीजी को नदी में डुबोने का प्रयास किया, किन्तु स्वामीजी के भुजबल और सूझबूझ के कारण वे सफल न हुए। एक दिन एक मनुष्य भोज़न और पान में विष मिलाकर स्वामीजी को खिलाने को लाया, पर स्वामीजी सचेत थे। अतः उसका सेवन उन्होंने नहीं किया। साधु जवाहरदास द्वारा गुण्डों के आक्रमण की सम्भावना बताने पर स्वामीजी ने कहा कि १०-१५ गुण्डों के लिये मैं अकेला ही पर्याप्त हूं। पितृगृह में भी एक बार हमारे खेत पर आक्रमणकारी मनुष्यों को, तलवार लेकर मैंने अकेले ही भगा दिया था।

बनारस-कॉलेज में अध्ययनरत भरतपुर, रीवां और तिरवा के महाराजकुमार और एक अंग्रेज नास्तिकमत का पक्ष लेकर स्वामीजी से बात करने आये, पर स्वामीजी ने उन्हें ईश्वर की सत्ता पर विश्वास दिला दिया।

प्रयाग-कुम्भ पर धर्मप्रचार

स्वामीजी शास्त्रार्थ के बाद भी एक मास तक काशी में ठहरकर मिर्जापुर होते हुए माघ शु० ५ संवत् १९२६ को कुम्भ के अवसर पर प्रयाग पहुंचे। मिर्जापुर निवासी पं० मोतीराम से स्वामीजी का दिन भर शास्त्रालाप होता रहा, पर पण्डितजी न तो प्राणप्रतिष्ठा और देव-आवाहन के तथाकथित मन्त्रों से और न ही धूप नैवेद्य चढ़ाने के लिये कल्पित मन्त्रों से मूर्तिपूजा सिद्ध कर सके। हाथरस के पं० हरजसराय और काशी के स्वामी विशुद्धानन्द भी कुम्भ मेले में आये थे, जो दूर से ही डींगें मारते रहे पर शास्त्रार्थ के लिये सम्मुख न आये। आदि ब्रह्म-समाज के नेता देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी मेले में आये थे और स्वामीजी से मिले थे, तथा स्वामीजी के वैदिक पाठशाला खोलने के काम में कलकत्ता आने पर सहयोग करने का वचन भी दिया। काशीवासी पूर्वोक्त पं० ज्योतिःस्वरूप उदासी भी तीस चालीस मनुष्यों के साथ स्वामीजी के डेरे पर सत्संगलाभार्थ आये।

प्रयाग में उन दिनों ईसाई बन जाने को उद्यत कुछ हिन्दू, स्वामीजी के सत्संग से संशयरहित होकर धर्मपरिवर्तन से बच गये ।

महातार्किक कदाचारी भी स्वामीजी से परास्त होकर सदाचारी बना

प्रयाग के एक रिटायर पी० डबल्यू० डी० ओवरसियर माधवचन्द्र चक्रवर्ती नामक तीक्ष्णबुद्धि, तर्कमदोन्मत्त, विचार-उच्छृङ्खल, अपनी प्रश्नावली से धर्माचार्यों और दिग्गजों का मुख बन्द कर देनेवाला और आचारहीन बंगाली ब्राह्मण अपने १०१ प्रश्नों को लेकर स्वामीजी से टक्कर लेने आया । किन्तु थोड़े ही समय में स्वामीजी के उत्तरों से और तर्कतीरों से परास्त होकर स्वामीजी का भक्त बन गया तथा नास्तिकता त्यागकर स्वामीजी के निर्देशानुसार सन्ध्या, गायत्री-जप और हवन आदि करने लगा । कुछ काल के बाद ग्वालियर-प्रवास में उनके मित्र शरच्चन्द्र चौधरी ने माधवबाबू से इस सुखद परिवर्तन का कारण पूछा, तो उसने बताया कि 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' नामक महापुरुष की ही कृपा का यह फल है । माधवबाबू इतने सत्यारूढ़ हो गये कि एक मुकदमे में भी कचहरी में सत्यभाषण करने से मुकदमा हार जाने पर भी सत्यरक्षा के कारण अत्यन्त आनन्दित होकर घर लौटे । इन्हीं माधवबाबू ने एकबार आक्रमणकारी मुसलमानों से स्वामीजी की प्राणरक्षा की थी ।

एक बाजीबढनगरी नामक विदुषी ने स्वामीजी के सत्संग में शास्त्रार्थ-चर्चा के लिये आने वाले पण्डितों को परास्त होता देखकर, एक दिन स्वामीजी से अपने धर्म-विषयक प्रश्नों का समाधान प्राप्त करके अति सन्तोष व्यक्त किया । एक साधु के पूछने पर स्वामीजी ने प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग शब्दों की निःसारता बताई और क्रियात्मक जीवन को ही असली जीवन बताया ।

मिर्जापुर में स्वामीजी की दिनचर्या

प्रयाग से स्वामीजी मिर्जापुर फाल्गुन में पहुंचे । वहां पूर्वोक्त पं० मोतीराम स्वामीजी से मिले और बताया कि मूर्तिपूजा पर वेदादिशास्त्रों में कोई प्रमाण नहीं मिला । तब स्वामीजी ने कहा कि मूर्तिपूजा वास्तव में झूठी है और योगाभ्यास से ही ईश्वर-प्राप्ति सम्भव है । यहां पर भी स्वामीजी मात्र कौपीन धारण करते, शरीर पर मिट्टी लगाते और मात्र संस्कृत ही बोलते थे । उनकी सरल संस्कृत को सुनकर बाग के माली भी टूटी फूटी संस्कृत बोलने लगे थे । स्वामीजी दो बजे रात्रि में जागकर, नित्यकर्मों से निवृत्त होकर तीन बजे से सूर्योदय तक ईश्वरध्यान में लीन रहते थे । नित्यप्रति सैकड़ों मनुष्य स्वामीजी के दरबार में आकर धर्मलाभ उठाने लगे ।

वैदिकधर्म की पुनः प्रतिष्ठापना ही स्वामीजी का संकल्प

मिर्जापुर के कलेक्टर मि० जैकिन्सन के कहने से रईस गुरुचरण चौधरी स्वामीजी के खण्डन-मण्डन का अभिप्राय जानने के लिये श्रीसेवा में उपस्थित हुए । उनके

पूछने पर 'लुप्त हुए वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठापना करना ही हमारा संकल्प है' यह उत्तर स्वामीजी ने दिया। चौधरी से वृत्तान्त पाकर कलेक्टर के स्वामीजी से मिलने को उत्सुक होने पर भी स्थानान्तरण हो जाने से वे सफल नहीं हुए, पर चौधरी गुरुचरण स्वामीजी के अनन्य भक्त बन गये।

स्वामीजी के एक भक्त सेठ रामरत्न के गुरु बालकृष्ण की स्वरचित महाभारतटीका में असंगति तथा व्याकरण-सम्बन्धी दोष दिखाने पर वह स्वामीजी से नाराज हो गया और स्वामीजी की निन्दा करने लगा, पर बारंबार बुलाने पर भी शास्त्रार्थ करने नहीं आया।

एक दिन भागवती गोविन्द भट्ट और पं० जयश्री के नेतृत्व में कुछ ब्राह्मण स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आये। अपने अशुद्ध उच्चारण के कारण गोविन्द भट्ट को चुप होना पड़ा। पं० जयश्री शास्त्रार्थ को आगे बढ़े। स्वामीजी ने 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' [यजु० ३२.३] मन्त्र से मूर्तिपूजा का खण्डन कर दिया। तब उपद्रव पर उतारु उन ब्राह्मणों को स्वामीजी की जोरदार फटकार के कारण अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिल सकी।

'सर्व-अधर्मान् परित्यज्य'

गीताभ्यासी एक सज्जन की जिज्ञासा पर स्वामीजी ने गीता के सर्वधर्मान् परित्यज्य' श्लोक का अर्थ समझाते हुए उसे बताया कि यहां 'सर्व+अधर्मान्' पद है जिसमें व्याकरण के पररूप एकादेश नियम से 'सर्वधर्मान्' ऐसा दिखाई पड़ता है। जैसे 'शक+अन्धु' का 'शकन्धु' बन जाता है। अतः इस श्लोक का सही अर्थ यही है कि समस्त अधर्मों को त्याग कर तू मेरी शरण में आ। इस समाधान से उसे पूर्ण सन्तोष हो गया।

मिर्जापुर के बूढ़े महादेवमन्दिर का बलिष्ठ पुजारी छोटूगिरि गोसाईं अपने साथियों के साथ स्वामीजी को अपमानित करने के उद्देश्य से शिवलिंग पूजा पर बहस करने आया। पहले तो स्वामीजी ने शान्ति से समाधान किया, पर उनकी बढ़ती उद्दण्डता को देखकर स्वामीजी ने रौद्ररूप धारण करके उनकी अशिष्टता का प्रतीकार किया। इस घटना के पता लगने पर मजिस्ट्रेट ने स्वामीजी के निवास पर एक सिपाही को नियुक्त कर दिया।

स्वामीजी को स्वयं वेदभाष्य रचने की प्रेरणा

स्वामीजी ने यहां अंग्रेजी सीखने और वेदमन्त्रों के मैक्समूलरकृत अंग्रेजी अनुवाद का अभिप्राय जानने के लिये, एक बङ्गाली बनवारीलाल को अपने पास नौकर रख लिया था। यहां के पादरी मैथर ने स्वामीजी को स्वयं वेदभाष्य करने को प्रेरित किया।

मिर्जापुर में वैदिक पाठशाला की स्थापना

स्वामीजी की प्रेरणा से चौधरी गुरुचरण रईस ने मिर्जापुर में अपने एक मकान

में चैत्र सं० १९२७ में वैदिक पाठशाला स्थापित कर दी और मासिक व्यय भी सहर्ष वही वहन करने लगे । स्वामीजी ने अपने एक सहपाठी पं० युगलकिशोर को और एक अन्य पं० बलदेवप्रसाद को अध्यापक नियुक्त कर दिया । इसमें सबके लिये सन्ध्या, गायत्रीजप तथा हवन करना अनिवार्य था ।

स्वामीजी के मारणार्थ किये गये पुरश्चरण का उल्टा फल

एक ओझा एक सेठ के धनव्यय के आश्रय से स्वामीजी के प्राणहरणार्थ पुरश्चरण करने लगा । स्वामीजी का तो कुछ नहीं बिगड़ा, अपितु कर्मगतिवश उल्टा उस सेठ के गले में भयंकर पीड़ाप्रद फोड़ा हो गया । परिणामस्वरूप उसे वह पुरश्चरण बन्द करवाना पड़ा ।

पूर्व परास्त हुए छोटूगिरि ने स्वामीजी को पीटने के लिये दो गुण्डे भेजे । उद्दण्डता करने पर उनके उद्देश्य को भांपकर स्वामीजी ने इतनी प्रबल हुंकार की, कि वे दोनों बेहोश हो गये । पं० रामप्रसाद ने जल के छींटों से उन्हें सचेतन किया ।

चैत्र के उत्तरार्ध में स्वामीजी मिर्जापुर से काशी गये । वहां पूर्ववत् मूर्तिपूजा आदि पाखण्डों का खण्डन बेधड़क रूप से करने लगे और विज्ञापनों द्वारा शास्त्रार्थ के लिये ललकारा । पर कोई सम्मुख नहीं आया । नवीनवेदान्तियों के अवैदिक अद्वैतवाद का निराकरण करने के लिये स्वामीजी ने यहीं पर 'अद्वैतमत-खण्डन' नामक पुस्तक लिखकर प्रकाशित की ।

स्वामीजी ज्येष्ठ सं० १९२७ में सोरों होते हुए अपने पं० सुखानन्द और अयोध्याप्रसाद आदिभक्तों के आग्रहपर कासगंज पधारे और नदरई द्वार से बाहर रईस मुकुन्दराम के उद्यान में ठहरे ।

कासगंज में वैदिक पाठशाला की स्थापना

यहां स्वामीजी की पूर्व प्रेरणा के अनुसार कासगंज के भक्तों ने कासगंज में वैदिक पाठशाला स्थापित कर दी । फर्रुखाबाद की पाठशाला से बुलाकर पं० दुलाराम [= दिनेशराम] को अध्यापक रखा । सन्ध्या-गायत्री - हवन आदि नित्यकर्मों के साथ अष्टाध्यायी, महाभाष्य, मनुस्मृति और वेद का अध्ययन अनिवार्य रखा गया । दिलसुखराय गिरधारीलाल की दुकान पर धर्मार्थ जमा एक बड़ी द्रव्यराशि भी पाठशालार्थ दे दी गई ।

रा० ब० बालमुकुन्द और तहसीलदार के द्वारा "आप हिन्दू धर्म की निन्दा क्यों करते हैं" ऐसा कहने पर स्वामीजी ने निन्दा शब्द की व्याख्या करते हुए समझाया कि दोषी के दोषो को प्रकट करना निन्दा नहीं है । यदि ऐसा हो तो राज्याधिकारी और जज आदि सबसे बड़े निन्दक कहे जायेंगे, क्योकि वे चोर तथा अपराधी को चोर एवं अपराधी कहते और उन्हें दण्डित करते हैं ।
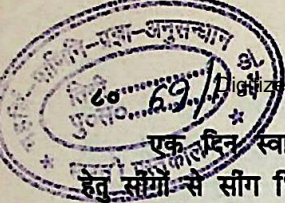
एक दिन स्वामीजी ने देखा कि दो मदोन्मत्त सांडो ने आपस में द्वन्द्वयुद्ध-हेतु सींगों से सींग भिड़ाकर बहुत देर से मार्ग रोक रखा है। तब सबके मना करने पर भी स्वामीजी ने दोनों हाथों से दोनों सांडों के सींग पकड़कर बलपूर्वक उन्हें परे धकेल दिया।

स्वामीजी कासंगज से ग्राम बलराम तथा चकेरी होते हुए हनोट पहुंचे। वहां विष्णुमन्दिर के शास्त्रार्थ की डींगें हांकने वाले पुजारी को कई बार बुलाया, पर किसी भी प्रकार से वह आने को तैयार न हुआ।

स्वामीजी की सभ्यतापूर्ण प्रचारशैली से मुसलमान तहसीलदार भक्त

आगे विचरते हुए स्वामीजी आश्विन सं० १९२७ में अनूपशहर पधारे। उस समय वहां रामलीला चल रही थी। स्वामीजी ने उसका खण्डन आरम्भ कर दिया, कि अपने महापुरुषों का स्वांग भरना उनका अपमान करना है। स्वामीजी से रुष्ट हुए नायब तहसीलदार क़ल्याणसिंह ने स्वामीजी से पूर्व पराजित हो चुके वाममार्गी कृष्णानन्द को रामघाट से शास्त्रार्थ-हेतु बुलवा भेजा। वह सामने न आकर दूर से ही अण्डबण्ड बकता रहा। कल्याणसिंह ने तहसीलदार सैयद मुंहम्मद को स्वामीजी के विरुद्ध भड़काया। तहसीलदार ने जांच करने पर स्वामीजी के व्यवहार को सुसभ्य और वाममार्गी कृष्णानन्द [जो कि ५०० उजड्ड मनुष्यों की भीड़ के साथ था] के व्यवहार को असभ्य पाया। फलतः तहसीलदार के आदेश से कृष्णानन्द को अनूपशहर से जाना पड़ा और सैयद मुहम्मद स्वामीजी का भक्त बन गया।

स्वामीजी इन दिनों गोरक्षार्थ चिन्तित रहते थे। उनका संकल्प था कि गोहत्या निरोध के लिये लन्दन जाकर महाराणी विक्टोरिया और पार्लियामेंट के सदस्यों को समझाऊँ। उन्हीं दिनों जिला कलेक्टर अनूपशहर आये और स्वामीजी के निवासवाली कोठी के एक भाग में ठहरे। स्वामीजी से वार्तालाप करके वे बड़े प्रसन्न हुए।

विष खिलाने वाले की स्वामीजी द्वारा पुलिस-हिरासत से मुक्ति

अनूपशहर में एक पाखण्डी ने स्वामीजी को पान में विष खिला दिया। पता लगने पर स्वामीजी ने न्योली क्रिया से विष बाहर निकाल दिया। सैयद मुहम्मद द्वारा उस विषदाता को कैद कर लिया गया। स्वामीजी के "मैं संसार को कैद कराने नहीं अपितु छुड़ाने आया हूं" यह कहने पर तहसीलदार ने उसे छोड़ दिया।

स्वामीजी की अपूर्व धारणाशक्ति

अनूपशहर के अनेक विद्वान् और सुपठित व्यक्तियों ने मूर्तिपूजा आदि त्याग कर ईश्वरोपासना करना आरम्भ कर दिया। सम्बन्धियों तथा पौराणिकों द्वारा जाति-बहिष्कृत करने की धमकी देने पर भी वे अटल रहे। स्वामीजी की धारणाशक्ति

अपूर्व थी। एक दिन उन्होंनें अपने भक्त पं० भगवान् वल्लभ [= भगवद्वल्लभ] से सुश्रुत संहिता मंगाई और दो दिन में ही उस पर ऐसा अधिकार कर लिया, कि प्रसंगानुसार उसके वाक्य के वाक्य मौखिक रूपे से ही उद्धृत करने लग गये। डिप्टी कलेक्टर राजा जयकृष्णदास सी० एस० आई० भी एक दिन स्वामीजी से भेंट करने आये।

स्वामीजी का परोक्षघटना-ज्ञान

स्वामीजी में परोक्ष बात जानने की भी शक्ति थी। कर्णवास के एक ठाकुर ने स्वामीजी के निर्देशानुसार एक सफल पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था। उसमें एक ब्राह्मण ने छिपकर यज्ञपिण्ड बाहर फेंक दिया था। जिसका स्वामीजी को ज्ञान हो गया था। स्वामीजी जातिगत छूआछूत से परे थे। एक दिन एक नाई के द्वारा स्वगृह से श्रद्धापूर्वक लाये गये भोजन को स्वामीजी ने सहर्ष पा लिया। स्वामीजी में अपने वेदधर्मप्रचार एवं पाखण्डखण्डन रूप उद्देश्य के प्रति असाधारण साहस था। तीव्र आलोचना, कटु निन्दा, तिरस्कार, अपमान और प्राणहरणात्मक आक्रमण भी उन्हें अपने लक्ष्य से विचलित नहीं कर पाते थे।

कार्तिक पूर्णिमा सं० १९२७ को स्वामीजी रामघाट गये। अनेक पण्डित और साधारण जन सत्संग में आकर और पाखण्डें को त्यागकर वेदधर्मानुयायी बन गये।

स्वामीजी के अनन्य भक्त ठा० मुकुन्दसिंह

कुछ समय पश्चात् स्वामीजी चासी ठहरते हुए मार्ग० कृ० ५ को छलेसर पहुंचे और उनके दृढ भक्त ठाकुर मुकुन्दसिंह के उद्यानगृह में उतरे। ठा० मुकुन्दसिंह स्वामीजी के पूर्व छलेसर-वास से ही इतने अनन्य अनुयायी बन गये थे, कि उन्होंने अपनी जमींदारी के बीसियों मन्दिरों में से मूर्तियां हटवा दी थीं, जिससे ब्राह्मण तो क्या स्वजातीय जन भी उनके विरुद्ध होकर स्वजाति-बहिष्कृत करने की धमकी देने लगे, पर वे दृढ़ रहे। परिणामतः धीरे धीरे विरोध शान्त हो गया और साठ ग्रामों के क्षत्रिय वेदधर्मानुयायी बन गये।

छलेसर में वैदिक पाठशाला की स्थापना

इन्हीं ठा० मुकुन्दसिंह के उस उद्यान में मार्ग० कृ० ७ को वैदिक पाठशाला की स्थापना हुई और फर्रुखाबाद पाठशाला के पूर्वछात्र पं० कुमारसेन को अध्यापक नियुक्त किया गया। पाठशाला का समस्त व्यय भी ठा० मुकुन्दसिंह वहन करने लगे।

छलेसर में भी स्वामीजी से वार्तालाप तथा शास्त्रार्थ के लिये अनेक पण्डित आते रहे। कई सन्तुष्ट होकर वेदमतानुयायी बन गये। साधारण श्रोताओं की तो भीड लगी ही रहती थी। अनेक मौलवी और काजी भी इस्लाम का श्रेष्ठत्व बताने और धर्मचर्चा हेतु आते, पर परास्त होकर जाते। अतरौली-निवासी एक सुपठित काजी

इमदादअली ने स्वामीजी के कथन की सत्यता स्वीकार कर ली और उनके भक्त बन गये ।

ठा० मुन्नासिंह भी स्वामीजी के अनन्य भक्त बन गये । ठा० मुकुन्दसिंह के पुत्र चन्द्रसिंह ने स्वामीजी के समझाने पर पिता से वैरभाव त्याग दिया ।

छलेसर से प्रस्थान करके गंगातटवर्ती स्थानों में भ्रमण करते हुए स्वामीजी संवत् १९२८ के ज्येष्ठ मास में रामगढ़ पहुंचे और २१ दिन वहां ठहरकर पुनः परिव्रजन पर निकल पड़े। इन दिनों स्वामीजी अधिकतर शास्त्र-चिन्तन में समय लगाते थे । बीच बीच में स्वस्थापित पाठशालाओं का निरीक्षण भी करते थे ।

संवत् १९२८ के मार्गशीर्ष में स्वामीजी फर्रुखाबाद पधारे । पूर्ववत् उपदेशकार्य आरम्भ हो गया। स्वस्थापित पाठशाला का निरीक्षण और विद्यार्थियों का परीक्षण स्वामीजी ने किया । पाठशाला के मुख्य सहायक एवं स्थानदाता सेठ पन्नीलाल के विद्यार्थियों के प्रति रूखे व्यवहार के कारण स्वामीजी ने पाठशाला को उक्त सेठ के बाग से हटाकर विश्रान्त पर स्थापित कर दिया और उसे सेठ निर्भयराम के प्रबन्ध में दे दिया ।

स्वामीजी पर विषप्रयोग का प्रयास

फाल्गुन में स्वामीजी काशी पहुंचे । उपदेश के साथ ही शास्त्रार्थ के लिये आह्वान भी किया । पर कोई न आया । एक दिन सत्संगसमय में स्वामीजी ने कहा कि अभी एक अद्भुत घटना होगी । थोड़ी देर बाद एक व्यक्ति स्वामीजी के लिये भोजन और पान रखकर भाग गया । देखने पर ज्ञात हुआ कि पान और भोजन में विष था ।

काशी से स्वीमीजी ने कलकत्ते की ओर प्रस्थान किया और चैत्र शु० नवमी १९२९ को मुगलसराय पहुंचे। वहां कलकत्ता-निवासी पादरी लालबिहारी दे से बातचीत में स्वामीजी ने पापों के क्षमा होने की धारणा को पापों को बढ़ाने वाली बताया ।

दस दिन बाद स्वामीजी वहां से चल के डुमराऊँ आये और उदासी साधु नागाजी के मठ पर उतरे । डुमराऊँ के महाराजा महेश्वर बख्शसिंह की अनुमति से उनके नायब दीवान जयप्रकाशलाल स्वामीजी को राज्य की कोठी में ले आये और वहीं उनका भोजनादि का प्रबन्ध कर दिया ।

एक दिन महाराजकुमार माधवप्रसादसिंह, मुंशी रणधीरप्रसाद और जयप्रकाशलाल भी धर्मचर्चार्थ आये । एक विद्याभिमानी दुर्गादत्त परमहंस, पं० जयगोविन्द और पं० वंशीधर के साथ स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आये । शिवपिण्डी, अद्वैतवाद, वेद में मूर्तिपूजाविधान आदि विषयों पर चर्चा हुई । परास्त होने पर पं० दुर्गादत्त कटुवचन बोलने लगे । कोठी की ओर से एक थान और पर्याप्त द्रव्य स्वामीजी को भेंट किया गया, पर उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया ।

स्वामीजी डुमराऊँ से आरा गये । वहां वकील हरवंशलाल और रजनीकान्त

मुखोपाध्याय ने उनका सत्कार किया। शास्त्रार्थ में मूर्तिपूजा के लिये पं० रुद्रदत्त और चन्द्रदत्त के द्वारा पुराणों के प्रमाण देने पर स्वामीजी ने कहा कि हम वेद और मनुस्मृति आदि आर्षग्रन्थों को ही प्रमाण मानते हैं, पुराण तो वञ्चक लोगों के बनाये हुए हैं। स्वामीजी ने तन्त्रग्रन्थों का भी खण्डन किया।

आरा में आर्यधर्मप्रसार-सभा की स्थापना

स्वामीजी के आरा में दो विशेष व्याख्यान 'वैदिक धर्म' पर हुए। स्वामीजी की संस्कृत का अभिप्राय बाबू रजनीकान्त हिन्दी में श्रोताओं को समझाते थे। इसमें प्रचलित हिन्दू धर्म की रीतिनीति, मूर्तिपूजा, बालविवाह, आधुनिक दीक्षाग्रहण और कानफुंकवा मन्त्रदान को वेदविरुद्ध सिद्ध किया गया। यहां स्वामीजी ने आर्यधर्म-प्रसार-हेतु एक सभा की भी स्थापना की थी। मुंशी हरवंशलाल और रजनीकान्त के प्रबन्ध से स्वामीजी का जिला मजिस्ट्रेट एच० डब्ल्यू० अलेक्जेण्डर के साथ संस्कृत भाषा की महत्ता, हिन्दू रीतिनीति, सामाजिक व्यवस्था और वर्णों की कर्मचरित्रानुसार व्यवस्था-विषय में बातचीत हुई।

पटना में धर्मप्रचार

१५ दिन बाद आरा से प्रस्थान करके स्वामीजी भाद्र० शु० ४ सं० १९२९ को पटना पहुंचे और महाराजा भूपसिंह के रोशन बाग में ठहरे। वहां रामजीवन भट्ट पचास आदमियों के साथ शास्त्रार्थ करने आये, किन्तु कुछ देर बाद अन्तर्कलह के कारण वापिस चले गये। एक सज्जन के पूछने पर स्वामीजी ने बताया "जीव मरने के पश्चात् वायु-आकाश आदि में होता हुआ अन्नजल के माध्यम से कर्मानुसार प्राप्त योनियों में पहले पुरुष के हृदय में और फिर शुक्र में स्थान ग्रहण करता है और यथासमय स्त्री-गर्भ में पहुंचता है"। पटना कालेज के पण्डित रामलाल ने स्वामीजी के उपदेश से मूर्तिपूजा त्याग दी।

स्वामीजी का परोक्षवृत्त-ज्ञान

स्वामीजी ने पास पाचकरूप में नवनियुक्त विद्यार्थी राजनाथ तिवारी एक दिन अंधेरे में जब शहर से स्वामीजी के पास दूध-मिश्री लेकर पहुंचा तो स्वामीजी ने पूछा कि तू मार्ग में पड़े सांपों से डरा था क्या? राजनाथ तथा अन्य लोग स्वामीजी के परोक्षज्ञान से विस्मित हो गये, क्योंकि यह बात सत्य थी।

एक दिन वकील गुरुप्रसाद रईस से वार्तालाप में स्वामीजी ने संसार एवं आश्रम के त्याग की बात को निःसार बताया। स्वामीजी लकीर लगा कर चौके में भोजन करने को व्यर्थ मानते थे।

स्वामीजी का तुरत श्लोक बनाने का सामर्थ्य

स्वामीजी के भागवत-खण्डन से रुष्ट हुए एक ब्राह्मण द्वारा 'कोई भागवत जैसे

१८००० श्लोक बना कर तो दिखावे' यह चैलेंज देने पर स्वामीजी ने तुरत जूता और छाता के संवाद रूप में श्लोक बनाकर बोलने शुरु कर दिये और कहा कि आप लिखते जाइये। हम इसी पर ३८००० श्लोक बना देंगे। उसने दो चार श्लोक लिखते ही स्वामीजी की योग्यता देखकर लिखना बन्द कर दिया और प्रणाम करके चला गया। पं० रामावतार भी कौमुदी के आद्यश्लोक का उच्चारण करके शास्त्रार्थ करने आये पर अपने अशुद्ध उच्चारण के कारण श्रोताओं की हंसी के पात्र बनकर चलते बने। स्वामीजी ने मूर्तिपूजा और पुराणों पर शास्त्रार्थ-हेतु विज्ञापन भी दिलवाया पर कोई न आया।

एक मास तक पटना में उपदेशवर्षा करके स्वामीजी जमालपुर होते हुए आश्विन शु० १ को मुंगेर पहुंचे और गंगातट पर एक साधु के आश्रम पर डेरा लगाया। स्वामीजी के एक सेवक द्वारा एक टाल से ईंधन की भिक्षा मांगने पर उन्होंने उसे दण्डित किया। कहार की इस परोक्ष ईंधनभिक्षा को स्वामीजी ने अपने स्थान से ही जान लिया था। अपने पाचक राजनाथ के पास विद्यमान 'आदित्यहृदय' आदि अनार्ष ग्रन्थों को स्वामीजी ने उसी के हाथों से गंगा में बहवा दिया।

का० कृ० २ को मुंगेर से प्रस्थान करके का० कृ० ४ को स्वामीजी भागलपुर पहुंचे और पं० मोहनलाल शकल्यद्वीपी के छपटियातालाब स्थित मन्दिर में आसन जमाया। पूर्ववत् खण्डन-मण्डन आरम्भ हो गया। स्वामीजी की सरल प्राञ्जल संस्कृत को सुनकर पण्डितगण हतप्रभ हो गये। एक अग्रवाल द्वारा भेजे गये अन्न-दुग्ध को दो दिन बाद स्वामीजी ने बन्द कर दिया। परोक्ष-ज्ञान से उन्हें पता लगा था कि लाला पुत्रलाभ रूपी स्वार्थ के लिये यह अन्नदुग्ध भेज रहा है। पाचक राजनाथ के पिता के भागलपुर आने की बात भी स्वामीजी ने आधा घण्टा पहले ही उसे बता दी थी। स्वामीजी ने राजनाथ को उसके दुःखी पिता के साथ ही भेज दिया। पीछे स्वामीजी पार्वतीचरण के बाग में चले गये। गवर्नमेंट हाईस्कूल में 'मनुष्य के कर्तव्याऽकर्तव्य' पर एक व्याख्यान हुआ। जिसमें मृतकश्राद्ध का खण्डन करते हुए स्वामीजी ने जीवित पितृजनों के श्राद्धतर्पण पर जोर दिया।

महाराजा वर्धमान की प्रेरणा से चार नैयायिक पण्डित भी स्वामीजी से पांच घण्टे तक न्याय पर चर्चा करके सन्तुष्ट होकर गये।

एक दिन ३०-४० योरोपियन तथा देसी पादरी और मौलवी चर्चा हेतु आये, पर वे स्वामीजी के आक्षेपों और युक्तियों का उत्तर न दे सके॥

एक दिन स्वामीजी का कुछ पादरियों के साथ ईश्वर के साकार या निराकार होने पर वार्तालाप हो रहा था। तब पूर्वोक्त चार पण्डितों के साथ महाराजा वर्धमान उपस्थित हुए। वार्तालाप सुनकर महाराजा ने स्वामीजी को स्वस्थान पर ठहरने का

निमन्त्रण दिया, पर उस स्थान के उपयुक्त न होने के कारण वे वहां नहीं गये ।

बनेला के राजा निरानन्दसिंह के द्वारा पुत्रेष्टियज्ञ के विषय में पूछने पर स्वामीजी ने 'बड़ी आयु में पुत्रलाभ पुष्टिकारक ओषधियों के सेवन से सम्भव है' ऐसा बताया ।

छूआछूत से दूर

एक दिन स्वामीजी के कमरे में रखे भोज्य पदार्थों को बाहर से ही देखकर, वार्तालाप को उत्सुक एक सुशिक्षित मौलवी के संकोच के कारण बाहर ही खड़े रह जाने पर स्वामीजी ने 'आपके आने से हमारे ये पदार्थ दूषित न होंगे' कहकर आग्रहपूर्वक अन्दर बुला लिया ।

एक दिन गंगापार पर्व का मेला था । उसमें लोगों द्वारा पण्डोंको अपनी कन्याओं का दान करते देखकर स्वामीजी लोगों की मूर्खता और पण्डों की धूर्तता से अत्यन्त दुःखी हुए और उस दिन उन्होंने इस पीड़ा से सायं भोजन भी नहीं किया ।

कलकत्ता महानगरी में धर्मप्रचार

भागलपुर से प्रस्थान करके स्वामीजी पौ० कृ० २ सं० १९२९को कलकत्ता पहुंचे । बैरिस्टर चन्द्रशेखर ने उन्हें राजा सौरेन्द्र मोहन ठाकुर के बाग में ठहराया । ब्राह्मसमाज के उपदेशक पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती के प्रश्नों के उत्तर में स्वामीजी ने बताया कि चारों वर्णों की व्यवस्था गुणकर्मों के अनुसार है, ईश्वर एक है तथा निराकार है, अष्टांग योग के निरन्तर अभ्यास से ईश्वर-प्राप्ति होती है, सांख्यदर्शन अनीश्वरवादी नहीं है, षड्दर्शन परस्पर विरोधी नहीं हैं, अपितु ये जगत् के छः कारणो में से एक एक की स्वतन्त्र रूप से व्याख्या करते हैं और यज्ञोपवीत अवश्य पहनना चाहिये । स्वामीजी के उपदेश से चक्रवर्ती और अन्य अनेक ब्राह्मण सदा यज्ञोपवीत धारण करते रहे और ब्रह्मसमाज के कुप्रचार में नहीं फंसे । पं० चक्रवर्ती तो स्वामीजी से कलकत्ता में और बाद में कानपुर तथा फर्रुखाबाद में भी उपनिषदें पढ़ते रहे ।

कलकत्ता के विशिष्ट सत्संगी

स्वामीजी अपराह्न दो बजे तक योगाभ्यास, भ्रमण एवं विचार आदि में रत रहते थे । चार बजे से सभा जुटती थी । साधारण जनों के अतिरिक्त श्री केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, द्विजेन्द्रनाथ, पं० तारानाथ तर्कवाचस्पति, पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न आदि प्रतिष्ठित एवं विद्वज्जन भी सत्संग में यथासमय आते थे । इन विद्वानों से पुनर्जन्म, अद्वैतवाद तथा होम पर विशेष वार्ता हुई । राजनारायण वसु की पुस्तक 'हिन्दू धर्म की विशेषता' को देखकर उन्हें पुराण-प्रमाणों के स्थान पर वेद से लेकर महाभारत तक के ही प्रमाण देने को कहा ।

कलकत्ता के अखबारों का अभिमत

कलकत्ता से निकलने वाली 'पताका' पत्रिका के सम्पादक ने लिखा कि स्वामीजी

के कलकत्ता-आगमन से आबालवृद्ध में एक आश्चर्यकारक आन्दोलन मच गया। स्वामीजी की सरलतम और मधुर संस्कृत को सुनकर और बिना अंग्रेजी जाने भी उनके धर्म एवं समाज-सम्बन्धी उदारतम विचारों को सुनकर हमें अपूर्व आनन्द हुआ। द्विजेन्द्रनाथ के प्रयास से स्वामीजी ता० २१-१-१८७३ को महर्षि देवेन्द्रनाथ के गृह पर ब्रह्मसमाज के उत्सव में गये और अपने धर्मोपदेश से सबको सन्तुष्ट किया। देवेन्द्रनाथ के उपनिषत् प्रधान 'ब्राह्मधर्म' ग्रन्थ को सुनकर स्वामीजी ने कहा कि इसका नाम 'उपनिषद्-व्याख्या' ही रखना उचित है।

२ मार्च १८७३ को बड़ानगर बोरन्यो कम्पनी के हॉल में हुए व्याख्यान में स्वामीजी ने होम के लाभ, ईश्वर एक है, जीवात्मा-परमात्मा-सम्बन्ध, और पंच महायज्ञों की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला। ९ मार्च को वरहागौर नाइटस्कूल में तीन घण्टे तक हुए व्याख्यान के विषय में कलकत्ता के अंग्रेजी अखबार के १५ मार्च के अंक में सम्पादकीय नोट था कि "बड़ी संख्या में उपस्थित जनसमुदाय और सम्भ्रान्त व्यक्तियों की उपस्थिति में पं० दयानन्द सरस्वती स्वामी ने ओज एवं वीरत्वभरी सरल संस्कृत में वेदों के मन्त्रों एवं अकाट्य युक्तियों से परमेश्वर की एकता, जन्मगत जातपांत की हानियां और बालविवाह की बुराईयां सिद्ध कीं।"

संस्कृत स्कूल-कॉलेजों में वेद पढ़ाने पर जोर

बाबू प्रसन्नकुमार ठाकुर द्वारा मूला-जोड़ में स्थापित संस्कृत पाठशाला को देखने पर स्वामीजी ने कहा कि संस्कृत-पाठशालाओं में अनिवार्य रूप से वेद का पठनपाठन होना चाहिये, अन्यथा इन पाठशालाओं और कॉलेजों का होना व्यर्थ है। पुराण आदि की कुत्सित शिक्षा से लोग दुराचारी बन जाते हैं।

केशवचन्द्र सेन जब सर्वप्रथम स्वामीजी से मिले तो थोड़े से वार्तालाप के आधार पर ही जान लिया कि ये केशव बाबू हैं। स्वामीजी की इस पुरुष-परीक्षा की अपूर्व शक्ति से केशवबाबू चकित हो गये। उनके प्रश्न करने पर स्वामीजी ने कुरान और बाइबल से वेदों के श्रेष्ठ होने में छः युक्तियां दीं, इनमें एक यह थी कि कुरान और बाइबल में अधिकतर झगड़े बखेड़े का वर्णन है, जब कि वेदों में सदुपदेश ही है।

केशव बाबू के निवेदन पर लोकभाषा में बोलना और पूरे वस्त्र पहनना स्वीकार

दुभाषिया द्वारा गलत अनुवाद करने की बात कहकर केशवबाबू ने स्वामीजी से लोकभाषा में व्याख्यान देने की, प्रार्थना की, जिसे स्वामीजी ने तुरत मान लिया। केशवबाबू और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के द्वारा किये गये पूरे वस्त्र पहनने का आग्रह भी स्वामीजी ने लोकरीति के कारण मान लिया।

केशवबाबू ने कोलूलोय वाले अपने घर पर स्वामीजी को आमन्त्रित करके 'जन्म कर्माधीन है कि नहीं' इस विषय पर विचार विमर्श किया। उन्हीं के द्वारा बुलाई गई सभा में स्वामीजी ने संस्कृत में मूर्तिपूजा, अद्वैतवाद और वर्तमान जातिभेद के खण्डन में व्याख्यान दिया और विधवा-विवाह और कन्याओं के १८ वर्ष की आयु में विवाह को उचित बताया।

स्वामीजी के व्याख्यानों की अखबारों में धूम

१३ मार्च १८७३ ई० को बाबू गौराचांद के गृह पर दो घण्टे तक संस्कृत में हुए स्वामीजी के व्याख्यान के विषय में २५ मार्च के 'इण्डियन मिरर' अखबार में और 'आचार्य केशव देव' पुस्तक में छपा कि 'स्वामी दयानन्द सरस्वती को सुनने के लिये चार सौ श्रोता उपस्थित थे। स्वामीजी का ईश्वर एक है, ईश्वर के गुण और धर्म के लक्षण विषयों पर बिना किसी पूर्व तैयारी के भाषण हुआ। संस्कृत-कॉलेज के प्रिंसिपल पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न के साथ वेद में बहु-देवतावाद विषय पर शास्त्रार्थ भी हुआ, पर स्वामीजी की तीक्ष्ण मनीषा के आगे पण्डित को पराजय स्वीकारना पड़ा। स्वामीजी ने 'हम लोगों को 'हिन्दू' नाम नहीं अपनाना चाहिये। यह विदेशियों के द्वारा हमारी निन्दा के रूप में दिया गया है' यह भी प्रतिपादित किया।

एक दिन स्वामीजी पं० राजकुमार विद्यारत्न के साथ 'एशियाटिक सोसायटी' के भवन में भी गये। वहां प्रतापचन्द्र घोष ने उनका सम्मान किया। पं० ताराचरण तर्करत्न तीन दिन तक शास्त्रार्थ करने की प्रतिज्ञा करके भी सम्मुख न आये। ब्राह्मसमाज की पत्रिका में स्वामीजी के गुणों और कार्यों की प्रशंसा की गई थी। 'धर्मतत्त्व' नामक अखबार के शक संवत् १७९४ के १ चैत्र के अंक में "दयानन्द सरस्वती" नामक शीर्षक से लम्बा लेख निकला था, जिसमें बताया गया कि "स्वामीजी दिग्गज हिन्दूशास्त्रविशारद, मिष्टभाषी, तीक्ष्णबुद्धि, सरलसंस्कृत-प्रवक्ता, उदारचेता, घण्टों समाधिध्यान द्वारा ईश्वरोपासक और परमहंस हैं। ईश्वर की उपासना का प्रचार और मूर्तिपूजा का सर्वथा निवारण उनका जीवनलक्ष्य है। वे चित्तशुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, मनोनिरोध, प्रीति, ईश्वरगुणकीर्तन और प्रार्थना को उपासना का प्रकार मानते हैं। वे भाषा, व्याकरण, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र और पदार्थ-विद्या को शिक्षा में अनिवार्य स्थान देने को कहते हैं। कन्याओं की शिक्षा में इनके अतिरिक्त शिल्प, संगीत और वैद्यक-शास्त्र का पठन आवश्यक मानते हैं। शंकराचार्य द्वारा प्रचारित अद्वैतवाद को वे अवैदिक मानते हैं। वे वेद में बहुदेवतावाद को नहीं मानते। अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि नाम प्रसंगानुसार ईश्वर के गुणपरक नाम हैं। स्वामीजी में इन्द्रियनिग्रह और आत्मसंयम है। वे विनोदी स्वभाव के हैं॥"

इसी प्रकार 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका ने भी लिखा कि मूलशास्त्रों के ज्ञाता पण्डितप्रवर दयानन्द सरस्वती स्व-विद्या-प्रभाव से कलकत्ता-वासियों को चकित कर गये हैं।

कलकत्ते से विदा होकर स्वामीजी १ अप्रैल १८७३ ई० को हुगली पहुंचे और बाबू वृन्दावनचन्द्र मण्डल के बाग में ठहरे। हुगली कॉलेज के प्रिंसिपल पूर्वपरिचित पादरी बिहारीलाल दे से स्वामीजी का वर्णभेद विषय पर वार्तालाप हुआ। जिसमें मिस्टर दे ने स्वामीजी के कथन को स्वीकार किया। वृन्दावन बाबू के बाग में ६ अप्रैल को हुगली के सम्भ्रान्त और शिक्षित श्रोताओं के समक्ष एक व्याख्यान हुआ। अक्षयकुमार घोष और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि विद्वज्जनों ने स्वामीजी की कठिन विषयों की सरल संस्कृत में व्याख्या करने की शक्ति की सौ सौ बार प्रशंसा की।

हुगली-शास्त्रार्थ

काशी-शास्त्रार्थ में भाग लेने वाले पं० ताराचरण तर्करत्न कलकत्ता में शास्त्रार्थ से टलते रहे। पर हुगली में वृन्दावन बाबू के तीव्र आग्रह पर स्वामीजी के साथ उन्हें ८ अप्रैल १८७३ को शास्त्रार्थ करना पड़ा। उनके साथ भट्टपल्ली [= भाटपाड़ा] के कई पण्डित भी आये। चार वेद, छः वेदांग और छः दर्शनों के प्रामाण्य के घेरे में प्रतिमापूजन पर शास्त्रार्थ हुआ। तर्करत्न के बारंबार प्रामाण्य-ग्रन्थों से बाहर के प्रमाण देने पर स्वामीजी बराबर टोकते रहे और उनकी संस्कृत की अशुद्धियों को भी स्वामीजी ने दर्शाया। अन्त में तर्करत्न के द्वारा उपासनामात्र को भ्रममूलक कहने पर भूदेव मुखोपाध्याय, पं० हरिहर तर्कसिद्धान्त और वृन्दावन बाबू ने तर्करत्नजी को प्रतिज्ञान्तर होने के कारण परास्त माना तो वे चुप हो गये। दूसरे कमरे में वृन्दावन बाबू आदि के समक्ष उन्होंने स्वामीजी से कहा कि मैं भी मूर्तिपूजन को मिथ्या मानता हूं, पर जीविका-रक्षार्थ मैं बाहर सत्य सत्य नहीं कह सकता।

इन दिनों बाबू मन्मथनाथ चौधरी नामक युवक स्वामीजी के परम भक्त बन गये थे और उनके समीप ही सोया करते थे। उन्होंने स्वामीजी के मरणोपरान्त एक पत्र में लिखा था कि हुगली के शास्त्रार्थ के दिन की रात्रि में कुछ पण्डित स्वामीजी के कमरे में आये और क्षमाप्रार्थना-पूर्वक बोले कि हम अपने पक्ष की निर्बलता स्वीकार करते हैं और आपके मन्तव्यों का विरोध हम हमारे कट्टर हिन्दूसहायकों (= राजा आदि) को प्रसन्न करने के लिये करते हैं। आगे मन्मथ बाबू स्वामीजी के साथ रहने के संस्मरण रूप में लिखते हैं, कि स्वामीजी की दालभाजी में विलक्षण मसाले पड़ते थे। वैसा स्वाद जीवन में मैंने कभी नहीं चखा। मैंने अनेक योगी देखे हैं, पर वैसा योगाभ्यासी अन्य नहीं मिला। निरन्तर ८-८ घण्टे वार्तालाप तथा व्याख्यान देने पर भी वे थकते न थे। उनका जन्म विशेष उद्देश्यार्थ ही हुआ था। उनका जैसा समतावाद अन्यत्र नहीं देखा। वे परमनिःस्वार्थी देशभक्त थे। वे परम आस्तिक, अद्वितीय विद्वान्, भक्त और मनःसंयमी थे।

यहां एक व्याख्यान वर्णभेद पर भी हुआ । वे निम्नवर्णस्थों को गुणकर्मानुसार ब्राह्मणादि वर्ण देने के पक्ष में थे । ब्रह्मास्त्र तथा आग्नेयास्त्र आदि की सत्यता को भी उन्होंने स्वीकारा था ।

दस दिन हुगली में रहकर स्वामीजी वर्द्धमान पहुंचे और राजा वनविहारी कपूर के आतिथ्य में रहे । कुछ दिन वहां धर्मोपदेश करके १७ अप्रैल १८७३ ई० (वै० कृ० ५ संवत् १९३०) को वे भागलपुर आये और पूर्ववत् पार्वतीचरण के बाग में ठहरे । एक मास तक सदुपदेशवर्षा करके वे १८ मई १८७३ ई० को पटना पहुंचे और गुलाब-बाग में ठहरे । विज्ञापन द्वारा आह्वान करने पर भी शास्त्रार्थ करने कोई नहीं आया । जिज्ञासुजन लाभ उठाते रहे । दो व्याख्यान विशेष हुए । एक मूर्तिपूजा, मृतकश्राद्ध और पिण्डदान के खण्डन पर और दूसरा सृष्टि-उत्पत्ति पर ।

पर्दे की ओट में शास्त्रार्थ

पटना में सात दिवस रहने के पश्चात् २५.५. १८७३ को स्वामीजी छपरा पहुंचे, जहां राय शिवगुलाम साह बहादुर ने प्रेम और सत्कारपूर्वक उन्हें एक सुसज्जित भवन में ठहराया । शिवगुलाम स्वामीजी के प्रेम और मिष्टभाषण आदि के कारण उनके प्रति अति श्रद्धालु हो गये । स्वामीजी की ओर से शास्त्रार्थ-हेतु विज्ञापन देने पर पौराणिक लोग येन केन प्रकारेण अभिमानी पण्डित जगन्नाथ को नेता बनाकर शास्त्रार्थ करने आये । जगन्नाथ की जिद्द पर पर्दे की ओट में शास्त्रार्थ हुआ, पर जगन्नाथ स्वामीजी के स्मृतियों में से किये गये प्रश्नों का उत्तर न दे सके और निरन्तर अशुद्ध संस्कृत बोलते रहे । स्वामीजी के द्वारा अशुद्धियां बताने पर जगन्नाथ तो चुप हो गया, पर गुण्डों ने कोलाहल मचा दिया और प्राणहरण करने की धमकी दी । फिर भी स्वामीजी ने श्रोताओं को वेदोपदेश से कई घण्टों तक आनन्दित किया । इस बात की पुष्टि 'बिहारदर्पण' पत्र के मई के अंक में भी की गई ।

स्वामीजी छपरा से ११ जून १८७३ ई० को आरा आये और महाराज डुमराऊँ की कोठी में उतरे । मुंशी हरवंशलाल पूर्वोक्त पं० रुद्रदत्त को साथ लेकर शास्त्रार्थ हेतु आये, पर व्याकरण-सम्बन्धी प्रश्नों में ही निरुत्तर होकर दोनों लौट गये । उमानन्द नामक जैन-पुरोहित के तर्कों का भी स्वामीजी ने सही समाधान किया । एक दिन ध्यानावस्था में बैठे स्वामीजी को मारने के लिये एक विरोधी तलवार लेकर आया, पर स्वामीजी की हुंकार से वह भाग छूटा । रजनीकान्त बाबू ने वार्तालाप के प्रसंग से जाना कि स्वामीजी को अंग्रेजी सरकार के कानून का भी ज्ञान है । आरा निवास काल से स्वामीजी वस्त्रधारण और जूताधारण करने लगे थे । आरा में एक मास के लगभग निवासकाल में स्वामीजी के कई व्याख्यान हुए ।

तत्पश्चात् स्वामीजी मार्ग में १३ दिन डुमराऊँ ठहरकर ८ अगस्त १८७३ को

मिर्जापुर गये और सेठ रामरतन लड्डा के बाग में ठहरे। वहां की पूर्वस्थापित पाठशाला को अव्यवस्था और सही प्रबन्धक न मिलने के कारण स्वामीजी ने तोड़ दिया।

स्वामीजी की प्रेरणा से काशी में वैदिक पाठशाला

स्वामीजी की प्रेरणा से पं० जवाहरदास उदासी ने काशी में केदार घाट पर पौष कृ० २ संवत् १९३० को 'सत्यशास्त्र-पाठशाला' नाम से वैदिक पाठशाला स्थापित की। जिसमें अष्टाध्यायी-महाभाष्य पढ़ाने हेतु पं० शिवकुमार शास्त्री नियुक्त हुए।

पक्षपाती कोतवाल की शह से कानपुर की सभा में हुल्लड़

मिर्जापुर से प्रस्थान करके स्वामीजी कुछ दिन के लिये प्रयाग रुकते हुए २० अक्टूबर १८७३ ई० को कानपुर पहुंचे और टूका घाट पर आसन जमाया। स्वामीजी का एक व्याख्यान फूलचन्द्र मक्खनलाल की कोठी पर मृतकश्राद्ध-खण्डन, जीवितपितृतर्पण और पृथिवीभ्रमण विषय पर हुआ। भक्तों के आग्रह पर परेड मैदान में एक विशाल शामियाने में स्वामीजी के व्याख्यान का आयोजन किया गया और तदर्थ मुनादी भी कराई गई। ला० नन्नूमल, मुंसिफ काशीनारायण और सब जज क्षेत्रनाथ घोष आदि इसमें सहायक थे और मजिस्ट्रेट डेनियल की भी अनुमति थी। किन्तु विरोधी कोतवाल मुलतान अहमद ने धूर्तता से व्याख्यान के आरम्भ में गुण्डों से हुल्लड़ मचवाया और ईंटें फिंकवाई, जिससे व्याख्यान न हो सका। बाद में शिवप्रसाद के राजगद्दी हॉल में 'ईश्वर सिद्धि' पर व्याख्यान हुआ। दूसरा व्याख्यान इंगलिश थियेटर हॉल में 'आर्यावर्त की प्राचीन और आधुनिक अवस्था' पर हुआ। इसमें कई अंग्रेज भी उपस्थित थे। तदनन्तर १०-१२ व्याख्यान क्षेत्रनाथ घोष के बंगले पर विविध विषयों पर हुए। शाक्त नन्नूमल ने स्वामीजी के संग से मांसाहार और सुरापान आदि त्याग दिये।

कानपुर में स्वामीजी की दिनचर्या

कलकत्ता से अपने उपनिषत्-पाठ को पूरा करने के लिये स्वामीजी के पास कानपुर आये हेमचन्द्र चक्रवर्ती के अनुसार स्वामीजी की दिनचर्या प्रातः शीघ्र उठकर आश्रितों को जगाना और गायत्रीजपार्थ प्रेरित करना, प्रातः नित्यकर्मों से निवृत्त होकर पढ़ाना, घण्टा भर गंगा में तैरना, व्यायाम करना, सूर्यसेवनपूर्वक विश्राम, बलिवैश्वदेव करवाना, भोजन करना, गरम ईंट बुझे जल का सेवन, रात्रि में अल्पदुग्धपान और योगासनारूढ होना यह क्रम था। आगे चक्रवर्ती बाबू लिखते हैं, कि रात्रि में जब भी हमारी आँख खुली हमने स्वामीजी को ध्यानावस्थित ही देखा।

काशीनरेशवत् लखनऊ के रईस की शास्त्रार्थ में अनीति

कानपुर में २१ दिन निवास करके स्वामीजी १० नवम्बर को लखनऊ आये

और रईस गजाधरप्रसाद के बंगले पर ठहरे। इन्हीं रईस की कुनीति के अनुसार कैनिंग कॉलेज में पूर्वीय शिक्षा के हैड पण्डित गंगाधर शास्त्री से मार्ग० कृ० १३ संवत् १९३० को स्वामीजी का मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। किन्तु पूर्वनियोजित षड्यन्त्रानुसार गंगाधर शास्त्री बीच में ही उठ खड़े हुए और 'दयानन्द हार गये' का हल्ला मचा दिया। सत्य का पक्ष लेने के स्थान पर प्रच्छन्न सहायक बने हुए कट्टरपाखण्डपोषक रईस गजाधरप्रसाद ने उलटा पं० गंगाधर को दूसरे दिन अपने पण्डितों के सामने सम्मानित किया। स्वामीजी इस घटना के बाद राजा ओयल के अनुरोध पर कैसरबाग स्थित उनके बंगले पर चले गये। पं० गंगाधर ने अपने यजमानों के सहयोग से भले ही स्वामीजी के पराजय का दुष्प्रचार किया, किन्तु उनके एक शिष्य केदारनाथ चट्टोपाध्याय ने अपने एक पत्र में लिखा था कि उस शास्त्रार्थ के समय मैं भी गंगाधर शास्त्री के पण्डितमण्डल में शामिल था। स्वामीजी की भाषणशैली शान्त, सम्बद्ध और युक्तियुक्त थी, जब कि शास्त्रीजी की शैली उत्तेजनापूर्ण, उद्धत और अशिष्ट थी। एक प्रश्न का उत्तर स्वामीजी दे रहे थे कि बीच में ही गंगाधर उठ खड़े हुए और पूर्वयोजनानुसार उनके साथियों ने तालियां पीटना शुरु कर दिया। पर निष्पक्ष लोगोंने माना कि पराजय शास्त्रीजी का हुआ है।

इस शास्त्रार्थ-घटना में गजाधरप्रसाद ने वैसा ही पक्षपात किया जैसा काशी-शास्त्रार्थ में काशीनरेश ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह ने किया था।

गोवध बन्द कराने हेतु अंग्रेज अधिकारियों को प्रेरणा

स्वामीजी हेमचन्द्र चक्रवर्ती के साथ लखनऊ से कानपुर होते हुए ता० २१ नवम्बर को फर्रुखाबाद आये और स्वस्थापित पाठशाला में ही ठहरे। पहले के विरोधी अब स्वामीजी के भक्त हो गये। स्वामीजी शिक्षाविभागाध्यक्ष मिस्टर कैम्पसन और ले० गवर्नर मि० म्योर से मिले और लन्दन जाकर भारत में गोवध बन्द कराने हेतु प्रयत्न करने की प्रेरणा दी। पं० राधाचरण गोस्वामी द्वारा स्वपुत्र-विवाह में बहुत व्यय करने पर स्वामीजी ने उन्हें कहा कि विवाह में अधिक धन व्यय करना अनुचित है। उस समय सेठ निर्भयराम वृन्दावनी और पं० गंगादत्त भी उपस्थित थे।

'स्वामीजी ईसाइयों के वेतनभोगी हैं' ऐसा पं० विश्वेश्वरदयालु सखरिया को विरोधियों ने बहका रखा था। एक दिन वे अर्धरात्रि में ध्यानारूढ़ स्वामीजी के पास गये। ध्यान टूटने पर 'वर्णाश्रम' एवं न्यायशास्त्र-सम्बन्धी प्रश्नों के समाधान के बाद पूछने पर स्वामीजी ने जब ईसा के ईश्वरपुत्र होने का प्रबल खण्डन किया तो पण्डित को विश्वास हो गया, कि स्वामीजी ईसाइयों के नौकर नहीं हैं।

पाठशालाओं का निरीक्षण

पौष कृ० ६ संवत् १९३० को स्वामीजी ने कासगंज आकर पाठशाला का

निरीक्षण किया। पाठशाला के कमरों के द्वारों के लिये स्वहस्त से छप्पर बनाये। वेद उठाकर शपथ न खाने के कारण अध्यापक द्वारा निकाले गये एक छात्र को स्वामीजी ने पाठशाला में पुनः प्रवेश दिलाते हुए शपथ खाने को अनुचित बताया और मीरों की जात देने गये एक विद्यार्थी को अर्थदण्ड से दण्डित किया।

स्वामीजी पौष शु० १ सं० १९३० (= २०.१२.१८७३ ई०) को छलेसर आये और स्वस्थापित पाठशाला में ही ठहरे। प्रबन्ध में उचित परिवर्तन किया। उस समय अलीगढ़ में नियुक्त डि० कलेक्टर राजा जयकृष्णदास सी०एस०आई० स्वामीजी के पास आये और अलीगढ पधारने का वचन लेकर चले गये। तीन चार दिन तक सहस्रों मनुष्यों ने स्वामीजी के उपदेशामृत का पान किया।

राजा जयकृष्णदास के निमन्त्रण पर अलीगढ-आगमन

छलेसर से हाथी पर सवार होकर स्वामीजी ठा० मुकुन्दसिंह आदि बीसियों घुड़सवार क्षत्रियों से अनुगत होते हुए ता० २६ दिस० १८७३ ई० को अलीगढ़ पधारे और अचल तालाब पर चाऊलाल की आम्रवाटिका में राजा जयकृष्णदास के अतिथि बने। कई दिन लगातार स्वामीजी के व्याख्यान हुए जिनमें प्रतिष्ठित हिन्दू, मुसलमान, सेठ, वकील तथा राजकर्मचारी भाग लेते रहे। सुविख्यात विद्वान् पं० बुद्धिसागर ने स्वामीजी से शिष्टभाषा में प्रश्न किये। स्वामीजी द्वारा संस्कृत में दिये गये युक्तियुक्त उत्तरों को सुनकर वे मुग्ध हो गये।

वकील बदीप्रसाद द्वारा स्थापित संस्कृत-पाठशाला के अध्यापक पं० मिहिरचन्द्र जो स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने की डींगे हांका करते थे, स्वामीजी द्वारा हर तरह से बारंबार बुलाने पर भी सामने न आये। बेसवाँ ग्राम निवासी ठाकुर गुरुप्रसाद जाट ने पं० अंगदराम शास्त्री के सहयोग से यजुर्वेद-महीधर भाष्य का स्वरचित हिन्दी अनुवाद स्वामीजी को दिखाया तो उन्होंने वेदभाष्य और अनुवाद दोनों को वेदविरुद्ध और अशुद्ध बताया। ठा० भूपालसिंह के पुत्र ऊधोसिंहको विदेशी वस्त्रों के स्थान पर स्वदेशी वस्त्र पहनने का उपदेश दिया। एक दिन ठा० मुकुन्दसिंह के निवेदन पर स्वामीजी ने श्रुतिमधुर सामगान भी गाया था। एक दिन सर सैय्यद अहमदखां के शंका करने पर स्वामीजी ने बताया कि जैसे थोड़ी सी हींग के छौंक से सारी दाल सुगन्धित हो जाती है, वैसे ही हवन से वायु सुगन्धित हो जाती है।

स्वामीजी के उपदेशों को लेखबद्ध करने की राजा जय कृष्णदास की अद्वितीय सूझ

राजा जयकृष्णदास निरन्तर व्याख्यानों में आते रहे और सन्देहनिवृत्ति भी करते रहे। वे स्वामीजी के विशेष अनुरागी बन गये। आगे जाकर इन्होंने ही स्वामीजी

के लोकोपकारी उपदेशों को चिरस्थायी और सर्वसुलभ बनाने के लिये उन्हें लेखबद्ध करवाके छपवाने का श्रम किया। जिसका परिणाम १८७५ ई० में छपा प्रथम 'सत्यार्थप्रकाश' था।

२२ जनवरी १८७४ ई० को स्वामीजी हाथरस आये। राजा जयकृष्णदास के पूर्व प्रबन्धानुसार स्वामीजी सेठ विष्णुदयाल की वनवाटिका में ठहरे। ठा० मुकुन्दसिंह और भूपालसिंह भी स्वामी-सेवा में उपस्थित रहे। इस भक्तत्रयी के कारण ही स्वार्थी मूर्तिपूजक और गुण्डे लोग चाहकर भी स्वामीजी का अनिष्ट न कर सके। यहां स्वामीजी का व्याख्यान मृतकश्राद्ध और मूर्तिपूजा के खण्डन पर हुआ। प्रयागमेले के समान यहां भी नैयायिक हरजसराय स्वामीजी से शास्त्रार्थ-हेतु न आये।

स्वामीजी हाथरस से मथुरा गये। उनके पास राजा जयकृष्णदास की मथुरा के डि० कलेक्टर देवीप्रसाद के नाम एक चिट्ठी थी। पर राजा उदितनारायणसिंह स्टेशन से ही स्वामीजी को प्रेमपूर्वक अपने घर ले आये।

वृन्दावन में रंगाचार्य को ललकार

कुछ समय पश्चात् रथ के मेले के अवसर पर जब स्वामीजी प्रचार तथा शास्त्रार्थ हेतु वृन्दावन गये तो राजा उदितनारायणसिंह ने स्वामीजी के साथ चार पहरेदार भेज दिये। डि० कले० देवीप्रसाद के आदेश पर वृन्दावन चुंगी के बख्शी महबूब मसीह ने स्वामीजी को रंगजी के मन्दिर के पीछे मलूकदास के बाग में ठहरा दिया और सुव्यवस्था कर दी। स्वामीजी २७ फरवरी १८७४ ई० को वृन्दावन पहुंचे थे। वृन्दावन मूर्तिपूजा का दुर्ग है। वहां सैंकड़ों मन्दिर हैं। रंगाचार्य नामक, चक्रांकितों के आचार्य जो कि राव कर्णसिंह के भी गुरु थे यहीं निवास करते थे। स्वामीजी का वृन्दावन जाने का मुख्य उद्देश्य उनसे शास्त्रार्थ करना था। 'चैत्र कृ० २ से सायं ४ से ६ तक अवतार, मूर्तिपूजा, तिलक, छाप आदि के खण्डन में स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी के व्याख्यान होंगे' यह नोटिस भी सर्वत्र चिपका दिये गये। एक चिट्ठी रंगाचार्य के पास भी भेजी गई, कि आप अपनी मान्यतानुसार अवतार, मूर्तिपूजा आदि को वेद से सिद्ध करके दिखाइये। उत्तर में रंगाचार्य ने कहा कि शास्त्रार्थ ब्राह्मोत्सव के बाद होगा।

५ मार्च को स्वामीजी ने सृष्टि विषय पर व्याख्यान दिया, जिसमें डि० कलेक्टर मथुरा भी आये थे। अन्य नौ व्याख्यानों में मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तिलकछाप आदि का प्रबल प्रमाणों और अकाट्य युक्तियों से खण्डन किया गया। अन्य समयों में जिज्ञासु जन शंकासमाधान करते रहे। नित्य राजा उदितनारायाण भी आते थे। रंगाचार्य के पास आये राव कर्णसिंह ने एक दिन जब मार्ग में उक्त राजाजी को स्वामीजी के विषय में कुवचन कहे तो उन्होंने उसे डांट दिया। मेला और ब्राह्मोत्सव भी समाप्त हो गया, पर रंगाचार्य बीमारी का बहाना करके शास्त्रार्थ-हेतु न आये।

रंगाचार्य शास्त्रार्थ-हेतु न आये

व्याख्यानों में आने वाले पण्डितों ने कहा कि स्वामीजी आपकी बातें सत्य हैं, पर पेट के कारण हम इन्हें झुठलाते हैं। स्वामीजी के सहपाठी पं० उदयप्रकाश द्वारा स्वामीजी को मूर्तिपूजा-खण्डन छोड़ने की सलाह देने पर, स्वामीजी ने कहा कि मूर्तिपूजा असत्य है तो आप भी उसका निषेध करें और यदि इसे आप सत्य समझते हैं, तो मुझसे शास्त्रार्थ कर लीजिये। स्वामीजी के उपदेश सुनने और रंगाचार्य के द्वारा शास्त्रार्थ से मुख मोड़ने के कारण अनेकों ने मूर्तिपूजा छोड़ दी। उनमें संन्यासी जयगोविन्द गिरि प्रमुख थे। राधारमण मन्दिर के आचार्य गोस्वामी सखालाल और ब्रह्मचारी गिरिधरदास उल्टी सीधी शर्तें लगाकर शास्त्रार्थ का साहस दूर से ही दिखाते रहे, पर सामने कोई नहीं आया। गोस्वामी राधाचरण, जो पीछे हिन्दी के मार्मिक लेखक बने, भी स्वामीजी के सत्संग से लाभ उठाते रहे।

रंगाचार्य से शास्त्रार्थ करना रूपी मुख्य उद्देश्य के पूरा न होने पर स्वामीजी चै० कृ० ११ को वृन्दावन से मथुरा आ गये और गोस्वामी पुरुषोत्तमदास के बाग में ठहरे। यहां भी अपने व्याख्यानों में मूर्तिपूजा आदि का बेधड़क खण्डन किया, किन्तु कोई शास्त्रार्थ को उद्यत न हुआ। एक दिन व्याख्यान के मध्य में, विरोधियों से सिखाये हुए कलाल और कसाई ने अपने शराबमांस के पैसे मांगे। व्याख्यानसमाप्ति पर दोनों हाथों से दोनों की गर्दन पकड़कर स्वामीजी ने जब दाम पूछे तो पीड़ा के मारे दोनों ने सही बात बता दी कि हमें सिखा कर भेजा गया है, क्षमा कर दीजिये।

मथुरा के पण्डे द्वारा मूर्तिपूजा का खण्डन

एक दिन तिलकधारी अस्सी वर्षीय पाण्डे मदनदत्त अपने पौत्र और शिष्य के साथ शास्त्रार्थ की मंशा से स्वामीजी के पास आये। किन्तु थोड़े से वार्तालाप के पश्चात् ही पाण्डेजी स्वयं ही मूर्तिपूजा और वेदविरुद्ध सम्प्रदायों का खण्डन करने लग गये। मथुरावास के अन्तिम दिन डि० कले० के आश्वासन देने पर भी शास्त्रार्थ न हुआ, अपितु चार पांच सौ चौबे लाठियां लेकर स्वामीजी पर आक्रमण करने आये। किन्तु ठाकुर भूपालसिंह एवं कर्णवास-निवासी कुछ क्षत्रियों के आ जाने से और डि० कले० के उपस्थित हो जाने से आक्रमणकारी भाग गये।

मथुरा से स्वामीजी १९ मार्च १८७४ ई० को मुरसान आये और वहां के राजा टीकमसिंह के सम्माननीय अतिथि बने। राजाजी ने पूर्वोक्त ठाकुर गुरुप्रसाद बेसवां वाले को स्वामीजी से स्वकथनानुसार शास्त्रार्थ करके स्वरचित वेदभाष्य-अनुवाद की शुद्धता सिद्ध करने को बुलाया। वह पांचसौ आदमियों की भीड़ के साथ मुरसान आ तो गया, पर राजा साहब के बंगले के बाहर से ही अपनी महिमा गाता रहा और बारबार बुलाने पर भी शास्त्रार्थ-हेतु अन्दर न आया।

मुरसान से प्रस्थान करके स्वामीजी प्रयाग होते हुए मई मास में काशी पधारे और गोसाईं रामप्रसाद उदासी के बाग में ठहरे ।

स्वामीजी ने हिन्दीमें व्याख्यान देना आरम्भ किया

अब स्वामीजी वस्त्रधारण के साथ ही हिन्दी भाषा भी बोलने लगे थे, सो व्याख्यान भी प्रायः हिन्दी में होने लगे, इससे साधारण श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी। छः मास पूर्व जवाहरदास के माध्यम से स्थापित करवाई हुई पाठशाला को अब केदारघाट से दशाश्वमेध घाट ले जाया गया और उसमें पं० शिवकुमार शास्त्री के स्थान पर वेदशास्त्रज्ञाता पं० गणेश श्रोत्रिय को अध्यापक नियुक्त किया गया और व्याकरण के लिये एक सहायक अध्यापक भी। 'कविवचन-सुधा' और 'बिहारबन्धु' अखबारों में स्वामीजी के हस्ताक्षरों से विज्ञापन दिया गया, जिसमें पाठशाला के स्थानान्तरण एवं नवनियुक्ति की सूचना के साथ ही अध्यापन का समय, पाठ्यपुस्तकें, मासिक परीक्षा, पाठशाला-प्रवेशयोग्यता, 'आर्यप्रकाश' मासिक समाचारपत्रिकाप्रकाशन और साधनों के बढ़ने पर पाठशाला के विस्तार की सूचना दी गई।

पर नये प्रबन्धक मुंशी हरवशलाल आदि के ध्यान न देने से आगे जाकर अव्यवस्था के कारण फरवरी १८७५ में यह पाठशाला टूट गई।

राजा जयकृष्णदास के अनुरोध-प्रबन्ध से 'सत्यार्थप्रकाश' का लेखन

यहां पर ही, स्वामीजी के पूर्वतः अनुरागी भक्त राजा जयकृष्णदास सी०एस०आई०ने अपनी पूर्व योजना के अनुसार स्वामीजी के उपदेशों एवं मन्तव्यों को लेखबद्ध करने के लिये एक महाराष्ट्रीय पं० चन्द्रशेखर को लेखक (= लिपिकर्ता) रूप में नियुक्त कर दिया। १२ जून १८७४ ई० से कार्य आरम्भ हुआ। स्वामीजी बोलते थे और चन्द्रशेखर लिखते जाते थे। ग्रन्थ का नाम 'सत्यार्थप्रकाश' रखा गया। जो प्रथमबार सन् १८७५ में प्रकाशित हुआ। किन्तु लेखक पं० चन्द्रशेखर के कट्टर पौराणिक होने के कारण तथा स्वामीजी के द्वारा प्रूफसंशोधन न होने के कारण 'मृतकश्राद्धतर्पण का समर्थन और श्राद्ध में मांसपिण्ड देने' जैसी कुछ बातें, जो स्वामीजी के मन्तव्यों के विरुद्ध थीं, उसमें छप गई। जिसका प्रतीकार पीछे स्वामीजी ने विज्ञापन द्वारा किया। 'सत्यार्थप्रकाश' के इस संस्करण में अंग्रेजी सरकार के उस नमककानून का विरोध किया गया था, जिसके विषय में ५५ वर्ष बाद महात्मागांधी ने सन् १९३० में आन्दोलन चलाया। जंगलात-सम्बन्धी सरकारी कानून को भी इसमें अनुचित बताया गया था।

काशी में पादरी हूपर से भी स्वामीजी का वार्तालाप हुआ। लाला(= राजा)

माधोलाल के द्वारा मूर्तियों पर चढ़ाने के लिये फूल तोड़कर ले जाने को स्वामीजी ने अनुचित बताया ।

काशी में ही सब जज सर सैय्यद अहमदखाँ ने अपने बंगले पर स्वामीजी का व्याख्यान करवाया और कलेक्टर मि० शेक्सपियर से स्वामीजी को मिलवाया । प्रतिदिन सत्संग में आने वाले एक मुसलमान युवक को मांसाहार की हानियां बताईं । साधु पं० जवाहरदास स्वामीजी के काशीवास के आधार पर कहा करते थे, कि स्वामीजी व्याकरण के अधिकारी व्युत्पन्न विद्वान् थे, अद्वितीय ब्रह्मचर्य की शक्ति के कारण वे खण्डनमण्डन में अति दक्ष और अजेय थे । उनके ब्रह्मचर्य में शत्रु भी दोष नहीं निकाल सके । जोधपुर निवासी पं० पन्नालाल उन दिनों काशी में स्वामीजी के सत्संगी थे । वे जिस भी पण्डित के पास जाते, यही कहता कि स्वामीजी को परास्त करने का सामर्थ्य किसी में नहीं है ।

एक मास के काशी-निवास के पश्चात् स्वामीजी १ जुलाई १८७४ को प्रयाग पधारे और अलोपी बाग में ठहरे । धर्मसम्बन्धी विषयों पर शास्त्रार्थ-हेतु आह्वान का विज्ञापन बंटवाया गया । एक दिन म्योर कॉलेज के कुछ छात्र, निहेमिया नीलकंठ घोरे नामक एक ईसाई और संस्कृत के प्रोफेसर पं० काशीनाथ शास्त्री स्वामीजी के पास आये । मैक्समूलर के प्रशंसक नीलकंठ निहेमिया को स्वामीजी ने ईसाई-धर्म-पक्षपाती मैक्समूलर के द्वारा किये गये वेदमन्त्रों के अंग्रेजी अनुवाद को दूषित और दुर्भावना से किया हुआ बताया । तौरेत में वर्णित बाबुलवासियों द्वारा ऊँचा बुर्ज बनाने, उससे ईश्वर के डरने और मनुष्यों में भाषागड़बड़ी करने की कहानी के आधार पर स्वामीजी ने बाइबिल का खण्डन किया । और उसके द्वारा प्रस्तुत ऐतरेय ब्राह्मण के 'अग्निर्देवानाम्' प्रसंग का सन्तोषजनक उत्तर भी दे दिया । कॉलेज के विद्यार्थियों को जीवात्मा की नित्यता और आवागमन के सिद्धान्त को युक्तियों और प्रमाणों से समझाया । पं० काशीनाथ के असभ्यतापूर्वक पूछे गये "आपने सारे देश में कोलाहल क्यों मचा रखा हैं" इस प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने कहा कि मुझसे पहले पण्डितों ने पाखण्ड फैला रखा है और पत्थर आदि जड़वस्तुओं की पूजा करने से सब की मति जड़ हो गई है, अतः सत्य सिद्धान्तों को समझाने के लिये प्रबल प्रयत्न करना आवश्यक हैं । इन दिनों राजा जयकृष्णदास के पुत्र कुंवर ज्वालाप्रसाद स्वामीजी के निकट ही रहते थे ।

धर्मचर्चा-इच्छुक मौलवी निजामुद्दीन ने भी स्वामीजी से वार्तालाप किया । स्वामीजी ने मुसलमानों द्वारा मक्का-स्थित कृष्ण पाषाण (हजरूल अस्वद) की पूजा किये जाने का और हजयात्रा को मोक्ष का साधन मानने का खण्डन किया । विरोधियों द्वारा दयानन्द-दर्शक को महापाप लगने का प्रचार करने पर भी सैंकड़ों लोग स्वयं स्वामीजी के सत्संग में आते रहे । एक बंगाली के घर पर एक दिन धर्म के दश लक्षणों

पर स्वामीजी का सुन्दर प्रवचन हुआ, जिसमें प्रायः एक हजार श्रोता उपस्थित थे। इसमें प्रचलित पर्दाप्रथा का खण्डन भी किया और प्राचीन काल में यन्त्रयुक्त रथ होते थे, इसका भी वर्णन किया।

स्वामीजी प्रवचनों में लोगों को ऋषिप्रणीत प्रणाली का अनुसरण करने को कहते थे और सचेत करते थे, कि मुझे गुरु मानने से कोई लाभ नहीं है। मेरी बातों को भी सोच समझ कर सत्य सिद्ध होने पर ही मानो। स्वामीजी प्रचलित जन्मपत्री को शोकपत्री कहते थे। कपोल-कल्पित रामतापिनी और गोपालतापिनी की तर्ज पर उन्होंने एक गर्दभतापिनी उपनिषद् रच डाली थी और कहा करते थे कि इसी प्रकार अनार्ष ग्रन्थ बनाये गये हैं। स्वामीजी की देश में कलकारखानों की उन्नति करवाने की प्रबल इच्छा थी। एतदर्थ पीछे उन्होंने जर्मन विशेषज्ञों से पत्रव्यवहार भी किया था। एक भक्त ठाकुरप्रसाद स्वामीजी के लिये कच्चा भोजन लाते समय भोजन की अशुद्धि के भय से बिना जूते नंगे पांव आये, तो स्वामीजी ने कहा, कि मैं इस व्यर्थ की छूआछूत को नहीं मानता और आप भी इस बखेड़े में न पड़िये। कहते हैं, कि इन्हीं ठाकुरदास ने एक बार किंवाड की दरार में से स्वामीजी को योगारूढ स्थिति में पृथिवी से ऊपर अधर अवस्था में देखा था। गंगातटवासी एक वृद्ध महात्मा के द्वारा स्वामीजी को "यदि आप परोपकार के झगड़े में न पड़ते तो इसी जन्म में आपकी मुक्ति हो जाती" कहने पर स्वामीजी ने कहा कि मुझे इन लाखों लोगों की मुक्ति की चिन्ता है, जो दुःखी, दीन और दरिद्र हैं, (केवल) मेरी अपनी मुक्ति की नहीं।

अक्टूबर १८७४ में स्वामीजी जबलपुर गये और गोकुलदास के बाग में ठहरे। एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर म० कृष्णराव ने स्वामीजी के आतिथ्य का श्रेय उठाया। इन्हीं की प्रार्थना पर स्वामीजी जबलपुर आये थे। म० कृष्णराव ने अपने घर पर स्वामीजी का एक फोटो भी खिंचवाया था। राजा बलवन्तराव के सभापतित्व में स्वामीजी का एक व्याख्यान हुआ, जिसमें उन्होंने अपने जीवन की कुछ घटनाएँ भी सुनाई थीं। जबलपुर के प्रसिद्ध पण्डित शंकर शास्त्री की सब शर्तें स्वामीजी द्वारा मान लेने पर भी वे शास्त्रार्थ के लिये नहीं आये।

नासिक के पण्डितों की चुप्पी और अखबारों द्वारा स्वामी-प्रशंसा

कुछ दिन पश्चात् स्वामीजी नासिक पधारे और होल्कर राजघराने की वायजाबाई की हवेली में ठहरे। उनका एक व्याख्यान नासिक के पञ्चवटी क्षेत्र में स्थित राममन्दिर में और दूसरा सब जज रा०ब० विष्णु मोरेश्वर भिड़े के घर पर हुआ। इस सम्बन्ध में बम्बई के 'इन्दुप्रकाश' नामक अखबार में एक लेख छपा था, जिसमें स्थानीय

पण्डितों के ग्लानिद्योतक मौन और जिज्ञासा-दृष्टि के अभाव पर शोक प्रकट करते हुए कहा गया था, कि स्वामीजी की मानसिक शक्तियां दुर्लभ हैं, उनकी वाणी प्रभावोत्पादिका और स्मृति अचूक है। उनके तत्क्षण व्याख्यान में वेदमन्त्रों और दर्शन आदि के इतने उद्धरण होते हैं कि कोई अन्य व्यक्ति अच्छे पुस्तकालय की सहायता से भी किसी निबन्ध में भी इतने उद्धरण सहजता से नहीं दे सकता। उनके हिन्दू-धर्मसम्बन्धी विचार बहुत ठीक और उदार हैं। दयानन्द में स्वाभाविक और प्रयत्नोपार्जित गुणों का दुर्लभ सम्मिलन है। उन्होंने सभ्यता के मार्ग पर अग्रसर होने में बाधक और युक्ति-विरुद्ध विचारों के उत्पत्तिस्थान मूर्तिपूजा के दमन का व्रत ले रखा है। ...नदी के तट पर ब्राह्मणों के बृहत्समूह में दयानन्द के द्वारा पुरोहित दल की बुराईयों और अविद्याजन्य दोषों के निर्भीकता एवं अटल भाव से वर्णन के कारण इस स्थान के लोग पण्डित स्वामी दयानन्द से इतने प्रसन्न हुए, कि श्रोताओं के आह्लाद और साधुवाद के बीच इन्हें बहुमूल्य वस्त्र उपहार में दिये गये। आगे अखबार में लिखा गया कि स्वामी दयानन्द समुद्रपार यात्रा के पक्षग्राहक हैं और आश्चर्य न होगा कि यदि हम कुछ दिनों में सुनें कि हाइड पार्क तथा वेस्ट मिस्टर गिर्जों में वेदप्रचार करने के लिये स्वामीजी जहाज पर सवार होकर योरोप जा रहे हैं।

बम्बई महानगरी में धर्मप्रचार

तारीख २६ अक्टूबर १८७४ ई० को स्वामीजी बम्बई पहुंचे और लक्ष्मीदास खीमजी के द्वारा निर्धारित, बम्बई नगर से दो कोस की दूरी पर स्थित बालकेश्वर के 'गोशाला' नामक स्थान पर ठहरे। स्वामी के साथ लेखक पं० मण्डनराम और पाचक बलदेवसिंह भी था। शीघ्र ही धर्मसम्बन्धी वार्तालाप-हेतु आमन्त्रण के रूप में एक विज्ञापन निकाला गया। मतवादी विरोधियों द्वारा दुष्प्रचार करने पर भी सैंकड़ों लोग स्वामीजी के दर्शन और सत्संग के लिये आने लगे। स्वामीजी के व्याख्यानों का आयोजन फ्रामजी कावसजी हाल में होता था। बम्बई वल्लभ-सम्प्रदाय का गढ़ था। वल्लभमत के गोसाइयों की गुप्त दुराचार भरी लीलाओं का पता लगने पर उनका भी स्वामीजी तीव्र खण्डन करने लगे। इससे वल्लभ-सम्प्रदायी स्वामीजी के विरोधी हो गये और शास्त्रार्थ-हेतु स्वामीजी के पास २४ प्रश्न भिजवाये। स्वामीजी की अनुमति से इनका उत्तर संन्यासी पूर्णानन्द ने विज्ञापन द्वारा दिया। जिसमें स्वामीजी द्वारा प्रत्यक्षादि प्रमाणों के मानने, चार वेदसंहिताओं का प्रामाण्य मानने, ब्राह्मणग्रन्थों-वेदांगों-उपांगों के तथा प्रक्षेपरहित मनुस्मृति के वेदानुकूलता तक प्रामाण्य मानने, पुराणोपपुराण - तन्त्र - शेष स्मृतियों को अप्रमाण मानने; ईश्वर को निराकार, परिपूर्ण, पवित्र, न्यायकारी, अजन्मा मानने और अवैदिक वैष्णव-स्वामिनारायणादि के खण्डन को कर्तव्य मानने का लेख था। इस विज्ञापन का वल्लभियों ने कोई उत्तर नहीं दिया।

वल्लभसम्प्रदाय-प्रमुख द्वारा स्वामीजी को मारने का षड्यन्त्र

वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य गोसाई जीवनजी तो स्वामीजी के परम शत्रु बन गये। उन्होंने स्वामीजी के पाचक बलदेव को बुलाकर लिखितरूप में भारी रकम का लालच देकर स्वामीजी को मारने के लिये तैयार किया था। पर उसका भेद खुलने पर जीवनजी का यह घृणित कार्य विफल रहा। एक दिन २० वल्लभानुयायियों की टोली स्वामीजी को मारने उनके निवास पर पहुंची, पर वे भी विफल रहे। समुद्रतट पर भ्रमणार्थ जाते समय भी स्वामीजी पर आक्रमणार्थ कई दिन तक दुष्ट भेजे गये, ज्ञान होने पर स्वामीजी द्वारा डांट खाकर उन्हें लौटना पड़ा।

प्रार्थनासमाजिस्ट पं० विष्णुपरशुरामशास्त्री और विद्याभिमानी डॉक्टर सर आर०जी० भण्डारकर ने स्वामीजी से वेदों में एकेश्वरवाद और विधवा-विवाह पर वार्तालाप किया, किन्तु असहिष्णु प्रकृति के शास्त्री के शीघ्र उत्तेजित हो जाने के कारण वार्तालाप अधिक न हो सका। डॉ० आर०जी० भण्डारकर-रचित शिक्षण की पुस्तक की अशुद्धियां बताने पर भण्डारकर भी खिन्न हो गये। प्रार्थना-समाज के हॉल में भी फिर स्वामीजी का एक प्रभावोत्पादक व्याख्यान हुआ।

२५ नवम्बर १८७४ को फ्रामजी हॉल में मूर्तिपूजा तथा वैष्णव-वल्लभ-सम्प्रदायों के खण्डन में हुए स्वामीजी के व्याख्यान में प्रश्नोत्तर की मंशा से विरोधी लोग विनीत व सरल प्रकृति के बेचर शास्त्री को साथ लेकर गये। बेचर शास्त्री प्रश्न करने लगे तभी वल्लभियोंने हल्ला मचाकर लाठियां चला दीं। हॉल के मैनेजर की बुद्धिमत्ता से दंगा रुक गया और स्वामीजी को सुरक्षित बचाया जा सका।

स्वामीजी के प्रवचनों पर अखबारों की रिपोर्ट

२८ नवम्बर को फ्रामजी हॉल में दूसरा व्याख्यान 'आर्यों के प्राचीन इतिहास' पर हुआ। इस व्याख्यान में हल्ला टलने के उद्देश्य से टिकिट से प्रवेश दिया गया। 'इन्दुप्रकाश', 'गुजरातमित्र' और 'सुबोधपत्रिका' अखबारों ने इन व्याख्यानों पर अपनी रिपोर्ट में लिखा था, कि स्वामी दयानन्द निस्सन्देह साहससम्पन्न वक्ता, वेदों के गम्भीर अध्येता, नाममात्रधारी निठल्ले साधुओं को निरर्थक पाखण्डी मानने वाले, मूर्तिपूजा आदि को वेदविरुद्ध सिद्ध करने वाले, उत्तम सुधारक, वर्तमान अंग्रेजी शिक्षा से असहमत और संस्कृतशिक्षा की अनिवार्यता के पोषक हैं। धर्मविषय में उनकी सम्मतिजानने के लिये उनके समीप सहस्रों मनुष्यों की भीड़ लग जाती है। दयानन्द की युक्तियों का उत्तर देने में असमर्थ वल्लभसम्प्रदायी उनकी निन्दा में लगे हैं। स्वामी दयानन्द के उपदेशों से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने अपनी देवमूर्तियों को मुम्बादेवी-तालाब में अथवा म्यूजियम में विसर्जित कर दिया है, जिनमें सेवकलाल करशनदास भी हैं।

स्वामीजी ब्राह्मण भाग को वेद नहीं मानते हैं। वे स्वयं वेदभाष्य करने का विचार कर रहे हैं।

स्वामीजी ने यहां अवैदिक नवीन अद्वैतवाद का भी खण्डन किया। इससे एक कट्टर अद्वैतवादी जयकृष्ण जीवनराम भी रुष्ट हो गये और शंकरभाई नानाभाई के द्वारा समाचारपत्रों में स्वामीजी के विरुद्ध लेख लिखवाने लगे। श्री गिरिधारीलाल दयालदास कोठारी स्वामीजी का पक्ष लेकर 'बॉम्बे गजट' और 'टाइम्स ऑफ इन्डिया' में उनका उत्तर देते रहे। बड़ौदा के दीवान सर टी० माधवराव और नायब दीवान मि० जनार्दन कीर्तनीय भी एक दिन स्वामीजी से मिलने आये।

बम्बई में तीन पुस्तिकाओं की रचना

पं० कृष्णराम इच्छाराम स्वयं एक पक्के अद्वैतवादी होते हुए भी स्वामीजी के पाण्डित्य और गुणों से प्रभावित होकर उनके भक्त बन गये और उनके कार्य में सहयोग करने लगे। स्वामीजी ने अद्वैतवाद के खण्डन में जो 'वेदान्त-ध्वान्तनिवारण' पुस्तक रची उसे इन्हीं के हाथों से लिखवाया। तत्पश्चात् स्वामीजी ने वेदभाष्य के नमूने के रूप में ऋग्वेद-प्रथममण्डल के प्रथम सूक्त का भाष्य गुजराती-मराठी अनुवाद के साथ प्रकाशित किया और काशी के प्रमुख पण्डितों और मिस्टर ग्राउस कले० बुलन्दशहर तथा ग्रिफिथ को भी एक एक प्रति आलोचना के लिये भेजी। अंग्रेज़ों ने उस पर विरुद्ध सम्मति भेजी। पण्डित चुप रहे।

वल्लभियों ने पुनरपि स्वामीजी के वध के लिये रात्रि में दो गुण्डों को भेजा। पर सेठ सेवकलाल कर्शनदास की उपस्थिति के कारण वे यह कुकृत्य न कर सके। स्वामीजी के उपदेशों से प्रभावित होकर वल्लभाचार्य जीवनजी के एक शिष्य मथुरापन्थ भाटिया ने अपने कई साथियों के साथ वल्लभसम्प्रदाय को त्याग कर वैदिकमत का अनुसरण किया।

नवम्बर मास में स्वामीजी ने वल्लभसम्प्रदाय के सिद्धान्तों के खण्डन में "वल्लभाचार्य-मतखण्डन" नामक पुस्तिका प्रकाशित कराई।

शतावधानी पं० गट्टूलाल द्वारा शास्त्रार्थ की टाल

अद्भुतस्मरणशक्ति वाले पण्डित गट्टूलाल शतावधानी की सब शर्तें मान लेने पर भी वे स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को तैयार न हुए। उभयपक्ष से विज्ञापन प्रतिविज्ञापन दिये जाने पर नियमों की अस्वीकृति के कारण और वल्लभसम्प्रदाय के लोगों द्वारा समझाने पर भी गट्टूलाल और उनके पिता ने शास्त्रार्थ से बचने में ही स्वहित समझा। जान बूझकर विरोधियों ने उस तारीख को अपनी सभा की घोषणा की जिस तारीख को स्वामीजी के फ्रामजी हॉल में व्याख्यान का विज्ञापन सार्वजनिकरूप से पहले दे दिया गया था। वह तारीख थी ५ दिसम्बर १८७५ ई०। स्वामीजी का भाषण तो फ्रामजी

हॉल में हुआ और विपक्षियों ने उसी समय लाल बाग में सभा की और जानबूझकर जनता को भ्रमाया गया कि हमारे बुलाने पर भी दयानन्द नहीं आये, इसलिये उन्हें प्रतारक मानना चाहिये। तत्पश्चात् पं० गट्टूलाल वेद से मूर्तिपूजा सिद्ध करने को भाषण करने लगे किन्तु पं० जर्नादनगोपाल के 'प्रतिमा' शब्द के यौगिकार्थ-सम्बन्धी प्रश्न करने पर और पं० गट्टूलाल के अपने शिल्प पं० कालिदास द्वारा 'माखननिर्मित कृष्णमूर्ति' का वेद में वर्णन कहा है ?' आदि प्रश्न करने पर पं० गट्टूलाल की चुप्पी को देखकर सभा को विसर्जित करने के उद्देश्य से पं० जी के साथियों ने कोलाहल आरम्भ कर दिया। इस घटना-क्रम से सिद्ध हो गया कि पं० गट्टूलाल और वल्लभ-मतानुयायियों की स्वतः ही पराजय हो गई है।

विपक्ष से शास्त्रार्थ की किसी भी सम्भावना के न होने पर स्वामीजी के बम्बई से सूरत प्रस्थान करने पर विरोधियों ने विज्ञापन दिया कि शास्त्रार्थ से डरकर दयानन्द पलायन कर गये। उसके उत्तर में गिरिधारीलाल आदि ने तुरत विज्ञापन दिया कि आप लोग मध्यस्थों के नियत करने का प्रबन्ध कर लें, हम स्वामीजी को वापस बुलाकर शास्त्रार्थ करा देंगे। किन्तु विपक्ष चुप रहा।

बम्बई से स्वामीजी १ दिसम्बर १८७४ को पं० कृष्णराम इच्छाराम के साथ सूरत स्टेशन पहुंचे और वहां के डि० कलेक्टर रा०ब० जगजीवनदास की गाड़ी में सवार होकर उनके बाग में निवासार्थ गये। पर पीछे वे सेठ नगीनदास के प्रेसवाले बंगले में जा के रहे। पं० कृष्णराम इच्छाराम के कवितागुरु पं० नर्मदाशंकर ने कुछ साथियों के सहयोग से स्वामीजी के भोजनादि का प्रबन्ध किया।

सूरत में स्वामीनारायण-सम्प्रदाय-खण्डन

स्वामीजी का पहला व्याख्यान डि० क्ले० की अध्यक्षता में ता० २ दिसम्बर को एण्डूज पब्लिक लाइब्रेरी में "वल्लभसम्प्रदाय, राममोहनराय, स्वामीनारायण सम्प्रदाय आचार्य सहजानन्द और रामानुजाचार्य" विषय पर हुआ। सहजानन्द की आलोचना करने पर एक घेलाभाई के प्रलाप करने पर सभा में उपस्थित निर्भयराम मनसुखराम कन्ट्रैक्टर ने खड़े होकर कहा कि 'मैं दश वर्ष सहजानन्द-सम्प्रदाय में रह चुका हूं, सो उसके भेद और रहस्य मुझे ज्ञात हैं' यह कहकर उसने उस सम्प्रदाय का विशेष रूप से खण्डन किया। सूरत में ही स्वामीजी ने 'स्वामिनारायण-मत-खण्डन' पर एक पुस्तक लिखी।

स्वामीजी का दूसरा व्याख्यान ४ दिसम्बर को गवर्न० हाईस्कूल में 'बुद्धोक्त, जिनोक्त, पुराणोक्त और तन्त्रोक्त धर्म में आर्यधर्म का स्वरूप' विषय पर हुआ। तीसरा व्याख्यान सेठ रामचन्द्र की कन्यापाठशालामें हुआ।

वृद्ध ब्रह्मचारीजी द्वारा स्वामीजी का सम्मान

चौथा व्याख्यान ७ दिसम्बर को एक शिवमन्दिर के समीप हुआ। व्याख्यानार्थ

पूर्व निर्धारित भवन के एन समय पर अन्दर से बन्द मिलने पर उसके बाहर ही कुर्सी पर बैठकर स्वामीजी ने व्याख्यान आरम्भ कर दिया। व्याख्यान के मध्य में सूरत के एक प्रतिष्ठित और मूर्तिपूजा में अश्रद्धालु अस्सी वर्षीय मोहनबाबा नामक ब्रह्मचारीजी ने स्वामीजी को दण्डवत् होकर प्रणाम किया, जिसे देखकर सूरत के सम्भ्रान्त लोग और ब्रह्मचारीजी के श्रद्धालु भक्त अत्यन्त चकित हुए। स्वामीजी ने उन्हें अपने बराबर दूसरी कुर्सी पर बिठाया। ये ब्रह्मचारीजी स्वामीजी को एक दिन अपने मठ पर भी ले गये और उनका भोजनादि से विशेष सत्कार किया।

एक दिन एक व्याख्यान के अन्त में एक सेठ ने स्वामीजी को एक बहुमूल्य शॉल प्रेमोपहारस्वरूप भेंट करनी चाही। पर स्वामीजी ने 'यह तो कथा पर चढ़ावा जैसा लगेगा' कहकर उसे प्रेमपूर्वक अस्वीकार कर दिया।

स्वामीजी का पांचवा व्याख्यान पं० नर्मदाशंकर के घर के समीप मैदान में दुर्गाराम मोता के सभापतित्व में 'अद्वैतवाद' विषय पर हुआ। पं० इच्छाशंकर आदि उसमें दुर्भावना के साथ शास्त्रार्थ करने आये, पर उसके निरुत्तर होने पर उसके साथियों ने ईंटे बरसाकर सभा विसर्जित करवा दी।

डि० कलेक्टर ने स्वामीजी के निवास पर दो कांस्टेबलों का पहरा लगवा दिया। समीपस्थ कतार ग्राम के कृषिकर्मी देशवई ब्राह्मणों के आग्रह पर स्वामीजी ने ग्राम में जाकर आम्रवनी में ग्रामवासियों को उपदेश दिया और भूनी हुई नई ज्वार उनके साथ प्रेमपूर्वक खाई।

भड़ौंच में धर्मप्रचार

सूरत में धर्मोपदेश करके स्वामीजी भड़ौंच पहुंचे और स्टेशन से डिप्टी कलेक्टर प्राणलाल महावरदास की गाड़ी में बैठकर नर्मदा-तट-स्थित भृगुऋषि की धर्मशाला में निवासार्थ पहुंचे। ठा० उमरावसिंह और मोहनलाल वकील आदि ने उनके भोजनादि का प्रबन्ध किया। धर्मशाला में ही हुए स्वामीजी के प्रथम व्याख्यान में वहां के प्रतिष्ठित व्याकरणकाव्य-मात्र-कुशल पण्डित माधवराव त्र्यम्बकराव स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को उद्यत हुए, पर मूर्तिपूजा के पक्ष में वेद का मन्त्र प्रस्तुत न कर पाने और एक भी मन्त्र का सही अर्थ न कर पाने के कारण निरुत्तर होने पर, रुष्ट होकर, धमकी देकर चले गये। उस समय अशिष्टता करने पर उतारू उनके शिष्य को स्वामीजी के पाचक बलदेव की फटकार ने चुप कर दिया।

अगले दिन पं० माधवराव ने एक पृथक् सभा में स्वामीजी के सिद्धान्तों का खण्डन किया और निन्दात्मक वचन कहे। पं० कृष्णराम के द्वारा सूचित करने पर स्वामीजी ने अपने स्थान पर माधवराव के आक्षेपों का समुचित उत्तर दिया। उस समय माधवराव का एक मद्यमत्त शिष्य गालीप्रदानपूर्वक स्वामीजी का अपमान करने

लगा, तो डिप्टी कले० प्राणलाल ने उसे डांट दिया। सेना की छावनी के कुछ उत्तरभारतीय सैनिक भी, जो सभा में सुनने आये थे, वे उस उद्दण्ड शराबी शिष्य को पीटने के लिये आगे बढे, पर दयालु स्वामीजी ने उन्हें रोककर शान्त कर दिया।

भड़ौच स्टेशन के रोमन केथोलिक ईसाई स्टेशनमास्टर ने भी धर्मशाला में मूर्तिपूजा के पक्ष में व्याख्यान दिया। जिसका स्वामीजी ने पीछे यथावत् खण्डन किया।

मूर्तिपूजक-समुदाय स्वामीजी के सत्य धर्मोपदेश से व्याकुल होकर भी स्वामीजी से शास्त्रार्थ-हेतु किसी पण्डित को तैयार न कर सके। प्रसिद्ध अद्वैतानन्द संन्यासी भी प्रार्थना करने पर भी बहाना बना कर शास्त्रार्थ से किनारा कर गये। एक दिन अनेक भार्गव ब्राह्मण और अद्वैतानन्दजी की चेलियां स्वामीजी का उपदेश सुनने आईं। स्वामीजी ने बीच में पर्दा डालकर, उन्हें पतिसेवा और सन्तानसुधार करने और साधुओं के दर्शन के लिये इधरउधर न भटकने का उपदेश दिया।

गुरु के सिद्धान्तों का पालन ही सच्चा शिष्यत्व

एक दिन ठा० उमरावसिंह के द्वारा स्वामीजी से अपना शिष्य बना लेने और मन्त्र देने का आग्रह करने पर स्वामीजी ने उनसे कहा, कि जो हमारे सिद्धान्तों को मानते हैं, वे ही हमारे शिष्य हैं और कानफुंकवा मन्त्र देना तो पाखण्ड है, मन्त्र तो वेदों में सहस्रों हैं, हम क्या मन्त्र देंगे ? एक दिन जेठालाल वकील द्वारा "मूर्तिपूजा का आप यदि मण्डन करने लगें तो हम आपको शंकर का अवतार मानने लग जायँ" कहने पर स्वामीजी ने कहा कि मैं ऐसे प्रलोभनों से सत्य को नहीं दबा सकता। बहुत सरल संस्कृत बोलने का कारण स्वामीजी ने बताया कि मेरा उद्देश्य लोगों को समझाना है, अपना पाण्डित्य जताना नहीं।

विद्यार्थियों को एक दिन उपदेश में समझाया कि अपने गुरुजन आदि माननीय व्यक्तियों की बात में बीच में बोलना ओर उनकी ओर पांव करके सोना अशिष्टता है। गुरुजनों की सेवा करना विद्यार्थियों का धर्म है। मैंने बहुत बड़ी आयु में भी अपने गुरु की सब प्रकार से सेवा की थी। अपने सहयोगी पं० कृष्णराम इच्छाराम के ज्वरग्रस्त होने पर, स्वयं स्वामीजी ने उनका सिर दबाया। पण्डितजी के मना करने पर स्वामीजी ने कहा, कि दूसरों की सेवा करना मनुष्य का धर्म है।

अहमदाबाद में धर्मप्रचार

११ दिसम्बर की रात्रिमें स्वामीजी अहमदाबाद पहुंचे। रेल्वे स्टेशन पर उपस्थित महीपतराम रूपराम और जज गोपालराव हरिदेशमुख आदि ने उन्हें माणिकेश्वर महादेव के मन्दिर में ठहराया। १२ दिस० को हेमाभाई इंस्टीट्यूट में स्वामीजी का पहला व्याख्यान मूर्तिपूजा-खण्डन पर हुआ। दूसरा व्याख्यान माणिकेश्वर मन्दिर में १३ दिसम्बर को 'वर्णभेद' विषय पर हुआ और तीसरा व्याख्यान १४ दिस०को हुआ।

शास्त्रार्थ-हेतु पण्डितों का अनुत्साह और अखबारों का अभिमत

उन्हीं दिनों में चल रहे प्रार्थनासमाज के वार्षिक उत्सव में भी स्वामीजी का एक व्याख्यान हुआ। उस समय उपस्थित रावबहादुर बेचरदास अम्बादास, रा०ब० गोपालराव हरिदेशमुख, रा०ब० भोलानाथ साराभाई और रणछोड़दास छोटेलाल आदि ने स्वामीजी के साथ पण्डितों के शास्त्रार्थ करवाने के उद्देश्य से एक विज्ञापन निकलवाया, जिसके द्वारा १९ दिसम्बर को ट्रेनिंग कॉलेज में पं० सेवकराम, लल्लूभाई, भास्कर, भाई शंकर और भट्ट दामोदर आदि तीस व्यक्तियों को शास्त्रार्थ-हेतु बुलवाया गया। फीमेल ट्रेनिंग कॉलेज के हैड मास्टर रेवाशंकर शास्त्री द्वारा प्रत्यक्ष भी यह विज्ञापन शास्त्रियों के पास भेजा गया। पं० बापाजी, केशवशास्त्री आदि के द्वारा लगाई गई चार मध्यस्थों की अनिवार्यता और यवनमात्र के प्रवेश का निषेध आदि शर्तों के मान लेने पर भी कोई पण्डित निश्चित तिथि को शास्त्रार्थ-हेतु न आया। एक दो श्रोताओं द्वारा प्रस्तावित शंकाओं का समाधान करके स्वामीजी ने 'जन्मान्तरवाद' पर एक व्याख्यान दिया।

अहमदाबाद से स्वामीजी के चले जाने के बाद

४ जनवरी १८७५ ई० के 'टाइम्स ऑफ इन्डिया' में छपा था कि 'दो सप्ताह से अधिक समय तक अहमदाबाद के निवासकाल में स्वामी दयानन्द एक दिन व्याख्यान देते थे और एक दिन शंका-समाधान करते थे। उन्हें वेदों और हिन्दू-धर्मशास्त्रों के विस्तृत ज्ञान के साथ ही जैनियों, ईसाइयों और मुसलमानों के धर्मग्रन्थों का भी ज्ञान है। उनकी व्याख्यान-शैली अत्युत्तम है' अतः व्याख्यान में बहुत जनता आती है। शास्त्रियों ने "रमते संन्यासी की क्या प्रतीति" ऐसा कहकर उनकी उपेक्षा की है। जो कोई उनसे तर्क करने गया वह भी एक घण्टे से अधिक न टिक सका'।

७ जनवरी १८७५ के 'हितेच्छु' अखबार में छपे एक लेख में लिखा था कि स्वामी दयानन्द ने अल्प समय के निवास में ही अहमदाबाद के शिक्षित समुदाय को आश्चर्यचकित और आह्लादित कर दिया। दयानन्द द्वारा हिन्दू धर्म की ऐसी योग्यता और बुद्धिमत्तापूर्वक की गई व्याख्या अभूतपूर्व थी। पवित्र वेदों की दयानन्दकृत व्याख्या जीवनोपयोगी और पवित्र थी। उनका संस्कृत-शास्त्रज्ञान अति विशाल है। मूर्तिपूजा, बालविवाह और जातिभेद आदि के दोषों का उनके द्वारा खोलकर वर्णन करना श्रोताओं के हृदयों पर सदा अंकित रहेगा। निस्सन्देह दयानन्द ही ऐसे मनुष्य हैं, जिनकी हिन्दुओं की वर्तमान अधःपतित अवस्था के पुनरुद्धार के लिये आवश्यकता है। स्थानीय पौराणिक शास्त्रियों ने उनकी उपेक्षा करके उनसे शास्त्रार्थ नहीं किया और श्रद्धालु जनता को भी उनसे दूर रहने को बहकाया पर वे इसमें विफल रहे। जनता ने उल्टा उनका ही उपहास किया। यदि शास्त्रियों में स्वप्रतीति का लवलेश भी है, तो दयानन्द को

पुनः आहूत करके उनसे शास्त्रार्थ करके सत्याऽसत्य का निर्णय करना चाहिये। परन्तु यह सत्य है कि यदि शास्त्रीगण ऐसा कर सके तो यह संसार का दसवां आश्चर्य होगा।'

राजकोट में आठ व्याख्यान

अहमदाबाद से बिदा होकर स्वामीजी विख्यात तीर्थ-स्थान नड़ियाद एक दिन ठहरते हुए ता० ३१ दिसम्बर १८७४ ई० को राजकोट पहुंचे और कैम्प की धर्मशाला में ठहरे। उसी धर्मशाला में स्वामीजी के आठ व्याख्यान "ईश्वर, धर्मोदय, वेदों का अनादित्व और अपौरुषेयत्व, पुनर्जन्म, विद्या-अविद्या एवं मुक्ति-बन्ध, आर्यों का इतिहास तथा कर्तव्य" इन विषयों पर हुए। वेदविषयक व्याख्यान को सुनकर प्रार्थनासमाज के मन्त्री और सरकारी अधिकारी हरगोविन्ददास द्वारकादास ने कहा कि "उस दिन हमें स्वामीजी की विद्वत्ता, गम्भीर चिन्तन और सूक्ष्म विचार का परिचय मिला। मैंने ऐसी वक्तृता कभी नहीं सुनी थी।"

एक दिन पं० महीधर मूर्तिपूजा पर और जीवनराम शास्त्री अद्वैतवाद पर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आये, पर अल्पकाल में ही निरुत्तर हो गये।

राजकुमार-कॉलेज में राजकुमारों को उपदेश

स्वामीजी के व्याख्यानों से प्रभावित राजकुमार छात्रों के आग्रह पर स्वामीजी ने उनके कॉलेज में जाकर अहिंसा पर प्रवचन करते हुए युक्तिपूर्वक मांसभक्षण के दोष समझाये और प्राणियों की हिंसा तथा फसलों की बर्बादी करने वाले प्राणियों का ही क्षत्रियों द्वारा आखेट करने को उचित बताया। इस व्याख्यान को सुनकर प्रिंसिपल मैकनाटन भी अतिचकित, सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वामीजी को मैक्समूलर-सम्पादित 'ऋग्वेद' ग्रन्थ भेंट किया।

राजकोट में आर्यसमाज की स्थापना

इसी अन्तराल में राजकोट में 'आर्यसमाज' की स्थापना हुई। उत्तमराम निर्भयराम उसके प्रधान और हरगोविन्ददास द्वारकादास मन्त्री नियत हुए। उसके नियम भी मुद्रित करवा के वितरित किये गये और अखबारों द्वारा भी आर्यसमाज-स्थापना की सूचना दी गई, पर समाज के पदाधिकारियों की ढीली नीति के कारण कुछ समय पश्चात् वह समाज टूट गया।

राजकोट में स्वामीजी का एक फोटो भी लिया गया, जिसकी प्रतियां कई मनुष्यों ने चावपूर्वक लीं। स्वामीजी ने एक प्रसंग में कहा कि कोलम्बस को अमरीका का खोजकर्ता बताना गलत है, क्योंकि आर्यों को अमरीका का ज्ञान था। अर्जुन ने वहां की राजकुमारी से विवाह किया था।

स्वामीजी १८ जनवरी १८७५ ई० को राजकोट से प्रस्थान करके मार्ग में बढ़वाण

ग्राम में रुकते हुए २१ जनवरी को पुनः अहमदाबाद पहुंचे। उनका पहला व्याख्यान 'आर्यों की फूट का कारण ब्राह्मणों का स्वार्थ और मूर्ति में ईश्वर के विश्वास से हानियां तथा आर्यों की उन्नति के उपाय' आदि विषयों पर हुआ। दूसरा व्याख्यान 'बालविवाह की हानियां' विषय पर हुआ।

मन्त्रव्याख्या-विवाद और शास्त्रचर्चा में स्वामीजी की जीत

जब स्थानीय शास्त्रीलोगों ने शास्त्रार्थ न करने का कारण 'आ कृष्णेन रजसा' (य० ३३. ४३) मन्त्र के स्वामी दयानन्द द्वारा किये गये अर्थ को गलत बताया तो लोगों ने दोनों पक्षों को अपने अपने अर्थ लिखित रूप में देने को कहा। स्वामीजी ने अपना अर्थ करके उसके नीचे अपने हस्ताक्षर कर दिये। शास्त्रियों के द्वारा किये गये अर्थ के नीचे लल्लूभाई बापू शास्त्री, सेवकराम, रामनाथ शास्त्री और भास्कर शास्त्री ने हस्ताक्षर किये। जज गोपालराव हरिदेशमुख, भोलानाथ साराभाई और अम्बालाल सागरलाल आदि तटस्थों ने दोनों अर्थों को देखकर स्वामीजी के अर्थ को ही यथार्थ पाया। पश्चात् उपरिलिखित मन्त्र के स्वामीजी-कृत अर्थ में, अकारण वैरी विष्णु परशुराम शास्त्री द्वारा 'रथ' शब्द की मूल धातु रम नही ऋ है – ऐसा दोष निकालने पर स्वामीजी ने उणादिकोष और निरुक्त के प्रमाण से अपने अर्थ को सिद्ध कर दिया।

शास्त्रियों का स्वामीजी के साथ मूर्तिपूजा और वर्णाश्रम पर भोलानाथ साराभाई और अम्बालाल सागरलाल की मध्यस्थता में वार्तालाप भी हुआ। अन्त में मध्यस्थों ने स्वामीजी के कथन की विजय स्वीकार की।

गोपालराव हरिदेशमुख जो कभी वेदों के विरोध में लेख लिखते रहते थे, स्वामीजी के व्याख्यानों के सुनने और सत्संग से वेदों के भक्त और स्वामीजी के विशेष अनुरागी बन गये। एक ब्राह्मण द्वारा 'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः' (गीता) के अर्थ पूछने पर स्वामीजी ने कहा कि यहां धर्म शब्द वर्णाश्रमरूपी धर्म का वाचक है।

'हितेच्छु' अखबार ने स्वामीजी के दुबारा अहमदाबाद-आगमन के विषय में कई बातों के साथ ही यह भी लिखा कि निस्सन्देह दयानन्द असधारण व्यक्ति हैं। उनकी योग्यता और प्रतिभा दुर्लभ हैं। यदि वे अन्य सम्प्रदायी आचार्यों के समान बर्ताव करते, तो वे अपार धनराशि एकत्रित कर लेते। पर ऐसा करना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल है। उनका एकमात्र उद्देश्य भारत-पुनरुद्धार ही है।

ता० २९ जनवरी १८७५ ई० को स्वामीजी बम्बई पधारे और पूर्ववत् बालकेश्वर की गोशाला में ठहरे। ४ फरवरी को स्वामीजी का एक व्याख्यान हुआ। सबकी सुविधा की दृष्टि से भक्तजनों ने व्याख्यानार्थ मैदान नामक खुले स्थान पर एक मण्डप (= वेदमण्डप) बना दिया। जिसमें स्वामीजी का पहला व्याख्यान २६ फरवरी को हुआ।

बम्बई में पौराणिक पण्डित व्याकरण में भी परास्त

बम्बई के पण्डितों ने इस भ्रान्ति में कि शायद स्वामीजी व्याकरण कम जानते हैं, स्वामीजी को व्याकरण-विषयक शास्त्रार्थ में पराजित करके उनकी ख्याति और प्रभाव को कम करने के विचार से स्वामीजी को ललकारा। स्वामीजी तो सदा तैयार थे। पूर्वनिश्चयानुसार १० मार्च १८७५ ई० को श्री आतमरामबापू दल की अध्यक्षता में शास्त्रार्थ-सभा जुटी। पण्डितों की ओर से बोलने खड़े हुए खेमजी बालजी जोशी को असम्बद्ध बोलते रहने के कारण श्रोताओं ने ही चुप कर दिया। तब पं० इच्छाशंकर शुक्ल द्वारा किये गये सब प्रश्नों के स्वामीजी ने यथार्थ उत्तर दे दिये, पर स्वामीजी द्वारा किये गये प्रश्नों के जो उत्तर इच्छाशंकर ने दिये उन्हें स्वामीजी ने महाभाष्यादि के प्रमाणों से भ्रमपूर्ण सिद्ध कर दिया। इससे सब लोगों को ज्ञान हो गया कि व्याकरण में भी स्वामीजी की टक्कर का कोई पण्डित नहीं है। उसी सभा में पण्डितों द्वारा नियोग पर किये गये आक्षेपों का भी स्वामीजी ने सुसमाधान कर दिया। फलतः पण्डित खिन्न होकर लौट गये।

बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना

१६ मार्च से तो स्वामीजी ने व्याख्यानों की झड़ी ही लगा दी। जिसका बम्बई की प्रजा ने भरपूर लाभ उठाया और धर्मपिपासा शान्त की। इस अवसर पर भक्तजनों की, बम्बई में आर्यसमाज स्थापित करने की उत्कट इच्छा हुई। सेठ मथुरादास लौजी, सेवकलाल करशनदास, गिरिधारीलाल दयालदास कोठारी आदि सज्जनों के दृढ संकल्प से अनेक सुशिक्षित सज्जन आर्यसमाज के सदस्य बनने को उद्यत हो गये। पानाचन्द आनन्दजी पारीख द्वारा बनाये गये आर्यसमाज-नियमों में स्वामीजी ने यथोचित संशोधन किया और चैत्र शुक्ला पञ्चमी शनिवार संवत् १९३२ तदनुसार दस अप्रैल १८७५ ई० को गिरगाम रोड पर प्रार्थनासमाज के निकट डॉक्टर माणिकजी की बागवाड़ी में सायंकाल साढ़े पांच बजे आयोजित सभा में आर्यसमाज की स्थापना हुई। २८ नियम स्वीकार किये गये।

आरम्भ में तो प्रत्येक शनिवार को सायंकाल आर्यसमाज के अधिवेशन का निश्चय हुआ था। पर पीछे जाकर सबकी अनुकूलता-हेतु रविवार का दिन निश्चित किया गया। आर्यसमाज के सभासदों की संख्या लगभग १०० थी।

स्वामीजी ने कोई पद नहीं स्वीकारा

कई सदस्यों के बार बार कहने पर भी स्वामीजी ने आर्यसमाज का अधिनायक या सभापति बनना (भविष्य में गुरुडम चलने की सम्भावना को टालने के लिये) स्वीकार नहीं किया। विशेष अनुरोध-आग्रह करने पर साधारण सदस्य बनना ही स्वीकार किया। आर्यसमाज में स्वामीजी के व्याख्यान १७ अप्रैल और २४ अप्रैल को हुए।

फोटो को पूजने मत लग जाना

हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने एक दिन स्वामीजी का फोटो खींच लिया। उस पर स्वामीजी ने उन्हें निर्देश किया कि मेरा फोटो आर्यसमाज में न रखा जाय। ऐसा न हो कि पीछे जाकर आर्यसमाजी जन मेरे फोटो की पूजा करने लग जायें। "लोकैषणा के लवलेश से भी कोसों दूर और मूर्तिपूजामात्र के प्रबल निवारक दयानन्द! तुम धन्य हो!"

अंग्रेजी में वेदानुवादकर्ता एच०एच० विलसन ने भी कई बार स्वामीजी के साथ सामान्य वार्तालाप किया। उन्ही दिनों एडवर्ड सप्तम के भारत-भ्रमण के प्रसंग से उनके स्वागत-हेतु बम्बई आये हुए वायसराय लार्ड नार्थ ब्रुक, बाबू केशवचन्द्र सेन से प्रेरित होकर, स्वामीजी से मिलना चाहते थे, किन्तु अवकाशाऽभाव के कारण वायसराय उनसे न मिल सके।

स्वामीजी को ओषधियों का भी विलक्षण ज्ञान था। एक दिन ग्रीष्मकाल के दोपहर में स्वामीजी से मिलने आये अत्यन्त प्यासे श्री जीवनलाल (पश्चात् आर्यसमाज के प्रधान) को स्वामीजी ने अनुपम तृषाशामक शर्बत पिलाया था।

वैष्णव पं० कमलनयनाचार्य की शास्त्रार्थसमर में चुप्पी

बम्बई में पहले और अब भी स्वामीजी द्वारा मूर्तिपूजा के विरुद्ध घोर आन्दोलन करने से अनेकों द्वारा मूर्तिपूजादि त्याग कर वैदिकधर्म ग्रहण करने और आर्यसमाज के भी स्थापित हो जाने से मूर्तिपूजकों ने व्याकुल होकर स्वामीजी को परास्त करने के उद्देश्य से इस बार वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमुख विद्वान् पं० कमलनयनाचार्य को बम्बई बुलाया। पं० कमलनयन का ३१ मई १८७५ को नारायणवाड़ी में एक भाषण हुआ। किन्तु वेदमन्त्रों के स्थान पर रामतापिनी-गोपालतापिनी-उपनिषदों से मूर्तिपूजा सिद्ध करने का प्रयास करने पर वे श्रोताओं की टिप्पणी से ही निरुत्तर हो गये। वास्तव में पं० कमलनयन स्वामीजी से शास्त्रार्थ करना ही नहीं चाहते थे, पर निम्न० घटनावशात् उन्हें शास्त्रार्थ-समर में उतरना पड़ा।

पं० कमलनयनाचार्य के एक शिष्य शिवनारायण बेनीचन्द की अपने एक आर्यसमाजी मित्र ठक्कर जीवनदयाल के साथ लेखबद्ध शर्त हो गई, कि पं० कमलनयन और स्वामी दयानन्द का शास्त्रार्थ हो और उसमें जो जीते, उसी के दोनों मित्र अनुयायी बन जायँ। इसके लिये सार्वजनिक विज्ञापन के साथ शास्त्रार्थ के स्थान (फ्रामजी कावसजी इंस्टीटट्यूट) और तारीख का भी ऐलान कर दिया गया। सेठ मथुरादास लौजी द्वारा बहुत अनुरोध करने और चेताने पर भी कमलनयनाचार्य शास्त्रार्थ-स्थान में आने को उद्यत न थे, किन्तु एक सज्जन द्वारा 'एक बार स्वीकार करके अब न आने पर आप पर आर्यसमाजियों द्वारा अभियोग चलाया जावेगा' की चेतावनी देने

पर साढ़े तीन बजे पं० कमलनयन अपने दलबल के साथ शास्त्रार्थ-सभा में आये । सभापति रावबहादुर बेचरदास अम्बाईदास के अतिरिक्त लक्ष्मीदास खीमजी, भाडेवर पालूराम, रावबहादुर दादूभाई पाण्डुरंग, भाईशंकर नानाभाई, गंगादास किशोरदास, हरगोविन्ददास, मनसुखराम सूरजराम, रणछोड़भाई उदयराम और स्वामीजी के विरुद्ध पत्रों में लिखने वाले पं० विष्णु परशुराम शास्त्री आदि गणमान्य तथा विद्वानों और अन्य श्रोताओं से हॉल खचाखच भरा हुआ था । आठ शास्त्रार्थ लेखक भी उपस्थित थे ।

सभापति द्वारा प्रारम्भिक वक्तृता के रूप में दोनों पक्षों की बात को ध्यान से सुनने और सहन करने की अपील करने के तथा भाईशंकर नानाभाई के द्वारा पूर्वोक्त दोनों के द्वारा लिखित शपथपत्र के सुनाये जाने के बाद पं० कमलनयन के द्वारा "पण्डित लोग ही शास्त्रार्थ-परिणाम को समझ सकते है अन्य नहीं, सो हमारे साथ तो ऐसे पण्डित हैं, पर स्वामीजी ! आपके साथ कौन पण्डित हैं ?" यह नया बखेड़ा खड़ा करने पर ईश्वरीय प्रेरणा समझिये कि अब तक स्वामीजी के विरोध में लगे रहने वाले विष्णु परशुराम शास्त्री ने "स्वामीजी ! यदि आप स्वीकार करें, तो मैं आपकी ओर से पण्डित का कार्य करने को तैयार हूं" ऐसा पूछा । और स्वामीजो द्वारा सरलचित्तता से उन्हें स्वीकृति प्रदान करने पर शास्त्रीजी स्वामीजी के समीप बैठ गये ।

दोनों पक्षों द्वारा सत्य बोलने की प्रतिज्ञा करने के बाद स्वामीजी को न बोलने देकर उनकी ओर से पं० विष्णु परशुराम शास्त्री बोलने लगे । उन्होंने पं० कमलनयन से कहा कि आप नैयायिक कहलाते हैं, आप मुझ से न्यायविषय में प्रश्न करिये मैं उत्तर दूंगा और फिर मैं आपकी परीक्षा लूंगा । आप बतावें की आपने कौन कौन से शास्त्र पढ़े हैं ? इस पर कमलनयन 'बताते हैं' इतना कहकर सर्वथा चुप हो गये । पं० विष्णु शास्त्री द्वारा और फिर स्वामीजी द्वारा भी बारंबार उन्हें कहा गया कि आप अपने पक्षानुसार मूर्तिपूजा को वेदमन्त्रों से सिद्ध क्यों नहीं करते । सब वेदादि शास्त्र यहां रखे हुए हैं । वेद उठाकर बताइये कि कहां मूर्तिपूजा का विधान है ? पं० कमलनयन चुप रहे । जब मथुरादास लौजी द्वारा उनके पूर्व वार्तालाप का हवाला देकर उन्हें बोलने को उकसाया गया, तब भी वे टस से मस नहीं हुए । अन्त में स्वामीजी द्वारा मूर्तिपूजा को वेदविरुद्ध सिद्ध करने के लिये व्याख्यान आरम्भ करने पर पं० कमलनयन सभास्थल से उठकर चले गये । श्रोताओं पर यह प्रभाव पड़ा कि पं० कमलनयनाचार्य भी वेद से मूर्तिपूजा सिद्ध न कर सके, अतः स्वामीजी का पक्ष सत्य ही है । स्वामीजी ने विष्णु परशुराम शास्त्री की सराहना की और कहा इन्होंने सबके सामने सत्य पक्ष का साथ देकर उत्तम कार्य किया । मुझे ऐसे विद्वान् की मित्रता पर गर्व है । सभापति ने स्वामीजी का पुष्पहार से सम्मान किया और तब सभा विसर्जित हो गई ।

तरुणावस्था से वैराग्यवती हरियाणावासिनी एक महिला भगवतीबाई जिसका

'सत्यार्थप्रकाश' पढ़ने से नवीनवेदान्त का भ्रम हट गया था, स्वामीजी के सत्संगार्थ बम्बई आई । वह स्वामीजी के आदेशानुसार जीवन भर स्त्रीजाति में धर्मप्रचार करती रही ।

स्वामीजी की पाकशाला में सब पदार्थ तोलकर दिये जाते थे, जिससे अपव्यय न हो और अतिभोजन से लोग तमोगुणी न बनें ।

पूना में स्वामीजी के ५० व्याख्यान

दूसरी बार भी बम्बई में वैदिकधर्म की दुन्दुभि बजाकर जब महादेव गोविन्द रानाडे और महादेव मोरेश्वर कुंटे आदि के निमन्त्रण पर स्वामीजी जून १८७५ में पूना पधारे और विट्ठल पेठ में पंच हौस के पास शंकर सेठ के मकान में उतरे । पूना पहुंचते ही स्वामीजी ने अपने द्वारा मान्य प्रामाणिक ग्रन्थों के विषय में विज्ञापन दे दिया । नगरस्थित बुधवार पेठ के भिड़े के बाड़े में और केम्प में ईस्ट स्ट्रीट के मराठी स्कूल में कुल मिलाकर स्वामीजी के ५० व्याख्यान हुए, जिन्हें महादेवं गोविन्द रानाडे ने सम्पादित कर छपवा दिया । नगर में हुए १५ व्याख्यानों का तो हिन्दी अनुवाद भी 'उपदेशमञ्जरी' नाम से प्रकाशित हुआ ।

'स्वामीजी संस्कृत भाषा के पूर्ण ज्ञान के अभाव में ही हिन्दी में व्याख्यान देते हैं' ऐसी भनक कान में पड़ते ही १७ जुलाई को 'पुनर्जन्म' पर स्वामीजी ने जो व्याख्यान दिया, उसमें उन्होंने सुललित और मधुर संस्कृत की नदी बहा दी । जिसे सुनकर पण्डित-वर्ग भी चकित हो गया । पर सामान्य श्रोताओं की प्रार्थना पर फिर उन्हें हिन्दी में ही व्याख्यान देना पड़ा ।

बेढंगी शर्तों द्वारा पण्डितों का शास्त्रार्थ से टलना

स्वामीजी की पाखण्डखण्डनात्मक व्याख्यान-माला से और अनेक लोगों द्वारा मूर्तिपूजा के त्याग से क्षुब्ध हुई पौराणिक-पण्डितमण्डली ने १५ अगस्त १८७५ को विष्णुमन्दिर में आयोजित सभा में स्वामीजी के मन्तव्यों का खण्डन किया । पं० रामदीक्षित आप्टे तथा पं० नारायण गोडबोले ने स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने हेतु एक विज्ञापन भी दिया । पर विज्ञापन में बेढंगी शर्तें भी रख दी । जिनके विषय में १६ अगस्त के 'इन्दुप्रकाश' अखबार ने और १८ अगस्त के 'हितेच्छु' अखबार ने लिखा कि पौराणिक दल ने केवल प्रतिष्ठा बचाने हेतु ही शास्त्रार्थ का विज्ञापन दिया है, अन्यथा उसमें अस्वीकरणीय शर्तों और नियमों की चर्चा न होती ।

स्वामीजी के प्रचार को रोकने के विफल प्रयास

बहुत सी प्रजा जहां स्वामी के सत्यवेदोपदेश और अवैदिक मान्यताओं के खण्डन से, श्रद्धालु होकर धर्मलाभ उठा रही थी, वहीं कुछ स्वार्थी अविद्याग्रस्त लोग स्वामीजी द्वारा गुणकर्मानुसार वर्णविभाग मानने, सबको वेदाधिकार देने और मूर्तिपूजा को वेदविरुद्ध

मानने से इतने व्याकुल हो गये, कि वे उपद्रव करने और षड्यन्त्र रचने पर उतारु हो गये। इनके नेता रिट्य० असि० कमि० नारायण भीकाजी जोगलेकर थे। ये स्वामीजी के विरोध में रामशास्त्री और वासुदेवाचार्य के व्याख्यान कराया करते थे। स्वामीजी को बदनाम करने की नीयत से एक मन्दिर से स्वयं मूर्तियां फिंकवा कर, स्वामीजी पर मूर्तियां फेंकने-फिंकवाने का लाञ्छन भी लगाया गया। विपक्षियों के समाचारपत्रों ने स्वामीजी पर दोषारोपण करने और उनके विरुद्ध सरकार को भड़काने का निष्फल प्रयास किया।

स्वामीजी के सम्मानार्थ भक्तों द्वारा शोभायात्रा

पूना में पर्याप्त धर्मोपदेश-वर्षा करने के बाद जब स्वामीजी सतारा जाने को उद्यत हुए, तो भक्तजनों ने सम्मान-प्रदर्शनार्थ नगर में स्वामीजी की शोभायात्रा निकालने का निश्चय किया। तय हुआ कि ५ सितम्बर १८७५ को पहले कैम्प में स्वामीजी का एक व्याख्यान कराया जाय, तदनन्तर समारोहयात्रा नगर में ले जाई जाय। तदनुसार 'यथेमां वाचं०' (यजु० २६.२) पर स्वामीजी के व्याख्यान के बाद गंगाराम भाऊ भस्के ने कृतज्ञताज्ञापक एक सुन्दर वक्तृता दी और प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने स्वामीजी को अत्युत्तम शॉल आदि वस्त्र भेंट किये, जिन्हें स्वामीजी ने अनिच्छा होने पर भी लोगों के मानार्थ स्वीकार कर लिये। समारोहयात्रा में अत्याग्रह करने पर भी स्वामीजी हाथी पर सवार नहीं हुए और अन्यों के साथ पैदल ही चले। यात्रा में हाथी, घोड़े और देशी-अंग्रेजी बैंड भी थे। आरम्भ में चार सौ लोग थे, पर नगर में पहुंचते पहुंचते तीन सहस्र का जनसमूह हो गया।

विरोधियों द्वारा शोभायात्रा पर पथराव

स्वामीजी की इस सम्मानयात्रा से चिढ़कर विरोधियों ने उनके अपमान एवं उपहास के लिये एक गधा-समारोह-यात्रा उसी दिन निकाली, जिसमें एक गधे पर गेरुए वस्त्र की झूल डालकर, उस पर 'गर्दभानन्द सरस्वती' लिखकर और उसे आगे करके सैंकड़ों समाजकंटकों की टोली के साथ 'गर्दभानन्द की जय' 'दयानन्द गदहे की जय बोलते हुएं एक जलूस निकाला। सायं ५ बजे प्रारम्भ हुई स्वामीजी की शोभायात्रा जब ७.१/२ बजे भिड़े के बाड़े, जहां स्वामीजी का व्याख्यान होना था, पहुंची, तो वहां उधर से आये गर्दभदल ने स्वामीजी और उनके साथ के लोगों पर, पत्थर, ईंट, गोबर आदि बरसाना आरम्भ कर दिया। अनेकों को चोटें आईं। एस०पी० पोर्टमैन और आई०पी० ट्रेने ने बड़ी मुश्किल से स्थिति पर काबू पाया। इतना होने पर भी तदनन्तर हॉल में स्वामीजी ने बड़ी शान्ति एवं गम्भीरता के साथ व्याख्यान दिया। अनुयायी प्रजा ने भी निर्भय होकर हॉल में पूरी संख्या में उपस्थित होकर उपदेश सुना। समाप्ति पर भक्तजनों ने स्वामीजी को वेदभाष्यार्थ द्रव्यराशि भेंट की। मना करने पर भी

स्वामीजी रात्रि में १२ बजे भी शयनार्थ निर्भीक होकर स्वस्थान पर ही गये। पुलिस भी साथ गई।

इस उपद्रव के जनक प्रभावशाली व्यक्तियों के स्थान पर केवल २-३ गरीबों को ही पकड़ा गया, क्योंकि प्रायः सारी पुलिस मूर्तिपूजक ब्राह्मणों के बहकावे में थी, जिसका कि मजिस्ट्रेट ने अपने एक निर्णय में जिक्र किया था और पुलिस को स्वकर्तव्य-पालन में असफल रहने पर डांट पिलाई थी।

पूना से स्वामीजी सितम्बर में सतारा गये और रा०रा० कल्याणराम सीताराम, मि० धामनारकर और मि० राजे आदि राज्याधिकारियों ने स्वामीजी के निवास तथा भोजन आदि का प्रबन्ध किया। सतारा में स्वामीजी केवल उनके समीप आनेवाले लोगों से ही शास्त्रचर्चा करते रहे और उसी में पाखण्डखण्डन का क्रम जारी रहा।

मध्यस्थ सम्बन्धी अड़ंगे द्वारा विपक्ष का शास्त्रार्थ से टलना

पौराणिक लोगों ने एक दिन दीवान बाड़े में वेदमूर्ति अनन्ताचार्य, राजेन्द्र गोरकर, रामशास्त्री गाडबोले, भाऊजी दीक्षित चिपलूणकर और अनन्त शास्त्री चिपलूणकर आदि विद्वानों के सान्निध्य में एक सभा की, जिसमें स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का निश्चय किया और तदर्थ एक विज्ञापन दिया। किन्तु उसमें स्वानुकूल मध्यस्थ होने का पचड़ा डाल दिया। स्वामीजी शास्त्रार्थ-हेतु तो तैय्यार थे, पर विपक्ष के अनुकूल मध्यस्थ की बात कैसे स्वीकार्य होती। अतः शास्त्रार्थ न हो सका।

एक व्यक्ति की जिज्ञासा पर स्वामीजी ने फलितज्योतिष को प्रतारणामात्र बताया। स्वामीजी ने कहा कि मनुस्मृति के बहुत से प्रक्षिप्त श्लोक गोविन्दराज और मेधातिथि की टीकाओं से भी पहले मिला दिये गये थे, जिनमें मनुस्मृति के स्वमन्तव्य से विरोधवाले श्लोक भी हैं।

सतारा से स्वामीजी २३ अक्टूबर को प्रस्थान करके पूना होते हुए अक्टूबर के अन्त में बम्बई पहुंचे। बम्बई रेल्वे स्टेशन पर स्वागतार्थ प्रायः ५०० व्यक्ति उपस्थित थे। ३० अक्टूबर को 'आर्यों के नये वर्ष का प्रथम दिवस' इस विषय पर स्वामीजी का व्याख्यान हुआ।

बड़ौदा में धर्मप्रचार

बम्बई में कुछ दिन रुककर उन्होंने धर्मोपदेश हेतु बड़ौदे की ओर प्रस्थान किया। दिसम्बर १८७५ में स्वामीजी बड़ौदा पहुंचे। दीवान सर टी० माधवराव ने रेलवे स्टेशन समीपस्थ धर्मशाला में स्वामीजी के निवास का प्रबन्ध किया और दो सिपाही वहां नियुक्त कर दिये। रा०ब० गोपालराव हरि देशमुख के पुत्र बड़ौदा के सिटी-जज रामचन्द्र गोपाल देखमुख भी स्वामीजी के आतिथ्य पर विशेष ध्यान देते थे।

व्याकरण और न्याय में भी पौराणिक पण्डित परास्त

स्वामीजी का पहला व्याख्यान 'देशोन्नति' पर और दूसरा 'वेदाधिकार' पर हुआ। जिसमें पण्डितों के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध गायक नवाब मौलाबख्श भी थे। स्वामीजी 'यथेमां वाचं०' (यजु० २६.२) बोलकर व्याख्यान देने तत्पर हुए, तो शास्त्रियों ने कानों में अंगुलियां देकर शोर मचाना शुरु कर दिया कि शूद्रों और यवनों के सामने मन्त्रोच्चारण अनर्थ है। मणिभाई यशभाई, रा०ब० गजानन आदि के समझाने पर भी जब वे उपद्रव से न रुके और अन्त में शास्त्रार्थ के लिये कहने लगे तो स्वामीजी ने कहा कि 'हम वर्ष भर के, छः मास के अथवा दो घण्टे के, हर प्रकार के शास्त्रार्थ के लिये तैयार हैं।' पण्डितों के बीच में चली "स्वामीजी शायद संस्कृत अच्छी नहीं जानते हैं" ऐसी कानाफूंसी को सुनकर स्वामीजी संस्कृत में ही बोलने लगे और शास्त्रार्थ-हेतु आगे आये वैयाकरण पं० यज्ञेश्वर को 'भू' धातु के लिङ्लकार के प्रयोगों में परास्त कर दिया। तदनन्तर नैयायिक अप्पय शास्त्री आगे आये जिन्हें 'गदाधरी' - विषयक प्रश्नोत्तरों में परास्त होना पड़ा।

बड़ौदा की राजमहिषी यमुनाबाई स्वामीजी के दर्शन करना चाहती थी, किन्तु स्वामीजी की अनिच्छा के कारण उनकी इच्छा पूर्ण न हुई। विरोधियों ने भी राजमहिषी को भड़काया था। रा०ब० गजानन को भी पण्डितों ने 'दयानन्द नास्तिक है, अतः उसका संग उचित नहीं है' ऐसा कहा तो वे उनसे उल्टी डांट खाकर लौटे।

बड़ौदा के दीवान द्वारा स्वामीजी के राजनीतिज्ञान की प्रशंसा

स्वामीजी का तीसरा व्याख्यान केदारेश्वर-मन्दिर में 'राजधर्म' विषय पर हुआ। रा०ब० रामचन्द्र गोपाल देशमुख के विशेष उद्योग से इसमें बहुत लोग आये। जिनमें सर टी० माधवराव, मिस्टर केलकर, बड़े बड़े राजकर्मचारी, वकील, सम्भ्रान्त लोग और अनेक पटेल भी थे। व्याख्यान में राजा के गुण तथा कर्तव्य, अमात्यवर्ग का उत्तरदायित्व और राजकीय कानून से बालविवाह-निवारण पर चर्चा करते हुए स्वामीजी ने राजा और राजकर्मचारियों में तथा प्रजा में राजनियम बनाकर ब्रह्मचर्य की यथायोग्य अनिवार्यता पर जोर दिया और स्वयं के ब्रह्मचर्य-जन्य बल की परीक्षा करने हेतु चैलेंज भी दिया। इस राजधर्म-व्याख्यान से सर टी० माधवराव इतने प्रभावित हुए कि सभा-समाप्ति पर स्वामीजी को दण्डवत् प्रणाम करते हुए कहा कि "महाराज आप राजनीति में हमसे भी सौगुने निपुण हैं।'

एक व्यक्ति के द्वारा टोके जाने पर शरीर-स्वास्थ्यार्थ संन्यासी द्वारा क्षौर कराने में और परोपकार-कार्यार्थ उसके द्वारा अपने पास धन रखने में कोई बुराई नहीं है' ऐसा स्वामीजी ने कहा। एक दिन सर टी० माधवराव स्वामीजी को अपने घर ले

गये और कथावार्ता पश्चात् उन्होंने एक थाल में एक सहस्र मुद्रा (जो आज के एक लाख रुपयों से भी अधिक थे) भेंट की। परन्तु 'हम वल्लभाचार्यों के समान दुकानदार नहीं हैं' कहकर स्वामीजी ने उसे अस्वीकार कर दिया।

कष्टग्रस्त को न्याय दिलवाने हेतु निष्कारण सिफारिश

नवसारी के इजारेदार गोविन्दराम लिछाभाई के ऊपर राज्य की ओर से दो लाख रुपये का दावा किया गया था और वे जेल में बन्द थे। उनके दामाद ने किसी माध्यम से स्वामीजी के लेखक पं० कृष्णराम इच्छराम के द्वारा स्वामीजी को कहलवाया कि यदि वे सर टी० माधवराव से कहकर उनके श्वशुर का शीघ्र फैसला करवा दें तो वे वेदभाष्यार्थ बीस हजार (आज के बीस लाख) रुपये स्वामी को दे देंगे। स्वामीजी ने कृष्णराम को ऐसी प्रलोभन की बात कहने पर फटकारा और मनाकर दिया। किन्तु दयालु स्वामीजी ने एक प्रसंग में दीवान सर टी० माधवराव को शीघ्र न्याय करवाने को कहा। फलस्वरूप. गोविन्दराम द्वारा राज्यकोष में मात्र बीस हजार रुपये जमा करा दिये जाने पर उन्हें जेल से मुक्त कर दिया गया।

पं० शंकर पाण्डुरंग द्वारा वेदों का स्वरचित अंग्रेजी अनुवाद दिखाने पर स्वामीजी ने कहा की सायण और मैक्समूलर के अनुसार किया हुआ वेदानुवाद व्यर्थ है। संस्कारविधि (प्रथमसंस्करण) की रचना भी बड़ौदे में समाप्त हुई।

बड़ौदे से श्री गोपालराव हरि देशमुख से मिलने स्वामीजी अहमदाबाद गये। वहां से वे भड़ौंच होते हुए सूरत गये। वहां हाईस्कूल में उनका एक व्याख्यान हुआ। शिक्षाविभाग-इन्स्पेक्टर डॉ० वॉन बुहलरने भी स्वामीजी से साक्षात्कार किया।

सूरत से स्वामीजी **बलसाड़** पधारे और रतनसी पारसी के बाग में ठहरे। वहां उनके चार व्याख्यान हुए। बहस करने आये कुछ अनीश्वरवादियों को अल्पकाल में ही स्वामीजी ने चुप कर दिया।

गुजरात के विख्यात पण्डित भवानीशंकर जो कि स्वामीजी के व्याख्यानों में जाते थे, लोगों द्वारा स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने हेतु उकसाये जाने पर, उन्होंने कहा स्वामी दयानन्द जो कुछ कहते हैं, वह शास्त्र-विरुद्ध नहीं है, फिर मैं उनसे शास्त्रार्थ किस बात पर करूँ ?"

बलसाड़ से स्वामीजी **बसीनरोड** गये और चार दिन के निवास में दो व्याख्यान दिये।

वहां से स्वामीजी मार्च १८७६ के आरम्भ में धर्म-प्रचारार्थ पुनः **बम्बई** पधारे। ५ मार्च १८७६ को आर्यसमाज की ओर से मि० गोविन्दविष्णु के इंग्लिश स्कूल में स्वामीजी का मनोहर व्याख्यान हुआ। जिसमें अनेक प्रतिष्ठित हिन्दुओं के अतिरिक्त प्रसिद्ध संस्कृतविद्वान् प्रोफेसर मोनियर विलियम्स और बम्बई के कालेक्टर मि० शेफर्ड

भी थे। समाप्ति पर रा० ब० गोपालराव हरि देशमुख और नगीनदास तुलसीदास ने आर्यसमाज के कार्यों और स्वामीजी के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। सभान्त में प्रो० मो० विलियम्स ने स्वामी से चिरकाल तक संस्कृत में वार्तालाप करके प्रसन्नता व्यक्त की और स्वामीजी की भाषणशैली को बहुत सराहा।

ता० १६,१७ मार्च को हरिश्चन्द्र चिन्तामणि-हॉल में स्वामीजी के 'ईश्वर का अस्तित्व, उसके गुण और यज्ञमहिमा' पर व्याख्यान हुए। जिनमें मजिस्ट्रेट रा० ब० नानामोरोजी, मि० छबीलदास लल्लूभाई, मि० भाईजीवनजी, मि० (जज) श्यामराव विठ्ठल, डॉ० पाण्डुरंग गोपाल और मि० आत्माराम पायादालव्ये आदि सम्भ्रान्त व्यक्ति भी उपस्थित थे।

२१ मार्च को स्वामीजी का चौथा व्याख्यान 'आर्यों के इतिहास और नवयुवक सन्तति' विषय पर टाउनहॉल में रा०ब० नानामोरोजी के सभापतित्व में हुआ।

पं० रामलाल भी वेद से मूर्तिपूजा सिद्ध न कर सके

शान्तिपुर नदिया-निवासी और बम्बई के मारवाड़ियों में प्रसिद्ध विद्वान् ज्योतिषी पं० रामलाल जब मार्च १८७६ में बम्बई आये, तो पौराणिकों ने उन्हीं को शास्त्रार्थ-हेतु तैयार किया। स्थानीय पण्डितों के सहयोग से पं० रामलाल के द्वारा शास्त्रार्थ की पूरी तैयारी कर लेने पर स्वामीजी को मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हेतु २७ मार्च १८७६ को जीवनजी हॉल में बुलाया गया।

श्रोताओं से खचाखच भरे हॉल में श्री झुझाऊजी शास्त्री की मध्यस्थता में शास्त्रार्थ का आरम्भ हुआ। स्वामीजी ने पं० रामलाल से 'वेद ही आर्यों के मूलग्रन्थ हैं' यह स्वीकार करवाने के बाद 'मूर्तिपूजा को सिद्ध करने वाला कोई वेदमन्त्र प्रस्तुत करिये' ऐसा पं० रामलाल को कहा। बार बार टोकने पर भी पं० रामलाल जब वेदमन्त्र के स्थान पर पुराणों और स्मृतियों के प्रमाण ही देते रहे, तो मध्यस्थ महोदय ने कहा कि 'पूर्वनिश्चयानुसार आपको मूर्तिपूजा पर वेदप्रमाण देना चाहिये।' तब पं० रामलाल ने कहा कि मूर्तिपूजा को हम वेद से सिद्ध नहीं कर सकते। किन्तु पुराणादि से सिद्ध कर सकते हैं। इतना कहने के बाद सभा समाप्त हो गई। इस शास्त्रार्थ-चर्चा से श्रोताओं को दृढ़ निश्चय हो गया कि आर्यों के मूल ग्रन्थ वेद में मूर्तिपूजा की कोई आज्ञा नहीं है।

वेद से मूर्तिपूजा-सिद्धिकर्ता को नगद इनाम की घोषणा

पश्चात् जीवनदयाल नेरकादयाल ने "स्वामी दयानन्द कई बार बम्बई आकर निरन्तर मूर्तिपूजा को अवैदिक बताकर उसका खण्डन कर रहे हैं। पर पं० गट्टूलाल, पं० कमलनयनाचार्य और पं० रामलाल आदि कोई भी मूर्तिपूजा को वेद से सिद्ध नहीं

कर सका है। यदि कोई सिद्ध कर देगा तो उसे १२५ रुपये नगद (इस समय के तेरह हजार रुपये) दिये जायेंगे" ऐसा विज्ञापन दिया। पर कोई सामने न आया।

बम्बई-धर्मप्रचार के विषय में 'बङ्गदर्शन' में लेख

बम्बई में स्वामीजी द्वारा किये गये धर्मप्रचार के विषय में उस समय बम्बई में प्रवास कर रहे एक बंगाली द्वारा 'बंगदर्शन' अखबार में प्रकाशित एक लेख में लिखा गया कि "बम्बई पूना आदि स्थानों में दयानन्द ने महा आन्दोलन उपस्थित कर रखा है। अनेक उत्साही भद्र पुरुष उनके अनुयायी होकर आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गये हैं। दयानन्द सबल एवं दीर्घ काय हैं, उनकी वाग्मिता और तर्कशक्ति असाधारण है। स्वदेश के मंगल के लिये उनका उत्साह तथा यत्न भी असाधारण है। उनमें लोकाकर्षण की अद्‌भुत शक्ति है। मैंने देखा कि पूना से दयानन्द बम्बई आ रहे हैं, इतना समाचार पाते ही एक सामान्य दुकानदार भी उनके स्वागतार्थ रेल्वे स्टेशन की ओर चल दिया। वे एकेश्वरवादी, मूर्तिपूजा के घोर विरोधी, जन्मान्तर-विश्वासी और वेदों को आप्त वाक्य माननेवाले हैं। सामाजिक विषयों में उनके मन्तव्य अति विशुद्ध और उदार हैं। एक अंग्रेजी से अनभिज्ञ हिन्दू संन्यासी से देशोत्थान, समाजकल्याण और अन्धविश्वास-निवारण तथा पाखण्डखण्डन विषयक वेदशास्त्राधारित प्रवचन सुनकर महान् आश्चर्य ही होता है। उनके प्रवचनों में हिन्दू-मात्र-पूज्य वेदादिशास्त्रों की व्याख्या होती है।"

स्वामीजी के उपदेशों में इन्दौर-महाराजा की उपस्थिति

स्वामीजी बम्बई से अप्रैल के अन्त में इन्दौर पहुंचे और तालबाग में डॉ० गणपतसिंह के अतिथि बने। स्वामीजी के प्रवचनों में अनेक सम्भ्रान्त लोग और राजकर्मचारी आते रहे। स्वामीजी से वार्तालाप-हेतु महाराजा तुकोजीराव भी प्रायः आते थे। उनकी ओर से स्वामीजी को काशी तक का मार्गव्यय दिया गया और वेदभाष्य की ५० प्रतियां खरीदने का वचन भी। स्वामीजी ने महाराजा को राजनीति के कुछ सिद्धान्त भी लिखकर दिये थे। उस समय के प्रत्यक्ष द्रष्टा पं० विष्णु पन्त ने एक पत्र में लिखा था 'उनका स्वर मधुर और गम्भीर था। उनकी वाणी एक दम लोगों के हृदय में प्रवेश कर जाती थी।'

वैदिकधर्मी अध्यापक के अभाव में पाठशाला तोड़ दी

इन्दौर से चलकर स्वामीजी ९ मई १८७६ को फर्रुखाबाद पहुंचे। ला० जगन्नाथ के घर पर 'धर्म का वास्तविक स्वरूप, ईसाईमत, मूर्तिपूजा और अवतारवाद' इन विषयों पर स्वामीजी के चार व्याख्यान हुए। स्वस्थापित वैदिक पाठशाला को वैदिकधर्मी अध्यापक न मिलने के कारण तोड़ दिया और उसका पैसा सहायकों की सम्मति

से वेदभाष्य-हेतु काम में ले लिया गया। इस पाठशाला के एक अध्यापक पं० ज्वालादत्त ने स्वामीजी की स्तुति में एक कविता बनाई थी, जिसे सुनकर स्वामीजी ने कहा कि "मैं मनुष्य हूं, मनुष्य की स्तुति करना कदापि उचित नहीं है।"

यहां एक अंग्रेज पादरी लूकस की स्वामीजी से 'मोक्षप्राप्ति के साधन' विषय पर चर्चा हुई। "ईश्वर-प्राप्ति से ही मुक्ति सम्भव है, ईसा पर विश्वास लाने के कदापि नहीं। ईसा के सदुपदेशक, मृत-संजीवक और पवित्र-कर्मकर्ता होने के कारण उन पर विश्वास से मुक्ति मानते हो तो श्रीकृष्ण, शुक्राचार्य और शंकाराचार्य के ऊपर विश्वास करने से मुक्ति होना क्यों न माना जाय।" ऐसा स्वामीजी ने उत्तर दिया। जिस पर पादरी को चुप होना पड़ा।

तत्पश्चात् २७ मई १८७६ को स्वामीजी काशी पहुंचे और उत्तमगिरि गोसांई के बाग में ठहरे। वेदभाष्य में लेखनकार्यार्थ स्वामीजी ने पं० भीमसेन को काशी बुलाया और तदर्थ अपेक्षित ग्रन्थों का संग्रह किया। वेदभाष्य छपवाने हेतु लाजरस कम्पनी से बात भी कर ली।

स्वामीजी वहां से चलकर तीन दिन जौनपुर रुकते हुए १८ अगस्त १८७६ को अयोध्या पहुंचे और सरयूबाग में ठहरे। यहीं पर २० अगस्त से 'ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका' का लेखनकार्य आरम्भ हुआ। स्वामीजी द्वारा शास्त्रार्थ के लिये विज्ञापन बंटवाने पर स्थानीय बैरागियों और पण्डितों ने हुल्लडबाजी की नीयत से अपने यहां शास्त्रार्थ करने की शर्त रख दी। जिसे अस्वीकार करके स्वामीजी ने स्वस्थान पर शास्त्रार्थ-हेतु बुलाया, पर वे न आये

कुछ विशिष्ट समाधान

अयोध्या से स्वामीजी २७ सितम्बर को लखनऊ आये और हुसैनाबाद में सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया की कोठी में उतरे। उन दिनों वे 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के लेखन के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा भी सीखने लगे, पर समयाभाव के कारण इसमें प्रगति न हो सकी। २८ अक्टूबर के 'बिहारबन्धु' में छपा था कि स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रचारार्थ विलायत जाना चाहते है। यहां स्वामीजी ने लाला व्रजलाल रईस के प्रश्नों का समाधान किया था, जिनमें से प्रमुख निम्न० हैं - वर्तमान जातिप्रथा अनुचित है। बारह सौ वर्ष पहले तक गुणकर्मानुसारी वर्णव्यवस्था थी। ईश्वर का कोई आकार नहीं है और न वह अवतार लेकर शरीरधारण करता है, इसलिये उसकी मूर्ति बनाना और उसकी पूजा करना सर्वथा असत्य और बुरा है। ईश्वर सब में ही है, परन्तु ज्ञानवान् मनुष्यों को ही उसकी अनुभूति होती है। परमात्मा ने सर्गारम्भ में अग्नि आदि चार ऋषियों के हृदयों में चार वेदों का प्रकाश किया। संस्कृत भाषा सबसे श्रेष्ठ है। ईश्वर की विशिष्ट आन्तरिक बलवती प्रेरणा से, मनुष्य

आरम्भ में वाणी बोलने लगा। जीव असंख्य है और सब जीवों का आकार एक जैसा है।

स्वामीजी ने प्रत्येक वेदमन्त्र पर विचार किया था

यहां 'संस्कृत-वाक्यप्रबोध' पुस्तिका प्रकाशित करवाई थी, जिसमें पण्डितों के प्रमाद से कुछ अशुद्धियां रह गई, जिन्हें स्वामीजी ने स्वीकार किया और अगले संस्करण से शुद्ध छपवाने का संकल्प किया। प्रसंगवश स्वामीजी ने बताया कि 'पूर्वमीमांसा यज्ञ में पशुवध का विधान नहीं करता है। वहां सूत्रों में आये 'आलम्भन' शब्द का अर्थ स्पर्श ही है, वध नहीं। मैंने वेद के एक एक मन्त्र पर विचार करके निश्चय किया है, कि इनमें कोई बात युक्तिविरुद्ध नहीं है। लोग कहते हैं कि आप मन्त्र का अर्थ उलट देते हैं, सो असत्य है। वास्तव में मध्य में लोगों ने जो अर्थ उलट दिया, मैं उसे उलटता हूं।

स्वामीजी वहां से प्रस्थान करके पांच दिन शाहजहांपुर रुकते हुए ६ नवम्बर को बरेली पहुंचे और ला० लक्ष्मीनारायण खजांची की बेगमबाग वाली कोठी में ठहरे। इसी कोठी में स्वामीजी के चार व्याख्यान हुए। तत्पश्चात् खजांची द्वारा अपनी विवशता बताने पर स्वामीजी मात्र 'ऋ० भाष्यभूमिका' की रचना में लग गये।

बरेली के पौराणिकों ने स्वामीजी से शास्त्रार्थ के लिये पीलीभीत से पं० अंगदराम शास्त्री को बुलाया। पर योजनाबद्ध तरीके से वे पांच हजार मनुष्यों की भीड़ के साथ हुल्लड़ करते हुए खजांची की कोठी पर आये। खजांची ने उनकी उपद्रव की योजना को ताड़ कर उन्हें कोठी के अन्दर घुसने से रोक दिया। पश्चात् पं० लक्ष्मण शास्त्री शास्त्रार्थ-हेतु आये, किन्तु अपने अशुद्ध संस्कृतभाषण के कारण उन्हें चुप होना पड़ा। एक सुसंस्कृत पं० गंगाराम ने स्वामीजी के उपदेशों को शास्त्रसम्मत मानकर स्वामी-प्रशंसा में श्लोक बनाकर सभा में सुनाये। एक प्रसंग में स्वामीजी ने कहा की विद्युत आदि की विद्याएँ वेद में हैं। ला० लक्ष्मी० खजांची ने वेदभाष्य-सहायतार्थ दो सौ रुपये भेंट किये।

मुरादाबाद में पादरी से शास्त्रार्थ

बरेली से स्वामीजी मुरादाबाद पधारे और राजा जयकृष्णदास की कोठी पर उतरे। उक्त कोठी में स्वामीजी के ५-६ व्याख्यान हुए। पण्डित लोग कोलाहल करते रहे। पर शास्त्रार्थ, हेतु कोई सामने न आया। कई पुरुषों ने यहां स्वामीजी से यज्ञोपवीत भी लिया। यहां पादरी डब्ल्यु० पार्कर का स्वामीजी से १५ दिन तक शास्त्रार्थ हुआ। स्वामीजी ने सिद्ध कर दिया कि ईसा आदि किसी मनुष्य पर विश्वास करने मात्र से पाप छूटने और मुक्ति होने की बात मानना मूर्तिपूजा से भी बुरी है और बाइबिलप्रोक्त सृष्टि की छः हजार वर्ष आयु सर्वथा असत्य है। मुंशी इन्द्रमणि,

जिन्होंने हिन्दू धर्म पर आक्षेप करनेवाले मुसलमानों को लिखित उत्तर दिया था और जो पहले स्वामीजी के भक्त बने और पीछे जाकर स्वार्थसाधनवश उनसे अलग हो गये, वे मुरादाबाद के ही रहने वाले थे ।

एक दिन व्याख्यान के बीच में एक चक्रांकित द्वारा बार बार शोर मचाकर 'आ कृष्णेन रजसा०' मन्त्र के अर्थ करने का चैलेंज देने पर स्वामीजी ने उसका अर्थ करके उससे जब कहा कि अब तुम इसका अर्थ करो, तो उस निरक्षर को चुप होना पड़ा । एक व्याख्यान में मद्यपान के दोषों का स्वामीजी ने इतना सजीव वर्णन किया कि कुन्दरकी (मुरादाबाद) निवासी रईस रामदयालसिंह ने मद्यपान त्याग दिया और मृत्युपर्यन्त उसे निभाया । म० बख्शीराम को स्वामीजी ने विशेष योगसाधन बताये और प्रणवसहित सप्त व्याहृतिपूर्वक गायत्रीमन्त्र तथा अन्त में 'ओम् आपो ज्यो०' मन्त्र - इस त्रिसमूह के जप करने को कहा । जिसके करने से म० बख्शीराम को शान्तिलाभ हुआ ।

मुरादाबाद से स्वामीजी बरेली और कर्णवास होते हुए दिसम्बर में छलेसर आये और ठा० मुकुन्दसिंह आदि के अतिथि बने । यहां स्वस्थापित वैदिक पाठशाला से वैदिकधर्मी छात्रों के तैयार न होने के कारण इसे स्वामीजी ने तोड़ डाला ।

लार्ड लिटन के दरबार के अवसर पर दिल्ली में धर्मप्रचार

सात दिन छलेसर ठहरकर स्वामीजी ठा० मुकुन्दसिंह, भूपालसिंह, गोपालसिंह किशनसिंह आदि के साथ अलीगढ़ होते हुए १७ दिसम्बर को दिल्ली आये और कुतुब रोड पर शेरमल के अनारबाग में ठहरे । स्वामीजी का दिल्ली आने का उद्देश्य १ जनवरी १८७७ ई० से होने वाले वायसराय लार्ड लिटन के दरबार में उपस्थित होने वाले राजा-महाराजाओं में धर्मप्रचार करना था ।

स्वामीजी ने सर्वसाधारण में और राजा-महाराजाओं के डेरों पर एक विज्ञापन बंटवाया कि अपने पण्डितों से हमारे साथ शास्त्रचर्चा करवा के सत्याऽसत्य का निर्णय करवाइये । इससे सर्वत्र धूम मच गई और प्रतिदिन कई पण्डित आकर धर्मचर्चा करने लगे । एक चौबे को स्वामीजी ने समझाया कि श्रीकृष्णजी के विषय में परस्त्रीगमन की तथा गोपियों के साथ रास रचाने की बात कहना श्रीकृष्णजी की घोर निन्दा करना है । फारसीभाषी एक ईरानी और चार अरबी-भाषी मुसलमान भी स्वामीजी से धर्मचर्चा करने आये ।

पण्डितों के बहकाने से राजा न आये

यहां महाराजाओं में से केवल इन्दौर के तुकोजीराव होल्कर ही स्वामीजी के सान्निध्य में आये । होल्कर ने अन्य महाराजाओं को लाने का वचन दिया था, पर वे वैसा न कर सके । महाराजा डुमराऊँ अवश्य कई बार शंकासमाधानार्थ स्वामीजी

के पास आये। कश्मीर-नरेश महाराजा रणवीरसिंह स्वामीजी से मिलता चाहते थे, किन्तु पं० गणेश शास्त्री, मन्त्री नीलाम्बर बाबू और दीवान अनन्तराम आदि द्वारा बहकाये जाने के कारण वे स्वामीजी से मिलने न आये।

प्रमुख सुधारकों की सभा में चर्चा

स्वामीजी ने प्रमुख सुधारकों से भी सत्याऽसत्य निर्णयार्थ चर्चा करने के उद्देश्य से स्वस्थान पर एक सभा बुलाई। उसमें मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, नवीनचन्द्रराय, केशवचन्द्र सेन, मुंशी इन्द्रमणि, सर सैय्यद अहमदखां और हरिश्चन्द्र चिन्तामणि भी थे। अन्त में "वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानने और वेदानुकूल धर्म का प्रचार करने" की बात पर सबके सहमत न होने से सभा का विशेष परिणाम न निकला।

यहां से स्वामीजी ने कलकत्ता के 'इन्डियन मिरर' और लाहौर के 'हिन्दू बान्धव' अखबारों में दो विज्ञापन दिये। एक में वेदभाष्य की विशेषताएँ और दूसरे में आर्यसमाज के नियम थे। सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया तथा कन्हैयालाल अलखधारी आदि ने स्वामीजी को पंजाब पधारने का निमन्त्रण दिया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया।

स्वामीजी दिल्ली से १६ जनवरी १८७७ को मेरठ पधारे। वहां एक दुरभिमानी निद्धी नामक पण्डित दलबल सहित स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आया, किन्तु आरम्भ में ही उसकी घिग्घी बंध गई और लज्जित होकर चला गया।

सहारनपुर में धर्मोपदेश

१५ फरवरी को स्वामीजी सहारनपुर आये और पनचक्की के पास शिवालय में ठहरे। अम्बहटानिवासी मुंशी चण्डीप्रसाद के प्रश्नों के उत्तर में स्वामीजी ने जो वचन कहे उनका सार इस प्रकार है — 'वेदशास्त्रानुसार एक ईश्वर की ही उपासना करनी चाहिये। सत्यव्यवहार से जीविका करनी चाहिये। पुनर्जन्म अवश्य होता है। स्वर्गनरक सर्वत्र हैं। सृष्टि की रचना करना ईश्वर का स्वभाव है। २४ वर्ष से पूर्व पुरुष और १६ वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह अनुचित है। विधवा पुनर्विवाह कर सकती है। अन्य-धर्मियों को पश्चात्तापपूर्वक शुद्ध करके वापिस वैदिकधर्मी बना लेना चाहिये। ब्रह्मा को चार वेद कण्ठाग्र थे, मूर्खों ने इस पर उसे चार मुख वाला मान लिया। वर्णव्यवस्था गुणकर्मानुसार होना उचित है। दीपावली आदि पर्व युक्तिसंगत ढंग से मनाने चाहियें। स्त्रियों को भी अवश्य विद्या पढ़ानी चाहिये। पर्दाप्रथा मुसलमानी काल की देन है और बुरी है। जन्मपत्र बनाना मात्र ठगी के लिये है।'

स्थानीय चित्रगुप्त-मन्दिर में स्वामीजी के 'आर्य कौन और कहां हैं, सत्य और सृष्ट्युत्पत्ति' इन विषयों पर तीन व्याख्यान हुए। सारा मन्दिर श्रोताओं से खचा-खच भर जाता था। फिर स्वामीजी के आवासवाले शिवालय में व्याख्यान हुए। कुछ दिन बाद रामबाग में स्वामीजी का निवास हुआ और वहां व्याख्यान हुए। प्रसिद्ध

भागवती पण्डित बलदेव व्यास और साधु दीवानदास ब्राह्मणों के उकसाने पर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आये, पर अल्प समय में ही परास्त हो गये ।

चांदापुर में स्वामीजी को बुलाने का उद्देश्य

स्वामीजी सहारनपुर से १३ मार्च को शाहजहांपुर और १५ मार्च को चांदापुर पधारे । चांदापुर के जमीन्दार मुंशी प्यारेलाल और मुक्ताप्रसाद दोनों सगे भाइयों ने 'सत्य ईश्वरीय धर्म कौन सा है ?' इसका निर्णय करने के लिये सार्वजनिक रुप से सब धर्मों की एक सभा करने का निश्चय किया । इसका नाम 'मेला ब्रह्मविचार' रखा । देवबंद के मौलवी मुहम्मदकासिम को इस्लाम के, बरेली के पादरी जे०टी० स्कॉट को ईसाई मत के और स्वामी दयानन्द सरस्वती को आर्यधर्म के प्रतिनिधि के रूप में निमन्त्रित किया गया । इन धर्मों के अन्य उपदेशकों को भी आमन्त्रित किया गया । सभी के आवास-भोजनादि की व्यवस्था की गई । जनसाधारण के लिये खाने पीने की दुकानें भी अन्य मेलों के समान लग गई ।

कबीरपन्थ की समालोचना

मेला आरम्भ होने के पूर्व १८ मार्च को रात्रि में मुंशी प्यारेलाल और बाबू लेखराज ने स्वामीजी के समक्ष कबीरपन्थ का पक्ष ग्रहण करते हुए 'कबीर' शब्द को ईश्वर का वाचक, कबीरवाणी को ईश्वरीय पुस्तक और सुरत ध्यान को उपासनाविधि बताया । जिनका स्वामीजी ने सप्रमाण खण्डन करते हुए कहा कि 'बड़े' का वाचक होने से (अरबी भाषा के शब्द) 'कबीर' को ईश्वर का नाम मानें तो 'सबसे बड़े' का वाचक होने से (अरबी भाषा का ही शब्द) 'अकबर' भी ईश्वर का उससे उत्तम नाम क्यों न हुआ । फिर कबीर में ही क्या विशेषता रही । ईश्वरीय ज्ञानपुस्तक का सर्गारम्भ में होना उचित है, अतः वेद ही ईश्वरीय पुस्तक है । जीव और ईश्वर एक नहीं हैं । 'बीजकसार' में यदि जीव को ईश्वर माना गया है, तो वह भी युक्ति और प्रमाण के विरुद्ध है । 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि उपनिषदीय वाक्यों को प्रकरण मिलाकर विचारें तो इनसे नवीनवेदान्तियों द्वारा किया गया अर्थ नहीं निकलता ।

ध्यान के लिये बाह्य साधनों का खण्डन

एक सज्जन के प्रश्न के उत्तर में ध्यान के हेतु चन्दन का चिह्न बनाना, कान में अंगुलि देकर अनहद शब्द सुनना, माला फेरना, गिनती से जप करना और महन्त या गुरु में विश्वास करना आदि को सप्रमाण अनुचित बताते हुए "सत्यग्रहण, असत्य-त्याग, प्रीतिपूर्वक व्यवहार, धर्मपूर्वक धनार्जन तथा परोपकार करते हुए ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना करने से ईश्वर की उपासना में मन लगता है" ऐसा स्वामीजी ने उपदेश दिया ।

मेला चांदापुर की सभा के प्रस्तावित विषय

ता० १९ मार्च के प्रातःकाल एक बैठक में सभा के नियम निर्धारित करके निम्न० पांच विषयों पर सभा होगी ऐसा निश्चय हुआ । १. परमेश्वर ने जगत् को किस वस्तु से, कब और किसलिये रचा ? २. ईश्वर सर्वव्यापक है वा नहीं ? ३. ईश्वर न्यायकारी व दयालु किस प्रकार है ? ४. वेद, बाइबल और कुरान के ईश्वरीय वाक्य होने में क्या प्रमाण है ? ५. मुक्ति का स्वरूप और उसकी प्राप्ति के उपाय ।

पहले निश्चय हुआ था कि सभा कम से कम पांच दिन तक हो, किन्तु पादरियों की जिद्द से दो ही दिन सभा हुई और पांच में से प्रथम और पञ्चम इन दो बिन्दुओं पर ही विचार विमर्श हुआ और वह भी अपूर्ण ।

मेला चांदापुर में सत्यधर्मविचार-सभा

ता० १९ मार्च को दोपहर १ बजे आरम्भ हुई सभा में संयोजक मुंशी प्यारेलाल द्वारा आरम्भिक स्वागतात्मक भाषण देने के पश्चात् प्रतिनिधियों की संख्या के विषय में भारी वादविवाद के बाद पांच मौलवियों और पांच पादरियों का निश्चय हुआ । आर्यधर्म की ओर से स्वामीजी ने स्वयं का और मुंशी इन्द्रमणि का ही नाम प्रस्तुत किया । मौलवियों ने आर्यों में फूट डालकर तमाशा देखने की भावना से जबरदस्ती पं० लक्ष्मीदत्त शास्त्री को भी आर्यधर्म-प्रतिनिधि बनाना चाहा, पर स्वामीजी की तर्कमय दृढ़ता के कारण उनके हस्तक्षेप की कुचाल चल न सकी ।

तत्पश्चात् मौलवियों और पादरियों में ही परस्पर कुरान और बाइबिल की उच्चता-निम्नता, मुहम्मद और ईसा में से कौन असली पैगम्बर आदि विषयों में ही विवाद होता रहा और इसी में सन्ध्यासमय हो जाने से उस दिन की सभा समाप्त हो गई ।

अगले दिन २० मार्च १८७७ को प्रातः ७.१/२ बजे आरम्भ हुई सभा में प्रथम विषय (= ईश्वरने जगत् किस वस्तु से, कब और क्यों बनाया ?) पर चर्चा आरम्भ हुई । पादरी स्काट ने कहा 'ईश्वरने जगत् हमारे सुख के लिये बनाया और अभाव से भावरूप जगत् बनाया, पर कब बनाया यह पता नहीं ।' मौलवी मुहम्मद कासिम ने कहा 'खुदा ने अपने वजूदे खास से दुनिया प्रकट की और सब वस्तुएँ मनुष्य के लिये बनाई हैं ?'. स्वामीजी ने इन दोनों की मान्यताओं की आलोचना करते हुए घड़े के दृष्टान्त से बताया कि प्रत्येक वस्तु के तीन कारण होते हैं — निमित्त कारण, उपादान कारण और साधारण कारण '। सो जगत् का निमित्त कारण ईश्वर, उपादान कारण प्रकृति और साधारण कारण दिशा, काल आदि हैं । अभाव से भाव कभी नहीं बन सकता । ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों अनादि नित्य हैं । ईश्वर ने जगत् एक अरब छियानवें करोड़ आठ लाख बावन हजार नौ सौ छिहत्तर वर्ष पूर्व बनाया । जिसका प्रमाण ज्योतिषग्रन्थों में और परम्परा से बोले जा रहे संकल्प –

पाठ में मिलता है। ईश्वर ने जगत् जीवों के कर्मों का फल भोगवाने हेतु, उन्हें सांसारिक सुख प्रदान कराने हेतु और मोक्षप्राप्ति के साधन प्राप्त कराने हेतु बनाया है। इसके साथ ही ईश्वर में जो अनन्त विद्या, बल, और सामर्थ्य आदि हैं, उन्हें सफल करने हेतु भी वह जगत् की रचना करता है। जगत् की रचना करना उसका स्वभाव है। स्वामीजी के कथन पर पादरियों और मोलवियों ने जो जो आक्षेप किये उन सबके स्वामीजी ने तुरत यथार्थ उत्तर दे दिये। तब ईसाइयों ने कहा कि इस प्रश्न का स्वामीजी सहस्र प्रकार से उत्तर दे सकते हैं और हम सब मिलकर भी उनको निरुत्तर नहीं कर सकते, इसलिये इस प्रश्न पर और विचार करना व्यर्थ है।

मुक्ति का स्वरूप और उसकी प्राप्ति के साधन

दोपहर बाद पुनः आरम्भ हुई सभा में समय-अल्पता के कारण सर्वसम्मति से पांचवें प्रश्न (= मुक्ति का स्वरूप और उसकी प्राप्ति के उपाय) पर विचार करने के निर्णय होने पर सर्वप्रथम स्वामीजी ने कहा, कि सब दुःखों से छूटकर सच्चिदानन्द परमेश्वर को प्राप्त होकर जीव का परान्त काल तक आनन्द में रहना और जन्म-मरण आदि दुःख-सागर में न गिरना ही मुक्ति है। मुक्ति के साधन मुख्य छः हैं - १. उत्साह-आनन्द-निर्भयता-जनक जो सत्य है उसका आचरण करना २. ईश्वरीय वेदविद्या को पढ़कर ज्ञान की उन्नति करना, ३. सत्पुरुषज्ञानियों का संग करना, ४. योगाभ्यास, ५. ईश्वर की स्तुति और ईश्वरीय गुण आदि का विचार करना, ६. ईश्वर-प्रार्थना। स्वामीजी ने अपने व्याख्यान पर उठाई गई आपत्तियों का समाधान करते हुए शैतान के द्वारा आदम को बहकाया जाना, स्वर्ग में प्रवेश का नाम मुक्ति, पैगम्बर के सहयोग के बिना मुक्ति की अप्राप्ति और ईश्वर जो चाहे सो करे इत्यादि इस्लाम और ईसाइयत की भ्रम पूर्ण बातों का खण्डन किया। स्वामीजी बोल ही रहे थे कि नमाज के वक्त होने की बात कहकर मौलवी सभा से चले गये। पर थोड़ी देर बाद मौलवी और पादरी अलग अलग खड़े होकर जनता में अपने अपने धर्म का प्रचार करने लग गये और किसी ने अफ़वाह फैला दी कि मेला समाप्त हो गया।★

स्वामीजी ने रात्रि में चर्चा हेतु आये पादरी स्काट को आवागमन की सत्यता को समझाया और उसके द्वारा ईसाइयों को भी आर्य मानने की बात कहने पर स्वामीजी ने कहा कि आर्य श्रेष्ठ धर्मात्मा को कहते हैं, पर बाइबिल के अनुसार ईसा अपने शिष्यों में भी राई भर विश्वास नहीं मानता था, तो आप लोगों में कैसे सम्भव है। उस पर पादरी निरुत्तर हो गया।

मेला-संयोजक मुंशी प्यारेलाल ने अनहत शब्द और अजपाजाप आदि के विषय में स्वामीजी से वार्तालाप किया तो उसे विश्वास हो गया कि स्वामीजी मात्र महाविद्वान् ही नहीं, अपितु महान् योगी भी हैं।

★ मेला चांदापुर का पूरा विवरण 'सत्य-धर्म-विचार मेला चांदापुर' नाम से छपी पुस्तक में पठनीय है।

शाक्तों द्वारा धोखे से स्वामीजी की बलि चढ़ाने की कुचेष्टा

चांदापुर के निवासकाल में म० बख्शीराम और मुंशी इन्द्रमणि के कथनानुसार स्वामीजी ने स्वजीवन की एक घटना सुनाई कि एकाकी भ्रमण के समय एक बार मुझे दुर्गापूजक शाक्त-बहुल स्थान में जाना पड़ा। लोगों ने सेवा करके मुझे वहां रोक लिया। एक दिन अत्यन्त आग्रह करके वे दुर्गामूर्ति दिखाने के बहाने मुझे मन्दिर में ले गये। वहां मेरा बलिदान चढ़ाने के उद्देश्य से मुझे मूर्ति के आगे सिर झुकाने को कहा। मेरे द्वारा मना करने पर पहले से तैयार लोगों ने तलवार, छुरी और कुल्हाडे से मेरे ऊपर आक्रमण कर दिया। तब मैं ईश्वरकृपा से अपने बाहुबल, फुर्ती और सूझ के सहारे मन्दिर के आंगन की दीवार फांदकर जंगल में भागा और दिन भर बीहड़ जंगल में छिपकर अपने प्राण बचा सका। तब से फिर कभी मैंने शाक्तों का विश्वास नहीं किया।

चांदापुर आये मौलवियों ने शाहजहांपुर पहुंचकर मुंशी इन्द्रमणि को वहां आकर शास्त्रार्थ करने को लिखा, किन्तु जब स्वामीजी और मुंशी इन्द्रमणि शाहजहाँपुर पहुंचे तो किसी ने शास्त्रार्थ का नाम भी न लिया।

लुधियाना में सात व्याख्यान और ईसाइयों के आक्षेपों का उत्तर

स्वामीजी शाहजहांपुर से सहारनपुर ठहरते हुए ता० ३१ मार्च १८७७ ई० को लुधियाना पहुंचे और वंशीधर वैश्य के बाग में ठहरे तथा कन्हैयालाल अलखधारी के अतिथि बने। 'सात दिन निरन्तर व्याख्यान और आठवें दिन शंका-समाधान होगा' इस घोषणा-अनुसार जटमल खजांची के घर स्वामीजी के व्याख्यान हुए। कोई विशेष शंकाएँ नहीं की गईं। पादरी बेरी, जुडीशियल असि०कमि० मि० कास्टीफन और इंस्पेक्टर जनरल पुलिस (पंजाब) भी स्वामीजी से मिलने आये। मि० स्टीफन द्वारा श्रीकृष्ण के ऊपर बुरे कर्म करने का आरोप लगाने और कृष्णचरित की बातों को बुद्धि से परे होने की बात कहने पर स्वामीजी ने श्रीकृष्ण पर दुष्कर्मों के आरोपों को पुराणों की गप्पें बताया और बुद्धि-विपरीत बातों की तो बाइबिल की ईश्वर के कबूतर रूप में मनुष्य पर उतरने की बात से तुलना करने को कहा। जिसे सुनकर स्टीफन चुप हो गये। स्टीफन ने अपने बंगले पर भी अनेक विषयों पर स्वामीजी से चर्चा की। स्टीफन प्रसन्न हुए और वेदभाष्य के ग्राहक बने तथा वेदभाष्यार्थ सहायता भी की।

स्वामीजी के उपदेश से ब्राह्मण ईसाई न बना

एक संस्कृतज्ञ रामशरण गौड़ एक घटना-वश ईसाई कन्याओं को पढ़ाने हेतु लुधियाना में छः मास से पादरियों के पास नौकरी पर था। पादरियों ने उसे बहला फुसलाकर ईसाई बनने को तैयार कर लिया और बपतिस्मा की तारीख भी तय कर दी थी। किन्तु इसी बीच स्वामीजी के लुधियाना-प्रचार-प्रवास के समय स्वामीजी द्वारा समझाने से वह ईसाई नहीं बना और ईसाईयों की नौकरी भी उसने छोड़ दी।

पुनर्जन्म की शंका पर सटीक उत्तर

एक ईसाई ने पुनर्जन्म पर शंका की तो स्वामीजी ने कहा की मृत्यु के बाद पुनः शरीर धारण करने को पुनर्जन्म कहते हैं। सो पुनर्जन्म न हो तो बाइबिल में वर्णित स्वर्ग में मिलने वाले सुखों का भोगना कैसे सम्भव होगा? इस पर ईसाई निरुत्तर हो गया। एक दिन स्वामीजी ने भूतप्रेत और जादू का खण्डन करते हुए आमने सामने की दो ताकों में रखे दीपकों में से एक को बुझाने पर दूसरे के अपने आप जल उठने का खेल दिखाया और कहा कि यह विद्या की बात है, भूत या जादू कोई वस्तु नहीं है।

स्वामीजी द्वारा लाहौर में धर्मप्रचार

लुधियाना से स्वामीजी ता० १९ अप्रैल १८७७ को लाहौर पधारे। स्वामीजी के निमन्त्रणकर्ता ब्रह्मसमाज तथा सत्सभा के कुछ सभासद, पं० मनफूल और मुंशी हरसुखराय आदि रेल्वे स्टेशन पर स्वागतार्थ उपस्थित थे। स्वामीजी को दीवान रतनचंद दाढ़ीवाले के बाग में ठहराया गया। स्वामीजी के भोजनादि का प्रबन्ध ब्रह्मसमाजियों ने चन्दे द्वारा स्वयं किया। स्वामीजी ने २५ अप्रैल को हुए अपने प्रथम व्याख्यान में वेद का अनादित्व, प्रत्येक सर्गारम्भ में चार ऋषियों के हृदय में ईश्वर द्वारा वेदों का प्रकटत्व, अनेक विद्याओं से युक्त वेदों की ११२७ शाखाएँ, ज्ञान-कर्म-उपासना रूप वेदों के मुख्य तीन विषय, विद्वानों का ही नाम देव, हवन के लाभ, यजुर्वेद २६.२ के अनुसार ईश्वर द्वारा मनुष्य मात्र को वेदाधिकार, वेदोक्त अलंकारवर्णनों का पुराणों द्वारा मिथ्या कहानी गढ़ना आदि विषयों पर अपने विचार प्रकट किये। दूसरे व्याख्यान में स्वामीजी ने वर्णव्यवस्था गुणकर्मानुसार, छुआछूत की अवैदिकता, बालविवाह की शास्त्रविरुद्धता और हानिकारकता, सामान्यजनों में विधवाविवाह का औचित्य और मूर्तिपूजा की अवैदिकता आदि विषयों पर प्रकाश डाला।

'राजा को प्रसन्न करूँ अथवा वेदोक्त ईश्वराज्ञा का पालन?'

एक दिन पं० मनफूल ने कहा कि स्वामीजी यदि आप मूर्तिपूजा का खण्डन

न करें तो हिन्दू भी आपसे अप्रसन्न नहीं होंगे। महाराजा जम्मू-काश्मीर भी आपसे प्रसन्न हो जायेंगे। स्वामीजी ने कहा कि मैं महाराजा को प्रसन्न करूँ अथवा ईश्वरीय आज्ञा का पालन करूँ जो कि वेदों में अंकित है।

स्वार्थसाधक न दिखने पर आश्रयदाताओं का स्वामीजी से असहयोग

ब्रह्मसमाजियों ने जब देखा कि स्वामीजी हमारे समाज के सदस्य नहीं बनेंगे और ये तो हमारी भी कुछ बातों की आलोचना करते हैं, तो दो सप्ताह बाद उन्होंने स्वामीजी के भोजनादि की व्यवस्था से हाथ खींच लिया और अब तक किये प्रबन्ध के पैसे भी स्वामीजी से ले लिये। उधर स्वार्थी पौराणिक-दल ने पं० भानुदत्त और हरप्रसाद के माध्यम से फिल्लौरनिवासी पं० श्रद्धाराम द्वारा स्वामीजी के विरुद्ध व्याख्यान दिलवाने पर भी जब स्वामीजी के वेदोपदेश का कार्य और उसमें श्रोताओं का आना बन्द न हुआ, तो खीजकर दीवान रतनचंद को बहकाया और उनके बाग से स्वामीजी को निकलने पर मजबूर कर दिया।

एक सभ्य मुसलमान की अद्वितीय उदारता

जब ब्रह्मसमाजियों ने और पौराणिकों ने स्वामीजी से असहयोग कर दिया तो खान बहादुर डॉक्टर रहीमखां ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक अपनी कोठी स्वामीजी के आवास के लिये दे दी। इसी में स्वामीजी धर्मोपदेश और शंकासमाधान भी करने लगे।

एक दिन शंकासमाधानार्थ आये संस्कृतज्ञ पादरी हूपर से संस्कृत में बोलते हुए स्वामीजी ने कहा कि "अश्वमेध का अर्थ न्यायपूर्वक राष्ट्र का पालन करना और गोमेध का अर्थ अन्न, इन्द्रियों, अन्तःकरण तथा पृथ्वी आदि को पवित्र करना है। वैदिक जातिभेद गुणकर्मानुसारी है। यदि अन्य धर्मावलम्बी भी ब्राह्मण के गुणकर्मस्वभाव को वास्तव में धारण कर लें, तो वे भी ब्राह्मण कहला सकते हैं।"

वेदभाष्य-सहायतार्थ सरकार से की गई अपेक्षा विफल

स्वामीजी ता० १४ मई १८७७ को पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर से (सेक्रेटरी मि० ग्रिफिथ के माध्यम से) मिलने गये और उन्हें स्वरचित वेदभाष्य-प्रकाशनार्थ सरकारी सहयोग के लिये और उक्त वेदभाष्य को सरकारी कॉलेजों में पढ़ाने के लिये प्रेरणा की। ले० गवर्नर ने स्वामीजी से तदर्थ एक पाठविधि बनाकर भेजने का अनुरोध किया। स्वामीजी ने तदनुसार एक पाठविधि बनाकर उन्हें भेजी भी थी, पर परिणाम कुछ न निकला। स्वामीजी ने एक पत्र भी ले० गव० को लिखा था।

आर्यसमाज लाहौर के कुछ सदस्यों द्वारा भी पीछे २५ अगस्त १८७७ को एक पत्र पंजाब सरकार को भेजा गया, जिसमें निम्न० १ हिन्दुओं द्वारा वेदों और स्वामीजी

के वेदभाष्य की विशेषता पर प्रकाश डाला गया था १. यदि भारत का वाङ्मय नैसर्गिक रीति पर चले तो अवश्यमेव वह वेदों से आरम्भ होगा और इसलिये वेदों का प्रचार अत्यन्त आवश्यक है । २. इस वेदभाष्य के प्रकाशित होने से जो खोज का भाव उत्पन्न होगा, उससे उन्नति में सहायता होगी । ३. वेदविद्या का प्रसार हिन्दू मस्तिष्क को मिथ्या विश्वास और अविद्वान्-ग्राह्य हठ से मुक्त करेगा । ४. स्वामी दयानन्द का भाष्य बड़े प्रबल प्रमाणों की भित्ति पर है, जिन प्रमाणों को योरोपीय विद्वान् भी स्वीकार करते हैं, यद्यपि वे उन्हें अभी तक काम में नहीं ला रहे । क्योंकि स्वार्थपरायण ब्राह्मणों और भ्रान्तिपूर्ण ज्ञान रखने वाले योरोपीय विद्वानों से सम्प्रति निष्पक्ष सम्मति मिलने की आशा नहीं है, इसलिये इस दशा में उक्त भाष्य को परीक्षा का अवसर मिलना चाहिये । इन बिन्दुओं के साथ ही दो मन्त्रों के, योरोपीय छः विद्वानों द्वारा किये गये परस्पर विपरीत अर्थों के उदाहरण द्वारा उनके अधूरे ज्ञान को भी दर्शाया गया था । ले० गव० की आज्ञा से वेदभाष्य की दो प्रतियां खरीदी गईं और कुछ सरकारी विद्वानों से राय लेने के बाद ले० गव० की ओर से ता० १४ नवम्बर १८७७ के पत्र के द्वारा स्वामीजी को बताया गया कि आपका वेदभाष्य प्रकाशन-विषय में सहायता पाने का अधिकारी नहीं है ।

वेदभाष्य पर किये सब के आक्षेपों के उत्तर दिये

कुछ सूत्रों से जब स्वामीजी को ज्ञात हुआ कि किन किन विद्वानों ने मेरे वेदभाष्य के विरुद्ध सरकार को सम्मति भेजी है, तो स्वामीजी ने मिस्टर ग्रिफिथ (प्रिन्सि० संस्कृत कॉलेज, बनारस), पं० गुरुप्रसाद (ओरियण्टल कॉलेज, लाहौर), पं० हृषीकेश (ओरि० कॉ०, लाहौर) और पं० भगवान्दास (सं० कॉलेज, लाहौर) के समस्त आक्षेपों का सप्रमाण विस्तृत उत्तर दिया । जिसका अंग्रेजी अनुवाद करवाकर आर्यसमाज लाहौर द्वारा सरकार को भेजा गया । सुनते हैं कि सरकार ने इस निवेदनपत्र को जिन जिन विद्वानों के पास भेजा, पौराणिक संस्कारों में आकण्ठ डूबे हुए और स्वार्थी तेजोद्वेषी उन उन विद्वानों ने वेदभाष्य के विरुद्ध सम्मति दी और फलतः वेदभाष्य-प्रकाशनार्थ सरकारी सहायता न मिल सकी ।

स्वामीजी से संस्कृत पढ़ने के लिये कॉलेज के अन्य साथियों के साथ आनेवाले एक छात्र गणपतिराय से स्वामीजी ने कहा, था कि तुम्हारी आयु तीस वर्ष के अन्दर है, अब तुम विवाह मत करना । घरवालों ने फिर भी उसका विवाह कर दिया । २८ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई । मृत्यु से पूर्व उस युवक ने यह बात बताई थी ।

स्वामीजी का धार्मिक-साहित्य-सम्बन्धी गम्भीर ज्ञान

पं० शिवनारायण अग्निहोत्री ने सामवेद में उल्लू की कहानी होने की बात

कही। स्वामीजी ने उसका निषेध किया और सामवेद देकर कहा कि निकालकर दिखाइये। पण्डित चुप हो गये। एक पण्डित ने एक श्लोक पढ़कर कहा कि मनुस्मृति में मूर्तिपूजा का विधान है। स्वामीजी ने मनुस्मृति देकर कहा कि अपना श्लोक इसमें से निकालिये। अन्त में पण्डित को मानना पड़ा कि वह श्लोक मनुस्मृति का नहीं था। एक दिन एक पण्डित ने एक श्लोक पढ़कर कहा कि देखो योगवासिष्ठ में मूर्तिपूजा का विधान है। स्वामीजी ने कहा कि यद्यपि हम योगवासिष्ठ को प्रामाणिक नहीं मानते, तथापि तुम्हारे इस श्लोक में आधा योगवासिष्ठ का है और आधा किसी अन्य मनुष्य का है। योगवासिष्ठ मंगाकर देख ने पर स्वामीजी का कथन सत्य निकला।

सर्वहित में जुटे व्यक्ति को कष्ट पहुंचाने वाले अनेक जन

डॉ० रहीमखां की उपर्युक्त कोठी के निवासकाल में स्वामीजी ने अपने जीवन की कुछ घटनाएँ बताई थीं। एक बार गंगातट पर घने जंगल में विचरते हुए मार्ग में सामने से आते हुए एक सिंह को देखकर भी जब स्वामीजी आगे बढते ही गये तो स्वामीजी के समीप आने पर सिंह स्वयं ही जंगल में एक तरफ घुस गया। एक बार जब स्वामीजी एक पर्णकुटी में ठहरे हुए थे, तो समीप ही डेरा लगाये हुए साधुओं ने स्वामीजी के प्राणहरण की भावना से उनकी कुटिया में आग लगा दी। ज्ञात होने पर स्वामीजी छप्पर उठाकर बाहर निकल आये। एक बार काशी में एक ब्राह्मण द्वारा भेंट किये गये पान के खा लेने पर उसमें लगाये विष का ज्ञान हुआ, तो स्वामीजी ने वमन करके विष को शरीर से बाहर निकाला।

लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना

स्वामीजी के पाखण्डखण्डन और धर्मोपदेश के परिणामस्वरूप अनेक व्यक्तियों ने मूर्तिपूजा छोड़ दी और वैदिक सन्ध्योपासना आरम्भ कर दी। लोगों में उत्साह जगा और स्वामीजी के आदेशानुसार वैदिकधर्म-प्रसारार्थ डॉ० रहीमखां की कोठी में ही ता० २४ जून १८७७ को लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना हो गई। बम्बई-आर्यसमाज की स्थापना के समय जो नियम बने थे, उनका संक्षेप किया गया और कुल दस नियम व उद्देश्य निर्धारित किये गये, जो आज तक प्रचलित हैं। आर्यसमाज का दूसरा अधिवेशन 'सत्सभा' नामक संस्था के भवन में हुआ। पीछे अनारकली मुहल्ले में किराये पर लिये एक मकान में अधिवेशन होने लगे। सदस्य बढ़ते गये और जुलाई के अन्त तक तीन सौ की संख्या हो गई।

'मेरा उद्देश्य गुरुडम चलाने का नहीं'

बम्बई के समान लाहौर में भी शारदाप्रसाद भट्टाचार्य ने अन्य सदस्यों की सहमति से एक प्रस्ताव रखा कि स्वामीजी को आर्यसमाज का संरक्षक अथवा अधिनायक

बनाया जाय। इसका स्वामीजी ने यह कहकर विरोध किया कि इसमें गुरुडम की गंध आती है, मेरा उद्देश्य गुरुडम के पाखण्ड को उखाड़ने का है, नया गुरुडम चलाने का नहीं। जब सदस्यों ने आग्रह किया कि आप 'परम सहायक' का पद तो स्वीकार कर लीजिये, तो स्वामीजी ने कहा कि परम सहायक तो परमेश्वर ही है।

'ईश्वरोपासना के मध्य में किसी व्यक्ति का सम्मान करना उचित नहीं'

एक दिन आर्यसमाज के अधिवशेन के अन्तर्गत जब ईश्वरोपासना हो रही थी, तब स्वामीजी वहां पहुंचे। स्वामीजी को आता देखकर सदस्य उनके सम्मानप्रदर्शनार्थ खड़े हो गये। उपासना-समाप्ति पर स्वामीजी ने उपदेश में कहा कि "ईश्वरोपासना का समय तो ध्यान में मग्न होने का है, उस समय कोई कितना ही बड़ा मनुष्य क्यों न आ जाय, कभी उठना नहीं चाहिये। क्योंकि परमेश्वर से बड़ा कोई नहीं है"। वाह दयानन्द ! निःस्पृहता और निरभिमानिता की पराकाष्ठा !!

स्वामीजी के लाहौर-प्रवास पर अखबारों की सम्मतियाँ

कलकत्ते के अंग्रेजी दैनिक 'इण्डियन मिरर' के २२,२३ जून के अङ्क में छपा था, कि लाहौर में पं० श्रद्धाराम फिल्लोरी के नेतृत्व में स्वार्थी ब्राह्मणों ने मात्र स्वामी दयानन्द के धर्मोपदेश का विरोध करने के लिये ही 'सनातन-धर्मरक्षिणी सभा' बनाई है और लोगों को स्वामी दयानन्द के सत्संग में जाने से रोकने के लिये वे हर प्रकार के घृणित उपाय भी कर रहे हैं, फिर भी शिक्षित श्रोताओं के मन स्वामीजी के कथन की सत्यता स्वीकार कर रहे हैं।

१ जुलाई के 'बिरादरे हिन्द' (लाहौर) अखबार ने लिखा, कि स्वामी दयानन्द के विचार विस्तृत और परिपक्व हैं। अंग्रेजी शिक्षा से अछूते होते हुए भी मात्र संस्कृत और वैदिक-साहित्य-मनन के आधार पर ही दयानन्द के विचार आश्चर्यजनकरूप से अति उदार हैं। उनमें जातीय समवेदना और देशसुधार का भारी उत्साह है। उनसे देशोन्नति होने की बड़ी आशा है। स्त्रियों की शिक्षा के वे पूर्ण पक्षपाती हैं। जाति से अविद्या, हठ, दुराग्रह को दूर कर विद्या का प्रचार करके विवेक जागृत करना और जाति में आदर्श एकता स्थापित करना ही दयानन्द का अन्तिम ध्येय है। २८ जुलाई को लाहौर के 'कोहेनूर' अखबार में छपा था, कि स्वामी दयानन्द के सदुपदेश से लोगों में जातीय-सहानुभूति उत्पन्न हुई है और २४ जून को लाहौर में आर्यसमाज स्थापित हो गया है, जिसके तीन सौ सदस्य बन चुके हैं। आर्यधर्म, संस्कृति और वैदिक विद्या की उन्नति और प्रचार करना ही इस समाज का वास्तविक उद्देश्य है। इसी उद्देश्य से एक संस्कृत पाठशाला भी खोली गई है, जिसमें एक सौ मनुष्य शिक्षाग्रहण कर रहे हैं।

अमृतसर में धर्मप्रचार

लाहौर से स्वामीजी ५ जुलाई १८७७ ई० को अमृतसर पधारे और ट्रिब्यून (लाहौर) के संस्थापक सरदार दयालसिंह मजीठिया के प्रबन्ध से मियां मुहम्मदजान रईस की कोठी में ठहरे। इसी कोठी में स्वामीजी के व्याख्यान होने लगे। स्वामीजी के दिव्य ज्योतिर्मय और भव्य शरीर के दर्शन करके और उनके उपदेशामृत का पान करके सैंकड़ों और फिर हजारों की संख्या में लोग निहाल होने लगे। लोगों की शङ्काएँ दूर होने लगीं। पण्डित लोग भी शास्त्रचर्चा-हेतु आने लगे। घण्टाघर पर भी स्वामीजी के कई व्याख्यान हुए। स्वामीजी के प्रवचनों को सुनकर अनेक लोगों की मूर्तिपूजा से आस्था उठ गई। उन्हें विश्वास हो गया कि पत्थर को ठाकुर कहना और अजन्मा परमेश्वर का जन्म बताना वेदशास्त्र-विरुद्ध है।

बीच में एक दिन के लिये स्वामीजी ता० १२ जुलाई रविवार को लाहौर गये और आर्यसमाज-अधिवेशन में उन्होंने 'धर्म की आवश्यकता' और 'आर्यसमाज के लाभ' विषय पर व्याख्यान दिया।

अमृतसर में आर्यसमाज की स्थापना

११ अगस्त तक हुए स्वामीजी के सदुपदेशों के परिणामस्वरूप ता० १२ अगस्त १८७७ को मियां मुहम्मदजॉन रईस की कोठी में ही आर्यसमाज अमृतसर की स्थापना हो गई और आरंभ में ५० सदस्य बने। कुछ दिन बाद मलबई बुङ्गे के मोहल्ले में एक मकान आर्यसमाज-हेतु ले लिया गया। मनसुखराय नामक व्यक्ति का पुत्र जो किसी भी धर्मगुरु में श्रद्धावान् न हुआ था, स्वामीजी के उपदेश सुनकर संशयरहित हो गया और आर्यसमाज का सदस्य बन गया। उसके द्वारा स्वामीजी से गुरुमन्त्र देने की प्रार्थना करने पर स्वामीजी ने कहा कि गायत्रीमन्त्र ही गुरुमन्त्र है। एक श्रद्धालु पं० तुलसीराम ने बड़ी नम्रता भरे प्रेम से स्वामीजी को घर बुलाकर उनका गुणगान किया और दो रुपये और मिश्री के कूंजे भेट किये तो स्वामीजी ने उन्हें स्वीकार कर लिया। सर टी० माधवराव द्वारा भेंट किये एक सहस्र रुपयों को अस्वीकार करने में और तुलसीराम की छोटी सी भेंट स्वीकार करने में मुख्य कारण, आडम्बररहित निश्छल प्रेममयी श्रद्धा ही प्रतीत होता है।

पौराणिकों ने जब प्रसिद्ध संस्कृतविद्वान् पं० रामदत्त को स्वामीजी से शास्त्रार्थ के लिये बहुत तंग किया, तो वे अमृतसर छोड़कर हरिद्वार जा बैठें। एक दिन लड्डुओं का लालच देकर स्कूल के बालकों से एक मास्टर ने व्याख्यान-समय में स्वामीजी पर ईंट-ढेले फिंकवाये। पुलिस द्वारा पकड़ कर स्वामीजी के पास ले जाने पर बच्चे रोने लगे और असली बात बता दी। दयालु दयानन्द ने उन्हें समझाया, किन्तु साथ ही स्वयं ही उन्हें लड्डू भी खिलाये। एक्स्ट्रा असि० कमिश्नर बिहारीलाल ने स्वामीजी

से एक दिन कहा कि आप के अन्य सब विचार श्रेष्ठ हैं, यदि आप मूर्तिपूजा-खण्डन छोड़ दें तो सब आपके अनुकूल हो जायँ। इस पर स्वामीजी का सदैव की भांति उत्तर था कि 'मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता।' एक दिन वकील गुरुमुखराय के साथ स्वामीजी कमिश्नर साहब मि० परकिंस के निमन्त्रण पर उनसे मिलने गये। हिन्दूधर्म की कच्चाई और पकाई पर बात होने के बाद मि० परकिंस ने पूछा कि आप किस प्रकार के धर्म का प्रचार करना चाहते हैं, तो स्वामीजी ने कहा कि मैं यह चाहता हूं कि लोग वेदों की आज्ञाओं का पालन करें, केवल निराकार अद्वितीय ईश्वर की उपासना करें, शुभगुण धारें और दुर्गुण त्यागें।

अमृतसर में ही स्वामीजी ने १५ अगस्त १८७७ को 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' की रचना की।

गुरुदासपुर में धर्मप्रचार

ता० १८ अगस्त १८७७ को स्वामीजी गुरुदासपुर गये और डॉ० बिहारीलाल के अतिथि बने। स्वामीजी ने यहां 'मूर्तिपूजा, अवतार, ईश्वर, गोरक्षा, आवागमन, श्राद्ध, आर्यावर्त की पुरानी दशा और आर्यों के कर्तव्य' इन विषयों पर व्याख्यान दिये।

वेद में गणेश की मूर्ति और उसकी पूजा का विधान नहीं

यहां के दो प्रतिष्ठित रईस मियां हरिसिंह और मियां शेरसिंह ने पहले स्वामी गणेशगिरि को स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये उकसाया, पर जब वे कथमपि तैयार न हुए, तो उन्होंने दीनानगर से पं० लक्ष्मीधर और पं० दौलतराम को बुलाया। एक दिन जब स्वामीजी का शिवपुराण के खण्डन पर व्याख्यान हो रहा था, तब उपर्युक्त रईस दोनों पण्डितों के साथ आये और शोर मचाने लगे। स्वामीजी तथा अन्य सभ्यों द्वारा समझाने पर भी जब वे न माने, तो उनकी शर्तों के अनुसार ही स्वामीजी ने शास्त्रार्थ करना मान लिया। पण्डितों ने 'गणानां त्वा०' (यजु० २३.१९) मन्त्र द्वारा मूर्तिपूजा सिद्ध करना चाहा। प्रमाण मांगने पर जब पण्डितों ने महीधर-भाष्य की साक्षी दी तो स्वामीजी ने उक्त भाष्य मंगवाकर सिद्ध कर दिया कि इस भाष्य से भी न गणेश की मूर्ति सिद्ध होती है और न ही मूर्तिपूजा। स्वामीजी ने महीधरकृत अश्लील अर्थ का भी खण्डन किया और उसके सत्य अर्थ बताकर उन्हें निरुत्तर कर दिया। तब वे लोग कटुवचनपूर्वक धमकियां देकर चले गये।

गुरुदासपुर में आर्यसमाज स्थापित

एक दिन मौलवी बाकर अली से भी स्वामीजी का आवागमन पर वार्तालाप हुआ। स्वामीजी ने मुसलमानों को हिन्दुओं से भी बड़ा बुतपरस्त (= मूर्तिपूजक)

बताया, क्योंकि वे काबा को पूजते हैं। स्वामीजी के सदुपदेशों के फलस्वरूप गुरुदासपुर में २४ अगस्त को आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

तत्पश्चात् स्वामीजी बटाला होते हुए ता० २६ अगस्त को पुनः अमृतसर पधारे और १३ सितम्बर तक वहां वेदभाष्य का लेखन और धर्मोपदेश करते रहे। एक दिन लाला मुरलीधर द्वारा गुरुमन्त्र देने की प्रार्थना करने पर स्वामीजी ने समझाया कि 'सत्य को ग्रहण करना और असत्य को त्यागना' ही गुरुमन्त्र है। एक दिन पादरी फोरमैन भी धर्मचर्चा-हेतु आये, उसी समय वकील कन्हैयालाल भी आये और श्रद्धापूर्वक दो सौ रुपये भेंट कर गये।

जालन्धर में धर्मप्रचार

ता० १३ सितम्बर १८७७ को स्वामीजी जालन्धर पहुंचे और निमन्त्रणकर्ता सरदार सुचेतसिंह की कोठी में ठहरे। यहां स्वामीजी का प्रथम व्याख्यान 'सृष्ट्युत्पत्ति' पर हुआ, जिसमें 'आरम्भ में प्राणी युवा उत्पन्न होते हैं' इस बात का भी प्रतिपादन किया गया। दूसरा व्याख्यान सरदार विक्रमसिंह के, श्रोताओं से खचाखच भरे गृह पर हुआ। जालन्धर में स्वामीजी के कुल ३५ व्याख्यान हुए।

बग्घी रोककर ब्रह्मचर्य-बल का प्रमाण दिया

स० विक्रमसिंह के गृह पर एक दिन व्याख्यान में स्वामीजी ने कंजरी (=वेश्या) रखने वाले राजाओं को कंजर बताया। उक्त सरदार इस दोष से युक्त थे। एक दिन सरदार विक्रमसिंह ने कहा कि 'सुनते हैं ब्रह्मचर्य से बहुत बल बढ़ता है, पर आप भी ब्रह्मचारी हैं, आप में तो विशेष बल प्रतीत नहीं होता।' उस समय तो स्वामीजी चुप रहे। जब सरदार अपनी बग्घी में सवार होकर जाने लगे, तो स्वामीजी ने पीछे से उस बग्घी का पहिया हाथ से पकड लिया। चाबुक की मार खाकर भी घोड़े आगे न बढ़ सके। सरदार ने जब पीछे देखा तो, ब्रह्मचर्य के बल का प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर वे नतमस्तक हो गये।

मृतक श्राद्ध त्याज्य और जीवित पितरों की सेवा उचित

स्वामीजी के दो व्याख्यान मृतकश्राद्ध-खण्डन और पिता आदि की सेवा के औचित्य पर हुए। 'अग्निष्वात्त' 'अनग्निष्वात्त' आदि वैदिक विशेषण जीवित पितरों के ही हैं। २४ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य वाले को 'पिता', ३६ वर्ष के ब्रह्मचारी को 'पितामह' और ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी को 'प्रपितामह' भी कहा जाता है, यह भी मनुस्मृति से सिद्ध कर दिखाया। पिण्ड की वेदी बनाने उस समय मन्त्रोच्चारण करने से भूत-प्रेत नहीं आते। इसे भी झूठ बताया और कहा कि इससे मक्खी-मच्छर तक भी नहीं उड़ते तो भूतप्रेतों का दूर होना कैसे सम्भव है? स्वामीजी के विरोध में आनरेरी मजिस्ट्रेट पं० रामदत्त ने मृतकश्राद्ध-मण्डन पर व्याख्यान दिया,

पर वे गरुडपुराण आदि की बातें कहते रहे, वेद का प्रमाण न दे सके ।

"पेड़ के नीचे सोये हुए एक व्यक्ति के ललाट पर कौए की बीट से तिलक की आकृति बन जाने और अकस्मात् उसी समय उसकी मृत्यु हो जाने पर, तिलक के चिह्न के कारण यमदूत डर गये और विष्णदूत उसे वैकुण्ठ में ले गये" वैष्णवों की इस कपोलकल्पना का वर्णन करते हुए स्वामीजी ने एक दिन कहा कि तिलक से पुलिस का सिपाही तो डरता नहीं, यमदूत क्या डरेगा ? एक दिन काशीमाहात्म्य का खण्डन करते हुए कहा, कि मन्दिर में जाने अथवा 'नमः शिवाय' कहने से और गङ्गा में अथवा अमृतसर-सरोवर में स्नान करने से पाप नष्ट नहीं होते, अपितु किये पाप का फल भोगने से, सत्याचरण से और तप से पाप छूटते हैं ।

करामातें झूठी और आवागमन सत्य है

२४ सितम्बर १८७७ को मौलवी अहमदहसन से स्वामीजी का 'करामात' (= चमत्कार) और 'आवागमन' (= पुनर्जन्म) पर शास्त्रार्थ हुआ । स्वामीजी ने पैगम्बरों के चमत्कार विषयक वर्णनों को मनघड़न्त बताया । 'आवागमन' पर चर्चा के अन्तराल मौलवी असम्बद्ध और हेत्वाभासी प्रमाण देते रहे । स्वामीजी ने उन्हें समझाया कि द्रव्य उसे कहते हैं जिसमें गुण, क्रिया, संयोग, वियोग होने का स्वभाव हो । परन्तु ये परिच्छिन्न (= एकदेशी) द्रव्य में रहते हैं । जो द्रव्य विभु वा व्यापक हैं, उनमें से किसी में केवल गुण और किसी में गुण एवं क्रिया दोनों होते हैं । जैसे दिशा, काल, आकाश में केवल गुण हैं, क्रिया नहीं और परमेश्वर में गुण और क्रिया दोनों हैं । प्रकृति के कारणरूप में इन्द्रियग्राह्यता न होने मात्र से उसका अभाव नहीं माना जा सकता, जैसे इन्द्रियों से अग्राह्य होने पर भी जीवात्मा और परमात्मा का । अतः प्रकृति के भी नित्य होने से आवागमन पर कोई दोष नहीं आता । स्वामीजी ने यहां एक ईसाई को भी शुद्ध किया था ।

जालन्धर से स्वामीजी १३ अक्टूबर को लाहौर आये और नवाब रजाअली के बाग में ठहरे । एक पादरी और मिशनरी महिला को, धन की अधिकता को जातीय अवनति का कारण बताते हुए, स्वामीजी ने आर्यों के उदाहरण से अंग्रेजों के भावी पतन का संकेत दिया ।

एक पण्डित के प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने बताया, कि वेद में जो भारद्वाज वसिष्ठ आदि नाम आये हैं, वे ऐतिहासिक ऋषियों के नहीं हैं, अपितु मन प्राण आदि के वाचक हैं । वेदों के इन शब्दों को देखकर ही पूर्व के माता-पिता आदि ने अपने पुत्रों के वसिष्ठ आदि नाम रखे थे । 'कस्मै देवाय हविषा' के आधार पर लाट पादरी द्वारा 'वेद के ऋषियों को ईश्वर-विषयक अज्ञान था' ऐसा कहने पर स्वामीजी ने बताया कि यहां 'कस्मै' पद का अर्थ 'सुखस्वरूप ईश्वर के लिये' ऐसा अर्थ है,

न कि 'किसके लिये' ऐसा। ईसाइयों का विशाल साम्राज्य भी ईसाइयों द्वारा वेदोक्त ब्रह्मचर्य, विद्याध्ययन, एकपत्नीव्रत, दूरदेशयात्रा और स्वदेशप्रीति को अपनाने से है, बाइबल पर विश्वास से नहीं। २१ अक्टूबर को स्वामीजी स्थानीय ब्रह्मसमाज के १४ वें वार्षिकोत्सव में भी तीन सौ मनुष्यों के साथ गये।

फिरोजपुर (छावनी) में धर्मप्रचार

स्वामीजी हिन्दू-सभा के प्रधान म० मथुरादास के विशेष निमन्त्रण पर २६ अक्टूबर को फिरोजपुर (छावनी) पधारे। यहां स्वामीजी के आठ व्याख्यान हुए। एक दिन क्लर्क पं० कृपाराम के पूछने पर स्वामीजी ने ईश्वर को आकाशवत् (= सर्वव्यापक) बताया और कहा कि समस्त जगत् उसी के भीतर है। उस समय तो पं० कृपाराम खिसिया गये, पर पीछे जाकर वे आर्यसमाज के सभासद् बन गये। एक दिन नगर के पण्डितों ने कुछ प्रश्न भेजे। स्वामीजी ने तत्काल उनका उचित उत्तर भिजवा दिया। स्वरूपसिंह नामक एक साधनाशील व्यक्ति स्वामीजी के पास योगचर्चा-हेतु आया, तो स्वामीजी ने उसे पात्र जानकर योग के कई रहस्य बताये। फिरोजपुर में आर्यसमाज स्थापित तो हुआ, किन्तु हुआ स्वामीजी के वहां से चले जाने के बाद।

रावलपिण्डी में धर्मोपदेश और आर्यसमाज-स्थापना

ता० ८ नवम्बर को स्वामीजी रईस सरदार सुजानसिंह को पूर्व दिये वचनानुसार रावलपिण्डी आये और पारसी जामास्पजी की नदीतट-स्थित कोठी पर ठहरे। यहीं पर स्वामीजी के मूर्तिपूजा आदि पर व्याख्यान हुए। एक दिन व्याख्यान में कहा, कि हिन्दुओं को ईसाई-मुसलमान आदि के ग्रन्थ पढ़ने चाहियें, जिससे वे विधर्मियों के आक्षेपों का 'जैसे को तैसा' उत्तर दे सकें। इस प्रसङ्ग में जब स्वामीजी ने बाइबिल के 'लूत पैगम्बर का अपनी पुत्री से सम्बन्ध' की बात बताई, तो वहां उपस्थित एक पादरी के 'इसका बाइबिल में उल्लेख नहीं है' कहने पर स्वामीजी ने तत्काल बाइबिल निकालकर उसमें उक्त वर्णन दिखला दिया।

दस दिन बाद स्वामीजी जामास्पजी की कोठी से सरदार सुजानसिंह की कोठी पर चले गये। एक दिन पं० व्रजलाल पांच सौ मनुष्यों की भीड़ के साथ स्वामीजी के आवास पर गये। पं० व्रजलाल तथा अन्य एक पण्डित ने मनघड़न्त श्लोक बोलकर मूर्तिपूजा सिद्ध करने का प्रयास किया, किन्तु वह उसका पता नहीं बता सके। अन्य एक पण्डित का श्लोक इतना अशुद्ध था कि उसके साथी पण्डितों को ही लज्जित होना पड़ा।

महाराजा जम्मू-कश्मीर से भी निमन्त्रण आया था, पर महाराजा के घोर मन्दिरमार्गी होने के कारण उपद्रव की आशंका से स्वामीजी वहां नहीं गये। एक प्रसंग में स्वामीजी ने यहां बताया, कि मारवाड़ का एक राजा १५ सेर रुद्राक्ष धारण करता था और

नित्य ५ सेर मिट्टी के शिवलिंग बनाता था। स्वामीजी के सदुपदेश से उसकी अविद्या दूर हुई और वह काष्ठभार और व्यर्थ के कुम्हारी-कार्य से निवृत्त हुआ।

वेदोक्त गङ्गा, यमुना आदि नाम नाडियों के हैं

एक दिन कनखली महन्त सम्पद् गिरि ने पं० लक्ष्मीराम के द्वारा एक पत्र स्वामीजी के पास भिजवाया, जिसमें ऋग्वेद के 'इमं मे गङ्गे यमुने' मन्त्र द्वारा तीर्थों की सिद्धि की गई थी। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि वेद के गङ्गा आदि नाम शरीर की नाडियों के वाचक हैं। सम्पद् गिरि के पत्र की अशुद्धियां भी साथ लिख भेजीं।

इन्हीं दिनों रावलपिण्डी में आर्यसमाज की स्थापना हुई और भक्त किशनचन्द मन्त्री बने। इनके और लाला गोपीचन्द के अनुरोध पर ही वेदाङ्ग-प्रकाश पुस्तकमाला की रचना हुई।

जेहलम में धर्मोपदेश और आर्यसमाज की स्थापना

रावलपिण्डी से स्वामीजी जेहलम ता० ३१ दिस० १८७७ को पहुंचे और मास्टर लछमनप्रसाद के अतिथि बने। यहां स्वामीजी के व्याख्यान अधिकतर गवर्न० स्कूल के हॉल में हुए। कुछ ईसाई और पादरी स्वामीजी से शास्त्रार्थ-हेतु तैयार हुए पर पीछे ठंडे पड़ गये। स्वामीजी उन दिनों दिन में केवल एक बार भोजन लिया करते थे। दो तीन पण्डित वेदभाष्य लिखने के लिये और एक. अंग्रेजी का जानकार बाबू पत्रव्यवहार के लिये स्वामीजी के साथ रहते थे। कुछ दिन पश्चात् ही जेहलम में आर्यसमाज स्थापित हो गया। आर्यसमाज में अनेक योग्य और विद्वान् पुरुष सम्मिलित हुए। आर्यसमाज के सभासद् बनाने के लिये, लाला गंगाराम को विशेष प्रयत्न करते देखकर स्वामीजी ने उन्हें गले लगा लिया। गानविद्या-विशारद मेहता अमीचन्द भी कुछ वर्षों बाद इसी समाज के सदस्य बने।

'गुजरात' शहर में धर्मप्रचार

जेहलम से स्वामीजी १३ जनवरी १८७८ ई० को पंजाब के एक शहर 'गुजरात' पधारे और जलालपुर जट्टां रोड पर स्थित फतहसर नामक बाग में ठहरे। उस समय वहां पादरियों का ईसाई-धर्म-प्रचार कार्य जोरों पर था। उनका एक हाईस्कूल भी था। पादरी दिन दहाड़े राम, कृष्ण के जीवन पर कटाक्ष करते और वेदों की निन्दा करते थे। हिन्दू कसमसाकर रह जाते पर उत्तर नहीं दे पाते थे। ईसाई-प्रचार से अनेक गुजरातशहरनिवासी हिन्दू ईसाई बन गये थे। ऐसी परिस्थिति में वेदधर्म के तार्किक महोपदेष्टा स्वामी दयानन्द का गुजरातनगर में आगमन अत्युत्तम रहा।

गवर्न० हाई० के पुराने किले में स्थित बोर्डिंग हाउस में स्वामीजी के व्याख्यान होने लगे। एक दिन गवर्न० हाई० के हैडमास्टर मि० बुचानन और संस्कृत टीचर पं० नंदलाल दोनों योजना बनाकर स्वामीजी से सभास्थल पर शास्त्रार्थ करने गये।

मि० बुचानन ने ठिठोली करते हुए स्वामीजी से पूछा कि 'बाबा ! तू इनकी जीविका छीनता है, बदले में इनको क्या देता है ?' स्वामीजी ने कहा कि 'मैं इनको वेद और योगाभ्यास देता हूं।' तत्पश्चात् शव को भूमि में गाड़ने की पुष्टि में मि० बुचानन द्वारा प्रस्तुत किये गये मन्त्र की सही व्याख्या करते हुए स्वामीजी ने सिद्ध किया, कि इससे भी शव को गाड़ना सिद्ध नहीं होता। मि० बुचानन ने अन्य भी ऊटपटांग प्रश्न किये, पर स्वामीजी ने शान्तिपूर्वक सबका समाधान किया।

'सहस्रशीर्षा' और 'चतुरानन'

अन्य दिन स्वामीजी ने पं० नंदलाल को बताया कि 'सहस्रशीर्षा' का अर्थ 'जिसमें प्राणियों के सहस्रों अर्थात् असंख्यात शिर हैं वह परमात्मा' ऐसा है। 'चतुरानन' का अर्थ है 'चारो वेद हैं मुख में जिसके वह अर्थात् चतुर्वेद-व्याख्याता।, पं० होशनाकराय मनुस्मृति के नाम से एक श्लोक के द्वारा मूर्तिपूजा सिद्ध करने लगे तो स्वामीजी ने तुरत कहा, कि यह श्लोक मनुस्मृति का नहीं प्रत्युत विष्णु-पुराण का है जो अप्रामाणिक ग्रन्थ है। इन्हीं पण्डितजी ने पं० नंदलाल की अध्यक्षता में स्वामीजी से न्याय के अन्तर्गत व्याप्ति पर चर्चा छेड़ी। स्वामीजी ने स्वमान्य आर्षग्रन्थों के अन्तर्गत पातञ्जल महाभाष्य से व्याप्ति का लक्षण करके उसमें दोष दिखाने को कहा। पण्डितजी न दिखा सके और शान्त हो गये। पं० होशनाकराय और पं० नंदलाल पीछे जाकर आर्यसमाज के प्रमुख कार्यकर्ता बने। गोस्वामी शब्ददास ने भी स्त्रियों के वेदाध्ययन-अधिकार पर स्वामीजी से चर्चा की।

स्वामीजी के व्याख्यानों से हिन्दू साहसी बने

विद्यार्थी मेहता ज्ञानचन्द (पीछे जो आर्यसमाज के प्रमुख व्यक्ति बने) अपने सहपाठियों के साथ स्वामीजी के दर्शन तथा व्याख्यान श्रवण करके कृतार्थ हो गये। स्वामीजी के व्याख्यानों में वेदधर्म के सच्चे स्वरूप का प्रतिपादन होने से और हिन्दूधर्म के समान ईसाई एवं मुस्लिम धर्म के भी पाखण्डों और बुद्धि-विरुद्ध मन्तव्यों का दिग्दर्शन होने से, सामान्य हिन्दूजनों में और विशेष कर विद्यार्थियों में साहस जागृत हो गया। अब वे ईसाई पादरियों के आक्षेपों का मुंहतोड़ जवाब देने में सक्षम हो गये।

'सत्य जानने पर ही मेरी बात मानो'

स्वामीजी ने अपने आरम्भिक व्याख्यान में कहा कि श्रोता को किसी का प्रवचन सुनकर तुरत आँख मूंदकर उसे नहीं मान लेना चाहिये। सुनकर मनन करके जो वास्तव में सत्य जान पड़े उसी का ग्रहण करना चाहिये। मेरी बात को भी खूब मनन-चिन्तन करके विवेकपूर्वक मानो।

मौलवी ने नमाज छोड़ सन्ध्या करने की प्रतिज्ञा की

यहां स्वामीजी के तीन विशेष व्याख्यान हुए। पहला 'वेदों का महत्त्व और वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक' विषय पर और दूसरा 'ब्रह्मचर्य' पर हुआ। तीसरा व्याख्यान 'सन्ध्या' पर था। उसमें 'ओ३म्' की व्याख्या करते हुए 'सन्ध्या' की विधि बतलाई और गायत्री-मन्त्र की ऐसी सुन्दर व्याख्या की, कि उससे प्रभावित होकर गवर्न० हाई० के फारसी-अध्यापक मौलवी मुहम्मददीन ने भरी सभा में खड़े होकर नमाज छोड़कर नित्य सन्ध्या करने की प्रतिज्ञा की।

उधर स्वार्थी पाखण्डियों ने 'शूद्रों और म्लेच्छों की उपस्थिति में गायत्री तथा अन्य वेदमन्त्र पढ़ना पाप है' ऐसा प्रचारित करके स्वामीजी को शास्त्रार्थ में परास्त करने हेतु जम्मू के एक पण्डित को तैयार किया। श्रोताओं से खचाखच भरे बोर्डिंग-हाउस वाले सभास्थल में स्वामीजी प्रामाणिक ग्रन्थों सहित शास्त्रार्थ-हेतु तैयार थे। विपक्षी पण्डित मात्र एक पुस्तक कांख में दबाये आये। स्वामीजी ने उनसे वह पुस्तक लेकर देखी तो पाया कि केवल उसके प्रथम पृष्ठ पर ५-७ मन्त्र लिखे हैं। शेष सब खाली पन्ने हैं। स्वामींजी ने चर्चा आरम्भ की, परन्तु पण्डितजी सर्वथा मौन धारण करके बैठे रहे। फिर भी स्वार्थियों ने उक्त पण्डित के विजय का ढिंढोरा पीटा।

भाग्य से पुरुषार्थ बड़ा

लोई ओढ़ा हुआ एक सिक्ख साधु प्रारब्ध (भाग्य) का पक्ष लेकर स्वामीजी से बहस करने लगा। अनेक प्रकार से समझाने पर भी जब वह 'भाग्य ही बड़ा है' की जिद्द पर अड़ा रहा, तो स्वामीजी की आज्ञा से एक सेवक ने उसकी लोई उतारना चाहा, पर उसने बलपूर्वक उस लोई को पकड़कर चिपटाये रखा और उसे मानना पड़ा कि भाग्य से पुरुषार्थ बड़ा है।

निर्भीक उपदेशक दयानन्द

स्वार्थी पाखण्डियों के उकसाने से इस नगर के 'अन्धी दा पुत्तर' नाम से प्रसिद्ध एक बदमाश ने सरे बाजार घोषणा कर दी कि मैं दयानन्द को मार डालूंगा अथवा उसका नाक काट डालूंगा। इस पर मेहता ज्ञानचन्द आदि भक्तजनों ने स्वामीजी से व्याख्यान देने जाने को मना किया। किन्तु स्वामीजी ने निःसङ्कोच भाव से 'मैं अकेला ही दस-बारह जनों पर भारी हूं। यदि मैं ऐसे डरता तो देश में वेदों का उपदेश कैसे कर सकता था। मैं अवश्य ही व्याख्यान देने जाऊँगा।' कहकर स्वामीजी व्याख्यान देने चल पड़े। डेंटिस्ट ला० परमानन्द भी साथ थे। मार्ग में दुष्टों ने स्वामीजी पर धूलि तथा पत्थर फेंके। व्याख्यान-समय में स्वामीजी के पास मेज पर भी एक ईंट आकर गिरी पर स्वामीजी प्रशान्त एवं स्थिर चित्त से व्याख्यान देते रहे और व्याख्यान देकर निर्भीकभाव से स्वस्थान पर लौट आये।

क्षीरसागर आदि की कल्पना असत्य है

संन्यासी-मण्डली के एक शिष्य की जिज्ञासा पर स्वामीजी ने गङ्गा को भी अन्य नदियों के समान बताया और कहा कि क्षीरसागर (= दूध का समुद्र) अथवा दूध की नदी की मान्यता केवल मनघड़न्त है। हां कहीं की सफेद मिट्टी के घुलने से नदी अथवा किसी तालाब का पानी सफेद दिखता हो, तो मूर्ख लोगों ने उसे दूध का सागर या नदी मान लिया हो, असम्भव नहीं।

चेला बनाना गुरुडम जैसा

यहां कुछ छात्रों द्वारा अपना चेला बनाने की प्रार्थना करने पर स्वामीजी ने कहा कि 'मैं गुरुडम प्रथा को अच्छा नहीं समझता। तुम यदि स्वयं को मेरा शिष्य समझते हो, तो विद्या पढ़ो, संस्कृत सीखो, २५ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी रहो और बड़े होकर वैदिक सच्चाइयों का प्रचार करो'। एक महिला के द्वारा मारफत (= ब्रह्मज्ञान) का मार्ग बताने की प्रार्थना करने पर स्वामीजी ने उसे भी वेद पढ़ने का उपदेश दिया।

पर-उपकार ही मनुष्यता का चिह्न है

'महाराज! खण्डन में क्या धरा है, उससे लोग उत्तेजित होते हैं, वही काम अच्छा है, जिसमें अपना भला हो, परोपकार तो ढकोसला है' ऐसा निवेदन करने वाले दो राजकर्मचारियों को स्वामीजी ने कहा कि 'अपनी भलाई का काम तो गदहे और अन्य पशुपक्षी भी करते हैं। मनुष्य की मनुष्यता तो दूसरों का उपकार करने में है।' स्वामीजी यहां अधिकतर वेदभाष्य लिखाने में व्यस्त रहते थे।

यहां कुछ लोगों ने सोचविचार कर स्वामीजी को 'उभयतः पाशारज्जु' रीति से निरुत्तर करने के लिये उनसे पूछा कि 'आप ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी?' स्वामीजी ने कहा "संस्कृत तथा धर्म आदि में मैं ज्ञानी और फारसी एवं दुकानदारी आदि में अज्ञानी हूं।" यह उत्तर सुनकर प्रश्नकर्ता स्वयं मौन हो गये।

वजीराबाद में धर्मोपदेश

स्वामीजी गुजरातशहर से ता० २ फरवरी १८७८ को वजीदाबाद आये और राजा फकीरुल्ला के बाग में ठहरे। व्याख्यानमाला के द्वितीय दिवस पौराणिक, एक पण्डित वासुदेव को एक सौ रुपये दक्षिणा देकर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने हेतु सभास्थल में ले आये। उसके द्वारा प्रस्तावित मन्त्र का स्वामीजी ने अर्थ कर दिया। दूसरे दिन उसने मन्त्र का नाम लेकर एक टीका-वाक्य मूर्तिपूजा की सिद्धि में प्रस्तुत किया। तब स्वामीजी ने कहा कि कोई मन्त्र प्रस्तुत करो, किसी मनुष्य का वाक्य नहीं। जब पण्डित से उसका उत्तर न बना, तो पौराणिकों ने एक लड़के के शोर मचाने और उसे ताड़ित करने के बहाने स्वामीजी तथा ला० लक्ष्मण पर आक्रमण कर दिया।

आर्यसमाज लाहौर के तथा स्थानीय समाज के सदस्यों ने दोनों की रक्षा की । फिर भी उग्रभीड़ उत्पात करने से न रुकी, तो स्वामीजी के स्वयं लाठी लेकर बाहर आने और घोर गर्जना करने पर उपद्रवी भाग छूटे । उसके पश्चात् भी स्वामीजी के कुछ दिन वहां व्याख्यान हुए ।

गुजरानवाला में धर्मप्रचार और आर्यसमाज-स्थापना

७ फरवरी १८७८ को स्वामीजी गुजरानवाला पहुंचे और महासिंह के समाधिभवन में ठहरे । तीसरे दिन से 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' के एक एक उद्देश्य पर व्याख्यान होने लगे । पादरियों ने पण्डितों को स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को बहुत उकसाया, किन्तु पं० विद्याधर आदि ने उनकी हिन्दुओं में फूट डालने की चाल को समझकर शास्त्रार्थ करने से मना कर दिया । तब पादरियों ने ही स्वयं स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का निश्चय किया । ता० १९ तथा २० फरवरी १८७८ को गिरजाघर में सायं ४ बजे से ८ बजे तक एक्स्ट्रा असि० कमिश्नर गोपालदास की मध्यस्थता में शास्त्रार्थ हुआ । 'जीव और ईश्वर दोनों के अनादि होने की स्थिति में दोनों एक ही हैं' ऐसी पादरियों की मान्यता का स्वामीजी ने दोनों के वैधर्म्य के आधार पर खण्डन करके उन्हें निरुत्तर कर दिया । मध्यस्थ ने भी स्वामीजी के कथन को युक्ति-युक्त माना । शास्त्रार्थ अगले दिन फिर करने का निश्चय हुआ । किन्तु अगले दिन पादरियों ने मनमानी ढंग से दिन में १२ बजे ही शास्त्रार्थ का समय रखकर चालाकी से थोड़े से छात्रों और श्रोताओं के बीच में देखो स्वामीजी शास्त्रार्थ के लिये नहीं आये हैं' यह कहकर स्वामीजी की पराजय घोषित कर दी । किन्तु स्वामीजी ने उसी दिन नियत समय ४ बजे गिरजाघर के पास सभास्थल पर जाकर पादरियों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा, पर जब कोई न आया तो स्वामीजी ने बाइबल के मन्तव्यों की भ्रान्ति पर व्याख्यान दिया, जिससे श्रोताओं को ईसाइयत कि निस्सारता का ज्ञान हो गया ।

इस शास्त्रार्थ के समय वजीराबाद के वे लोग भी आये थे, जिन्होंने स्वामीजी के विरुद्ध उपद्रव किया था । इस अवसर पर स्वामीजी के सद्व्यवहार से और हिन्दूधर्म के विरुद्ध पादरियों के आक्षेपों का स्वामीजी द्वारा करारा जवाब दिये जाने से, वे लोग अति प्रभावित हुए और मानने लगे कि स्वामीजी जैसा हिन्दूधर्म का रक्षक अन्य नहीं हैं ! उनके मुखिया पं० वासुदेव ने स्वामीजी से अपने पूर्वव्यवहारहेतु क्षमा-याचना की ।

उपदेश सुनकर विरोधी पक्का भक्त बना

गुजरानवाला के एक मुंशी नारायणकृष्ण ने एक पत्र में लिखा था, कि लोगों से सुने हुए के आधार पर मैं भी स्वामीजी का अद्वितीय विरोधी था और उन्हें गालियां भी निकाला करता था । किन्तु जब स्वामीजी के दर्शन किये, उनके उपदेश सुने और उनकी पुस्तकें पढ़ीं तो हृदय ही बदल गया । इच्छा होती है, कि उनके काम के लिये अपने को न्योछावर कर दूं । स्वामीजी के भारत में आविर्भाव को परमात्मा

का महान् अनुग्रह मानता हूं। स्थानीय बड़े मन्दिर के पुजारी भी यत्नपूर्वक स्वामीजी के व्याख्यानों में आते थे। दो वर्ष बाद उन्होंने पुजारी का कार्य त्यागकर आर्यसमाज की सदस्यता ग्रहण कर ली।

अखण्डित-ब्रह्मचर्यधारी का चैलेंज

एक दिन व्याख्यान में 'महाराजा रणजीतसिंह के एक सेनाधिकारी हरिसिंह नलवा की शूरता का कारण ब्रह्मचर्य था', इसका वर्णन करते हुए स्वामीजी ने कहा कि मेरी आयु इस समय ५४ वर्ष की है। मेरा ब्रह्मचर्य अखण्डित है। मैं किसी का भी हाथ पकड़ता हूं, वह उसे छुड़ाले, अथवा मैं अपना हाथ ऊपर करता हूं कोई उसे झुका कर दिखा दो। पांचसौ श्रोताओं में से सर्वसाधारण तो क्या कश्मीरी पहलवान भी उस चैलेंज का सामना न कर सके। ता० ३ मार्च १८७८ को गुजरानवाला में आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

मुझे परमात्मा से भिन्न किसी अन्य का भय नहीं

ता० ४ मार्च १८७८ को स्वामीजी लाहौर पहुंचे और नवाब रजा अली खां के बाग में ठहरे। ता० ११ मार्च को व्याख्यान-समय में, नवाब बगीचे में टहल रहे हैं, यह जानते हुए भी स्वामीजी ने मुसलमानी मत की आलोचना पर व्याख्यान दिया। अन्त में किसी ने कहा कि आपके ऐसे व्याख्यान से नवाब साहब भी अप्रसन्न हो जायेंगे, तो स्वामीजी का उत्तर था कि 'मैं यहां इस्लाम या किसी अन्य मत की प्रशंसा करने नहीं आया हूं। मैं वैदिक धर्म को ही सच्चा मानता हूं। उसी के गुण नवाब महोदय को भी सुनाने के उद्देश्य से मैंने व्याख्यान दिया है। मुझे परमात्मा के सिवाय किसी भी अन्य से कोई भय नहीं है'।

मुलतान में धर्मप्रचार और आर्यसमाज-स्थापना

मुलतान के निमन्त्रण-कर्ता सज्जनों की ओर से गये ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द के साथ स्वामीजी ता० १२ मार्च १८७८ को वहां पहुंचे और बेगी बाग में ठहरे। वहीं स्वामीजी के तीन व्याख्यान हुए। पहला व्याख्यान 'सृष्टि की उत्पत्ति पर था। एक व्याख्यान में गोकुलिये गुसाईं मत की बुराइयों की आलोचना करने पर गोपालदास गोसाईं एक दिन तो घोड़े पर सवार होकर शङ्ख घड़ियाल बजवाता हुआ और दूसरे दिन लाठी-छुरी-धारी सेवको के साथ सभास्थल पर उपद्रव करने के विचार से आया, पर पुलिस द्वारा उन्हें रोक दिया गया।

पारसी हरमुजजी पेंशनर तथा दिनशाजी बहरामजी की प्रार्थना पर छावनी में भी स्वामीजी के व्याख्यान हुए। पहला व्याख्यान 'यज्ञोपवीत' पर, दूसरा 'यूरोप के बसने' पर और तीसरा 'प्राचीनकाल की विवाह-रीति' पर था। उसी में स्वामीजी ने बालक-बालिकाओं की पाठशालाओं की, छात्रों के अध्ययन की और उनके रहन-

सहन की विस्तृत विवेचना की। पारसी सज्जनों ने एक थाल किशमिश और एक सौ रुपये भेंट किये, जिन्हें सबके आग्रह के कारण स्वामीजी ने स्वीकार कर लिया।

एक व्याख्यान में स्वामीजी ने पुराणोक्त गौतम-अहिल्या-इन्द्र सम्बन्धी अश्लील कथा का मिथ्यापन सिद्ध करते हुए बताया कि वैदिक ग्रन्थों में यह अलङ्कार वाला वर्णन है। वहां गौतम चन्द्र का, अहिल्या रात्रि का और इन्द्र सूर्य का नाम है। एक अन्य व्याख्यान स्वामीजी ने 'स्वास्थ्यरक्षा' पर दिया। हरमुजजी पारसी के प्रश्न के उत्तर में बताया कि यदि पारसी लोग मुसलमानों के साथ खानपान व्यवहार न करें तो हिन्दू लोग पारसियों के साथ ऐसा व्यवहार करने लगेंगे। किन्तु एक ही थाली में खाना अथवा एक दूसरे का झूठा खाना रोगोत्पादक है। ऐसा करने से प्रेम बढने की बात भी झूठी है। यदि ऐसा होता तो मुस्लिम देशों में परस्पर लड़ाई न होती।

चार महावाक्य प्रकरणानुसार जगन्मिथ्यात्व-प्रतिपादक नहीं

एक व्यक्ति के प्रश्न करने पर नवीन वेदान्तियों के अभिमत 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि चार महावाक्यों के विषय में कहा, कि ये अधूरे वाक्य हैं। पूर्वापर प्रकरणानुसार देखने पर, इनसे जगत् का मिथ्यापन और जीव का ब्रह्म होना सिद्ध नहीं होता है।

१४०० पुस्तकें पढ़कर नास्तिक बने सागरचंद नामक इञ्जीनियर ने तीन दिन तक स्वामीजी से वार्तालाप किया और अन्त में ईश्वर की सत्ता स्वीकार कर ली। यहां से स्वामीजी ने दानापुर की हिन्दूसत्सभा के मन्त्री बाबू माधोलाल को आर्यसमाज के नियमोपनियम भेजते हुए लिखा था, कि इन नियमों को ठीक से समझकर वेदाज्ञानुसार सर्वहित में प्रवृत्त होना चाहिये। सर्वहित ही परम धर्म है। आर्यावर्त देश के सुधारने में अत्यन्त श्रद्धा और प्रेम से लगना चाहिये। सब को अपना हिन्दू नाम त्यागकर 'आर्य' नाम अपनाना चाहिये। आर्य का अर्थ श्रेष्ठ धर्मात्मा है, जब कि यवन आदि के द्वारा दिया हुआ हिन्दू शब्द तदनुसार गुलाम, काफिर आदि का वाचक है। सबको परस्पर 'नमस्ते' वाक्य से अभिवादन करना चाहिये। ब्राह्मणों के वेद-अध्ययन-अध्यापन छोड़कर निस्तेज बन जाने पर शोक प्रकट करते हुए स्वामीजी कहा करते थे, कि ऐसे ब्राह्मण पीर (= पण्डित), बवर्ची (= रसोईदार), भिश्ती (= जल लानेवाला) और खर (= गधा = बोझ उठानेवाला) कहलाते हैं।

मांसभक्षण और मदिरापान सर्वथा त्याज्य है

एक दिन व्याख्यान में स्वामीजी ने मांसभक्षण का प्रबल शब्दों में निषेध किया और कहा कि मांसभक्षण से ही बल बढ़ने की बात भी झूठी है। उन्होंने चैलेंज फेंकते हुए कहा कि कोई भी मांसाहारी मेरे सामने आवे। मांस में स्वयं स्वाद भी नहीं है। मांसाहारी मनुष्य को जो स्वाद आता है, वह वास्तव में घी और मसाले

का होता है। मांसभक्षण शरीर के लिये हानिकारक और आत्मोन्नति में बाधक भी है।

मांसाहार-त्यागपूर्वक योगसाधना से अद्भुत लाभ

मांसभक्षी पं० कृष्णनारायण ने पीछे एक पत्र में लिखा था, कि मुझे स्वामी दयानन्दजी ने मांसाहार त्यागकर एक योगसाधनाविधि करने को कहा था। तदनुसार करने से "तीस दिन में ही मेरे शरीर में बल और स्वास्थ्य बढ़ गया जिसके आनन्द का मैं शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता तथा मेरा मस्तिष्क इतना प्रकाशयुक्त हो गया जैसे सूर्योदय से सब संसार हो जाता है और मुझ में भविष्य को जान लेने के चिह्न प्रकट होने लगे। परन्तु ३१वें दिन मैंने मांस खा लिया, जिससे तुरन्त ही मेरा मस्तिष्क अन्धकारमय हो गया और जो कुछ मैंने प्राप्त किया था वह जाता रहा।"

एक दिन उक्त पण्डित अपने ईसाई एवं मुसलमान मित्रों के साथ कुछ प्रश्न लेकर सभास्थल पर आये। पर उनके आश्चर्य की सीमा न रही, जब स्वामीजी ने बिना पूछे ही सब प्रश्नों के उत्तर दे दिये।

स्वामीजी के धर्मप्रचार के कारण ४ अप्रैल १८७८ को मुलतान में भी आर्यसमाज स्थापित हो गया।

स्वामीजी ने विज्ञापन द्वारा भी लोगों को शास्त्रार्थ के लिये बुलाया, पर कोई सामने न आया। स्वामीजी मुलतान में कुल ३६ दिन रहे और ३५ व्याख्यान दिये।

देशवासियों की हितचिन्ता ने मुझे दुबला कर दिया

स्वामीजी १७ अप्रैल को पुनः लाहौर आये और १४ मई तक वेदभाष्यलेखन और सत्योपदेश करते रहे। एक दिन वार्तालाप में अपने भक्तो से कहा कि 'आप लोग मुझे बहुत हृष्टपुष्ट समझते हैं, परन्तु जब मैं गङ्गातट पर विचरण करता था, उस समय की अपेक्षा अब दुबला हो गया हूं। आप लोगों की हितचिन्ता ने मुझे दुबला कर दिया है।'

अमृतसर में पुनः धर्मप्रचार

लाहौर से स्वामीजी १५ मई १८७८ को पुनः अमृतसर आये और सरदार भगवान् सिंह के बाग में ठहरे। किन्तु व्याख्यान पूर्ववत् मलवई बुंगे में ही हुए। एक दिन सभास्थल में कुरुक्षेत्र का एक संस्कृत-वेद-व्याकरणाभिमानी पण्डित शास्त्रार्थ के लिये आया। स्वामीजी के व्याकरण-सम्बन्धी एक प्रश्न का उत्तर उसने सूत्र नाम लेकर दिया, तो स्वामीजी ने कागज पेंसिल देकर कहा, कि इसे लिखो और 'यह सूत्र है,' ऐसा भी लिखो। तब तो अपने प्रमाण की कलई खुल जाने के भय से वह चुप होकर चला गया।

शास्त्रार्थ का तमाशा

एक मास तक अमृतसर में स्वामीजी के व्याख्यान होते रहे, पर पूर्ववत् इस बार भी शास्त्रार्थहेतु कोई आगे न आया। किन्तु स्वामीजी के वहां से प्रस्थान करने का समाचार जानकर पौराणिकोंने शास्त्रार्थ की डींग मारी और स्वामीजी से अथवा आर्यसमाज से बिना परामर्श किये १४ तथा १५ जून को घण्टाघर तथा एक शिवालय में साधु वसन्तगिरि की मध्यस्थता में शास्त्रार्थ होने का विज्ञापन दे दिया। विज्ञापन पर हस्ताक्षर कर्ता पं० चन्द्रभानु और साधु वसन्तगिरि से सम्पर्क करने पर पता चला कि इन दोनों के नाम बिना अनुमति के बलात् दिये गये हैं। तब आर्यसमाज की ओर से १८ जून को स० भगवान्सिंह के तबेले में शास्त्रार्थ होने का विज्ञापन दे दिया गया। शास्त्रार्थस्थल पर पांच सहस्र श्रोता पहुंच गये। नियतसमय पर विपक्षियों के न आने पर स्वामीजी का व्याख्यान आरंभ हुआ। तभी शोर मचाती भीड़ के साथ चार विपक्षी पण्डित आये, किन्तु शास्त्रार्थ-हेतु निर्धारित नियमों को नकारते हुए और दूसरे दिन अपने नियम भेजने की बात कहते हुए वे लौटने लगे, तभी शरारतियों ने सभास्थल पर ईंट पत्थर बरसाने शुरु कर दिये। भक्तों के द्वारा रक्षित कर देने से स्वामीजी को तो पत्थर न लगा, किन्तु कई भक्तों के पत्थर लगे और रक्त भी निकला। दूसरे दिन पण्डितों के वकील बा० मोहनलाल वकील द्वारा पण्डितों को पुनः बुलवाया गया, पर ज्ञात हुआ कि विपक्षी पण्डित तो आपस में ही झगड़ रहे हैं, उनका शास्त्रार्थ का विचार जान नहीं पड़ता। इस प्रकार शास्त्रार्थ का तमाशा समाप्त हुआ।

'एक मेज पर खाने से मित्रता' की बात झूठी

'एक ही मेज पर भोजन करने से मित्रता बढती है' यह बात कहकर एक दिन पादरी क्लर्क ने स्वामीजी से अपने साथ समान मेज पर भोजन करने को निमन्त्रित किया, तो स्वामीजी ने कहा कि यह बात मिथ्या है। यदि ऐसा होता तो एक मेज पर खाने वाले शिया और सुन्नी में, रूसी और अंग्रेज में तथा प्रोटेस्टेंट और रोमन कैथोलिक में आपस में मित्रता होती, पर हैं ये एक दूसरे के शत्रु।

एक दिन हर की पौड़ी और अमृतसर के गौण नामों का स्वामीजी द्वारा खण्डन करने पर सिक्ख-निहंग-दल रुष्ट हो गया और स्वामीजी को रात्रि में अकेले होने पर मार डालने की धमकी दी। परमेश्वर पर अटल विश्वासी स्वामीजी उस रात्रि जान बूझकर अकेले सोये, पर कोई निहंग पास नहीं फटका।

शास्त्रार्थ-हेतु बुलाये गये ईसाई खड्गसिंह, स्वामीजी की ओर से बोलने लगे

मिशन स्कूल में पढ़ने और ईसाईयों के संसर्ग से अमृतसर के ४० युवक पक्के ईसाई बनने वाले थे। किन्तु स्वामीजी के उपदेशों के श्रवण से उन्हें वैदिक

धर्म की सत्यता का और ईसाई मत की भ्रान्तियों का ज्ञान हो गया और वे ईसाई होने से बच गये । इससे ईसाइयों में खलबली मची और पादरी वेरिंग ने अपने उपदेशों से बारह वर्ष पूर्व ईसाई बने पण्डित खड्गसिंह को स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने बुलाया पं० खड्गसिंह बाबू ज्ञानसिंह (जो कि मिशन स्कूल में अध्यापक थे) के साथ स्वामीजी के निवास पर गये । वहां स्वामीजी से धर्म पर प्रश्न करने वाले ब्राह्मण के प्रश्नों का उत्तर स्वयं पं० खड्गसिंह स्वामीजी की ओर से देने लग गये और उसे कहा कि जब मेरे उत्तर से आपकी सन्तुष्टि न हो, तो स्वामीजी से पूछ लेना । उसी समय से पं० खड्गसिंह ईसाई मत त्यागकर स्वामीजी के पक्के अनुयायी बन गये और जीवन भर वैदिक धर्म का उपदेश करते रहे तथा अपनी दोनों कन्याओं का विवाह भी आर्यों में ही किया । इस घटना से घबराकर पादरियों ने कलकत्ता से प्रसिद्ध पादरी के० एम० बनर्जी को तार देकर बुलाया, पर वे भी न आये ।

एक दिन मिशन स्कूल में आवागमन पर वादविवाद के अवसर पर स्वामीजी के उपदेशों से प्रभावित बाबू ज्ञानसिंह ने आवागमन का प्रबल समर्थन किया । इससे चिढ़कर उन्हें नौकरी से हटा दिया गया । पर उन्होंने उसकी परवाह न की ।

'बालशास्त्री और विशुद्धानन्द साथ देते तो हम संसार जीत लेते'

भक्त पं० पोलहोराम को स्वामीजी ने गायत्री का जप करने और रात्रि में प्रणव (= ओ३म्) का जप करते करते सो जाने का निर्देश दिया तथा प्राणायाम की रीति भी सिखाई । पोलहोराम द्वारा आर्यसमाजियों की कम संख्या के कारण निराशा प्रकट करने पर स्वामीजी ने कहा, कि आप सहस्रों को अपना साथी बना सकते हैं । जब मैंने प्रचारकार्य आरम्भ किया तब मैं अकेला था, पर ईशकृपा से आज सहस्रों मेरे साथ हैं । यदि पं० बालशास्त्री और स्वामी विशुद्धानन्द मेरा साथ देते तो हम संसार को जीत लेते । पर वे मेरे विशुद्ध भाव को समझ न सके ।

रुड़की में धर्मप्रचार और आर्यसमाज-स्थापना

१५ जुलाई तक अमृतसर में निवास करके स्वामीजी जालन्धर, लुधियाना और अम्बाला ठहरते हुए थाम्पसन इंजी० कॉलेज के अध्यापक पं० उमरावसिंह आदि के निमन्त्रण पर २५ जुलाई १८७८ को रुड़की पधारे और ला० शम्भुनाथ दिल्लीवाले के बंगले में ठहरे । आते ही सत्संग आरम्भ हो गया । सत्सङ्गियों में अधिक संख्या इंजीनियरिंग कॉलेज के अध्यापकों और छात्रों की थी ।

हिन्दूओं की वेदधर्म-जिज्ञासा सम्बन्धी उपेक्षा पर खेद

यहां स्वामीजी ने प्रथम दिन 'ईश्वरोक्त ज्ञान के सिद्धान्त' पर हृदयग्राही व्याख्यान दिया । उसी दिन अमेरिका से थ्योसोफिकल सोसायटी के संस्थापक कर्नल अल्काट का वेदधर्म-मन्तव्यों की जिज्ञासा से भरा पत्र स्वामीजी के नाम आया । उसका उत्तर

लिखाते हुए स्वामीजी ने कहा, कि देखो अन्य धर्मों और अन्य देशों के लोग तो वेदधर्म के विषय में जानने को उत्साहित हैं, किन्तु अपने को आर्यपूर्वजों की सन्तान माननेवाले भारतीय लोग इस ओर उपेक्षा कर रहे हैं।

अन्त्यज को भी वेदोपदेश-श्रवण का अधिकार

उस दिन सभास्थल में एक और बैठकर ध्यान से व्याख्यान सुनते हुए एक अन्त्यज सिक्ख को एक पोस्टमेन ने डांटते हुए वहां से हटाना चाहा, पर अछूतोद्धारक स्वामीजी ने उस पोस्टमेन को ऐसा करने से रोका और उस सिख को सान्त्वना दी। वह प्रतिदिन नियम से उपदेश सुनने आता रहा।

तत्पश्चात् नगर में आरमन स्कूल के पास मैदान में व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया। प्रथम दिन का व्याख्यान 'सत्य धर्म और वेद' पर था। दूसरे दिन के व्याख्यान में आवागमन की सिद्धि में प्रबल युक्तियों को सुनकर रुड़की के असि० सर्जन बाबू सुरेशचन्द्र की आवागमन पर पूर्ण आस्था हो गई।

आरमन स्कूल के संस्कृताध्यापक पं० त्रिलोकचन्द्र ने एक दिन पृथक् सभा करके 'सहस्रशीर्षा' मन्त्र को उद्धृत करके लोगों से कहा कि मूर्तिपूजा तो वेद से सिद्ध है और सनातन है, अतः तुम दयानन्द की बात मत मानो। इस पर जब उनसे कहा गया कि 'आप दयानन्द से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करिये' तो पण्डितजी ने कहा कि दयानन्द का दर्शन करना मैं अनुचित समझता हूं। एक सज्जन ने कहा कि काशी के पण्डित तो दयानन्द के सामने बैठकर मोर्चा लेते हैं, आपका दर्शन न करने का ढकोसला मात्र शास्त्रार्थ से बचने की चाल है। तब पण्डितजी ने चेलों से घंटे घड़ियाल बजवाकर और अपनी जय बुलवाकर अपना रास्ता लिया।

तीसरे दिन का व्याख्यान इंजील और कुरान पर था। मुसलमानों को उत्तेजित होकर हल्ला-गुल्ला करते देखकर एक श्रोता ने एक पर्चा स्वामीजी के पास भेजा कि उपद्रव का भय है, अतः इस्लाम पर अधिक न कहें। स्वामीजी ने उसे पढ़कर भी अपना व्याख्यान पूर्ववत् चालू रखा। मुसलमानों ने स्वामीजीसे शास्त्रार्थ-हेतु स्थानीय मौलवी अहमदअली और हाफिज रहीमुल्ला से बात बनते न देखकर देवबन्द से मौ० मुहम्मदकासिम को बुलाया। ता० ८ अगस्त से १७ अगस्त तक शास्त्रार्थ-सम्बन्धी नियमों व स्थान के निश्चय के विषय में बार बार मौलवी की ओर से अड़ंगेबाजी होती रही। वास्तव में मुसलमान हुल्लड़बाजी और उपद्रव द्वारा शास्त्रार्थ विजय करना चाहते थे, पर स्वामीजी ने, सरकारी अधिकारियों ने और प्रबन्धकों ने इसे स्वीकार न किया। अतः नियमानुसार शास्त्रार्थ न हो सका।

आर्षग्रन्थों की व्याख्या के द्वारा संस्कृत विद्या की उन्नति करो

एक ख्यातिप्राप्त संस्कृत पण्डित स्वामीजी के पास आये और स्वनिर्मित व्याकरण ग्रन्थ स्वामीजी को दिखाने लगे। स्वामीजी ने कहा 'आपका संस्कृतज्ञान अच्छा है।' 'मेरे

ग्रन्थ में व्याकरण के सारे नियम आ गये हैं, ऐसा हठ करने पर स्वामीजी ने कुछ वेदमन्त्र और लौकिक श्लोक प्रस्तुत करके उन नियमों को लागू करने को कहा, इस पर पण्डितजी के वैसा न कर सकने पर स्वामीजी ने पाणिनि के एक सूत्र को सब पर घटा दिया और पण्डितजी से कहा, कि आप ऋषिकृत ग्रन्थों की व्याख्या लिखने का यत्न करें, जिससे संस्कृत-विद्या की उन्नति हो ।

ब्रह्मचर्यपालन से तीव्र जठराग्नि

एक दिन स्वामीजी ने कहा कि पहले आर्यगण ब्रह्मचर्यपालन-पूर्वक विद्या, पढ़ते थे, अतः बलवान् और दीर्घायु होते थे । अब वैसा न होने से निर्बल और निस्तेज हो गये हैं । देखो मैं पचास वर्ष से ऊपर हूं तो भी आधा सेर घी पचा सकता हूं ।

एक दिन मेघनाथ भट्टाचार्य के प्रश्न करने पर स्वामीजी ने बताया कि जीवात्मा शारीरिक धर्म का अंश नहीं है, वह स्वतन्त्र है । शरीर के अस्वस्थ होने पर आत्मा में जो व्यतिक्रम देखा जाता है । वह जल में तरंग उठने पर जलस्थित तैल के भी तरंगित होने के समान है । परलोक (= अन्यजन्म) का अस्तित्व है और उसी में जीवात्मा देहत्याग के बाद स्वकृत कर्मों का फल भोगता है । मरे हुए पितरों का श्राद्धतर्पण व्यर्थ है । जीवित मातापिता आदि की श्रद्धापूर्वक सेवा से पितृऋण चुकाया जा सकता है । प्रचलित जातिभेद ईश्वरकृत नहीं है । श्रेष्ठ कर्मों से ही ब्राह्मणादि का श्रेष्ठत्व है । यज्ञोपवीत लौकिक व्यवहार के अन्तर्गत उच्च-कर्मत्व का चिह्न है । केशवचन्द्र सेन की वेद पर अपूर्ण श्रद्धा का मैं विरोध करता हूं । वर्तमान तीर्थ-माहात्म्य मात्र पण्डों की उदरपूर्ति का साधन है । बलप्राप्ति के लिये भी मांसाहार की कतई आवश्यकता नहीं है । बंगाली पण्डितों ने न्यायशास्त्र द्वारा बुद्धि की तीक्ष्णता प्राप्त कर ली है, पर वेद-शास्त्र-ज्ञान में वे कोरे हैं ।

एक दिन भोटूसिंह नामक नवीन वेदान्ती ने अद्वैतवाद की डींग हांकते हुए अपने को ब्रह्म कहा । समीप पड़ी एक मरी हुई मक्खी को दिखाकर स्वामीजी ने उससे कहा कि यदि तुम ब्रह्म हो तो इसको जीवित कर दो । इस पर वह चुप्पी साध गया ।

स्वामीजी के धर्मप्रचार के फलस्वरूप ता० २० अगस्त १८७८ को रुड़की में आर्यसमाज की स्थापना हो गई ।

अलीगढ़ में पांच दिन

ता० २२ अगस्त को स्वामीजी अलीगढ़ पधारे और पं० आफ्ताबराय के बाग में ठहरे । छलेसरवासी ठा० मुकुन्दसिंह आदि पूर्वतः वहां सेवार्थ उपस्थित थे । बम्बई से मूलसी ठाकरसी, हरिश्चन्द्र चिन्तामणि और श्यामजी कृष्णवर्मा स्वामीजी के दर्शनार्थ अलीगढ़ आये । निजस्थान पर शङ्कासमाधान और धर्मोपदेश तो प्रतिदिन होता रहा

पर सार्वजनिक व्याख्यान एक ही हुआ। व्याख्यान के अन्त में सब जज मौ० फरीदुद्दीन ने खड़े होकर स्वामीजी की भूरि भूरि प्रशंसा की।

ता० २३ अगस्त को सर सय्यद अहमदखां ने स्वामीजी एवं अभ्यागतों को अपने घर पर भोजनार्थ निमन्त्रित किया। पर स्वामीजी ने धर्महानि न होने पर भी लोकापवाद से स्व उद्देश्य की पूर्ति में बाधक होने की सम्भावना से वहां जाना स्वीकार न किया।

मेरठ में धर्मोपदेश और आर्यसमाज-स्थापना

अलीगढ़ से स्वामीजी २६ अगस्त को मेरठ आये और बाबू दामोदरदास की कोठी में उतरे। वहीं पर एक सप्ताह तक धर्मोपदेश और शङ्का-समाधान करते रहे। पीछे राय गणेशीलाल की कोठी पर चार व्याख्यान क्रमशः सभा-शिष्टाचार-प्रश्नोत्तर-प्रकार, धर्माऽधर्म के लक्षण, ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना -उपासना और सृष्टि-उत्पत्ति इन विषयों पर हुए।

मुसलमानों ने एक पत्र स्वामीजी को भेजा कि किसी हिन्दू रईस के उत्तरदायित्व पर स्टाम्प पर इकरार नामा आप लिखें तो हम शास्त्रार्थ कर सकते हैं। किन्तु उस पर किसी प्रतिष्ठित मुसलमान के हस्ताक्षर नहीं थे, अतः उसे वापस कर दिया गया।

तीन प्रश्न और उनके उत्तर

तत्पश्चात् शहर में लाला रामशरणदास के घर पर ५. से १० सितम्बर तक छः दिन विविध विषयों पर स्वामीजी के व्याख्यान हुए। ११ से १३ तक प्रश्नों के उत्तर दिये गये। उनमें से सनातन-धर्मरक्षिणी सभा की ओर से तीन प्रश्न किये गये १. चार धाम, सप्तपुरी, मन्दिर और देवमूर्तियों की शास्त्रीय मान्यता है कि नहीं ? २. गंगाजी सब नदियों से श्रेष्ठ और पूजनीय है कि नहीं ? ३. ईश्वरीय अवतार के विषय में आपकी मान्यता ?

स्वामीजी ने जो उत्तर दिया उसका सार यह है कि १. चार धाम, सप्तपुरी आदि मन्दिर एवं मूर्तिपूजा पर अवलम्बित है और स्वयं मूर्तिपूजा ही वेदविरुद्ध है। वेद में 'न तस्य प्रतिमा' (यजु०३२.३), हिरण्यगर्भः (ऋ०१०-१२१-१), अन्धन्तमः... येऽसम्भूतिम् (यजु० ४०.९) इत्यादि के द्वारा ईश्वर की प्रतिमा का निषेध है। युक्ति से भी मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं होती। जड़ में चेतन की भावना करना भी मिथ्या और व्यर्थ है। ईश्वर के मूर्ति में भी व्यापक होने से भी मूर्तिपूजा करना उचित नहीं है, ईश्वर तो गृह शरीर आदि में भी व्यापक है, फिर मूर्ति की क्या आवश्यकता है ? जड़पूजा से ईश्वरोपासना असम्भव है। प्राणप्रतिष्ठा वाली बात भी प्रत्यक्षतः झूठी है। ऐसा करने पर भी मूर्ति में कभी जीव के इच्छा, ज्ञान, प्रयत्न आदि लक्षण नहीं दिखते। परम्परा से मूर्तिपूजा के चली आने की बात भी मिथ्या है। जब अनादि वेदों में ही मूर्तिपूजा नहीं तो परम्परा कहां से आ गई ?

२. गङ्गा भी अन्य नदियों के समान है। गङ्गा-स्नान आदि से पापमोचन और

मुक्ति-प्राप्ति की बात मिथ्या है। वेद और आर्षग्रन्थों में गङ्गा का ऐसा माहात्म्य कहीं नहीं है। मनुस्मृति में 'अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति' (मनु०५.१०९) आदि में जल से शरीर आदि की शुद्धि ही लिखी है। गङ्गा आदि को तीर्थ मानना भी अवैध है। वेदादि में पठित तीर्थ शब्द के अर्थ वेदाध्ययन, धर्मानुष्ठान, सत्यग्रहण और असत्यत्याग के हैं।

३. जिन्हें अवतार माना जाता है, वे महा उत्तम पुरुष थे और सत्य-धर्म पर दृढ रहकर ईश्वराज्ञा का पालन करते थे। किन्तु वे ईश्वर के अवतार नहीं थे। ईश्वर सर्वव्यापक और अजन्मा है, अतः उसका अवतार लेना मात्र कल्पना-जन्य भ्रान्ति है। रावण कंस आदि के वध के लिये भी परमेश्वर के अवतार की बात कहना परमेश्वर का उपहास करना है। जो ईश्वर बड़े बड़े सूर्यादि लोकों को रचता और यथासमय उनका संहार करता है, उसको क्या क्षुद्र जीवशरीरों के वध के लिये शरीरधारण की आवश्यकता हो सकती है? 'स पर्यगाच्छुक्रमकायम्' (यजु०४०-८) आदि के द्वारा वेदों में ईश्वर के शरीर के होने का सर्वथा निषेध है।

७ सितम्बर को मौ० अब्दुल्ला ने स्वामीजी को शास्त्रार्थ का चैलेंज देते हुए एक पत्र लिखा, जिसमें शास्त्रार्थ के नियम थे और आग्रह था कि शास्त्रार्थ मौखिक होना चाहिये, लिखित नहीं। स्वामीजी ने अन्य बातें स्वीकार कर लीं, पर शास्त्रार्थ के लिखे जाने की बात पर वे दृढ रहे, जिससे कोई अपने कथन से हट न सके। मौलवी इस पर तैयार न हुआ, अतः शास्त्रार्थ भी न हो सका।

स्वामीजी द्वारा नियत 'शास्त्रार्थ के नियम'

तत्पश्चात् सनातनधर्म-रक्षिणी सभा, मेरठ ने शास्त्रार्थ के लिये लाला किशन सहाय रईस के आश्रय से छेड़छाड़ प्रारम्भ की। बिना हस्ताक्षरों के स्वामीजी के पास चिट्ठियां भेजी गईं। स्वामीजी ने अनिच्छा होने पर भी महा क्रोधी पं० श्रीगोपाल तथा दुर्वचनवादी पं० भागीरथ से भी शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। शास्त्रार्थहेतु स्वामीजी ने एक पत्र द्वारा निम्न० नियम नियत करके भिजवाये -

१. उभयपक्ष से निम्न० १२ सज्जन सभा के प्रबन्धक नियत किये जायँ, यदि वे स्वीकार करें।

२. इनमें से एक सज्जन और यदि सम्भव हो तो मातहत जज साहब प्रबन्धक-सभा के सभापति नियत किये जायँ।

३. प्रबन्धकों के अतिरिक्त उपस्थित जनों की संख्या हर एक ओर से पचास-पचास से अधिक न हो तो अच्छा है।

४. उपस्थित होने वालों की जो संख्या नियत की जावे, उतने ही टिकिट छपवाकर आधे आधे हर एक पक्ष को दिये जावें।

५. हर एक पक्ष अपनी ओर के उपस्थित मनुष्यों को नियम में रखे और सब प्रकार से उनका उत्तरदाता रहे।

६. हर एक पक्ष की ओर से योग्य पण्डितों की संख्या दस-दस से अधिक न हो, कम का अधिकार है।

७. उभयपक्ष की ओर से केवल एक ही पण्डित सभा में भाषण करे अर्थात् एक ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वती और दूसरी ओर से पण्डित श्रीगोपाल।

८. इस सभा में हर विषय का खण्डन-मण्डन वेदों के प्रमाण से ही किया जावे।

९. वेदमन्त्रों के अर्थ के निश्चय के लिये ब्रह्माजी से जैमिनिजी तक के ग्रन्थों की, जिन्हें दोनों पक्ष मानते हैं, साक्षी देनी होगी, जिनका ब्यौरा इस प्रकार है – ऐतरेय, शतपथ, साम, गोपथ, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, (निघण्टु), छन्द, ज्योतिष, पूर्व मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, वेदान्त, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थवेद आदि।

१०. विदित रहे कि ऐतरेय से लेकर अर्थवेदादि उपर्युक्त ग्रन्थ ही साक्षी और प्रमाण होंगे, परन्तु यदि इनमें भी कोई वाक्य वेदविरुद्ध होगा, तो दोनों पक्ष उसे न मानेंगे।

११. उभय पक्ष को वेदों तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों, सृष्टिक्रम और सत्यधर्म से युक्त भाषण करना तथा मानना होगा।

१२. इस सभा में जो व्यक्ति किसी पक्ष का पक्षपात और राग प्रदर्शन करे, उसे सहस्र ब्रह्महत्या का पाप होगा।

१३. यतः बहुत बड़ी बात केवल एक पाषाणादिमूर्तिपूजन ही है, इसलिये इस सभा में मूर्तिपूजा का खण्डन और मण्डन होगा और यदि वेदों की रीति से पण्डितजी पाषाणादिमूर्तिपूजन का मण्डन कर देवें तो पण्डितजी की सब बातें भी सच्ची समझी जावेंगी और स्वामीजी मूर्तिपूजन का खण्डन छोड़कर मूर्तिपूजन स्वीकार कर लेवेंगे और जो स्वामीजी वेदों के प्रमाण से पाषाणादिमूर्तिपूजन का खण्डन कर देवें, तो स्वामीजी की और बातें भी सच्ची समझी जावेंगी और पण्डितजी उसी समय से मूर्तिपूजन छोड़कर मूर्तिपूजन का खण्डन स्वीकार कर लेवें। ऐसा ही उभय पक्ष को स्वीकार करना होगा।

१४. उभय पक्ष से प्रश्नोत्तर लिखित होने चाहियें अर्थात् हर एक प्रश्न मौखिक किया जावे और तत्क्षण लिखा दिया जावे। बल्कि जहां तक सम्भव हो वक्ता का एक एक शब्द लिखा जावे।

१५. सभा में स्वामीजी, पण्डितजी तथा अन्य पुरुषों की ओर से आपस में कोई कठोर भाषण न हो, प्रत्युत अत्यन्त सभ्यता और नम्रता से सत्यासत्य का निश्चय करें।

१६. सभा का समय ६ बजे सायंकाल से ९ बजे रात्रि तक रहे तो उत्तम है।

१७. प्रश्नोत्तर के लिखने के लिये तीन लेखक नियत होने चाहियें और प्रत्येक लेख पर, मिलान करने के पश्चात् प्रतिदिन दोनों पक्षों के हस्ताक्षर होकर एक एक प्रति हर पक्ष को दी जावे और एक प्रति बक्स में बन्द करके उस पर उभय पक्ष और सभापति का ताला लगाकर सभापति के पास रहे, ताकि लेखों में कुछ न्यूनाधिक न होने पावे और आवश्यकता के समय काम आवे।

१८. सभास्थल सब प्रवन्धकों की सम्मति के अनुसार नियत होगा।

१९. जम्मू और काशी आदि स्थानों के पण्डितों की सम्मति के ऊपर इस सभा के निर्णय को निर्भर न होना चाहिये, क्योंकि ये स्थान मूर्तिपूजा के घर हैं और वहां इस विषय में पण्डितों से शास्त्रार्थ हो चुका है। इसलिये उपर्युक्त वेदशास्त्रादि जिनमें हर विषय की विशद व्याख्या की गई है, मध्यस्थ और साक्षी के लिये पर्याप्त हैं। हां, यह अधिकार है कि दूसरे पक्ष को कुछ सन्देह व संशय हो तो आज १७ तारीख सितम्बर सन् १८७८ से दो दिन के भीतर उपर्युक्त स्थानों वा अन्य जगह से उस पण्डित से जो उसकी सम्मति में उत्तम व श्रेष्ठ हो, आने जाने के विषय में तार द्वारा बातचीत करके स्थिर कर ले वा प्रबन्ध कर ले और आज से छः दिन के भीतर अर्थात् २२ सितम्बर रविवार के दिन तक उसे यहां बुला लेवे। यदि दूसरे पक्ष की ओर से इस अन्तर में उचित प्रबन्ध न हो वा विरुद्ध कार्यवाही हो तो उस पक्ष की सब बाते कच्ची और आधारशून्य समझी जावेंगी और यदि स्वामीजी इस अन्तर में कहीं चले जावें वा इस लेख से बद्ध न रहें तो उनकी बातें भी कच्ची और आधारशून्य समझी जावेंगी।

२० दोनो पक्षों को सभा में वे सब पुस्तकें, जिनका वे प्रमाण दें, सभा के समय अपने साथ लानी चाहियें। उभय पक्ष की बिना असली पुस्तकों के मौखिक साक्षी स्वीकार न होगी। - लिखा हुआ १७ सितम्बर सन् १८७८ का।

टालमटोल द्वारा विपक्ष का शास्त्रार्थ से इन्कार

इस नियमावली-पत्र का किशनसहाय ने तो पहले कोई उत्तर न दिया, किन्तु पं० श्रीगोपाल ने उन नियमों में कई परिवर्तन करके एक पत्र स्वामीजी को भेजा उनमें मुख्य यह था कि 'उपस्थित होने वाले मनुष्यों की संख्या सीमित करने और टिकिट देने की कोई आवश्यकता नहीं है।' इस से स्पष्ट था कि विपक्ष हो-हुल्लड़ और उपद्रव द्वारा विजय सुनिश्चित करना चाहता था। स्वामीजी ने प्रत्युत्तर में लाला किशनसहाय को स्वप्रेषित नियमों के अन्तर्गत सत्याऽसत्य-निर्णयार्थ शास्त्रार्थ कराने के लिये प्रेरित किया। उसके उत्तर में किशनसहाय ने स्वामीजी के विषय में अनुचित

शब्दों का प्रयोग करते हुए लिखा कि पण्डितों के अनुसार आप वेद-विरुद्ध उपदेश करते हैं। स्वामीजी द्वारा इसका उचित उत्तर दिये जाने पर बिना हस्ताक्षर का एक पत्र स्वामीजी के पास आया जिसमें लिखा था "कि आप मार्ग भूले हुए हैं, हमारे पण्डित विद्वान् हैं, जब तक आप अपना वर्ण और आश्रम सिद्ध न कर देंगे तब तक हमें आपके पास नहीं आना चाहिये और न पण्डितों को आपसे सम्भाषण करना चाहिये।"

इस प्रकार शास्त्रार्थ करने से विपक्ष का स्पष्ट नकार आ गया और सनातनधर्म-रक्षिणी-सभा द्वारा शास्त्रार्थ के लिये किये गये आडम्बर की पोल खुल गई।

प्रतिष्ठित लोग आर्यसमाज के सदस्य बने

इस घटनाक्रम और स्वामीजी के उपदेशों के परिणामस्वरूप मेरठ में ता० २९ सितम्बर सन् १८७८ को आर्यसमाज-स्थापना हो गई और आरम्भ में इक्यासी सदस्य बने जिनमें लाला रामशरणदास जैसे प्रतिष्ठित रईस, उच्च शिक्षाप्राप्त सज्जन, सेठ साहूकार, व्यापारी एवं राजकर्मचारी थे। आश्चर्य यह था कि पौराणिकपक्ष के स्तम्भ और पण्डितों के पृष्ठपोषक उपर्युक्त ला० किशनसहाय के पुत्र लाला मुन्नालाल साहू भी आर्यसमाज के सभासद् बने और आजीवन कोषाध्यक्ष भी रहे।

एक दिन रात्रि के ९ बजे स्वामीजी के बल की परीक्षा की नीयत से बेनीप्रसाद आदि युवकों ने स्वामीजी के पैर दबाने की इच्छा प्रकट की। स्वामीजी ने पैर फैलाकर कहा कि पैर पीछे दबाना, पहले उन्हें ऊपर उठाओ। पूरी ताकत लगाकर भी वे ऊपर पैर न उठा सके।

स्वामीजी के श्राद्धखण्डन से चिढ़कर ब्राह्मणों और महाब्राह्मणों ने कुछ लठैत गुण्डों को स्वामीजी पर आक्रमण करने के लिये एक गली में बैठा दिया। व्याख्यान समाप्ति पर भक्तों के मना करने पर भी स्वामीजी निर्भीक भाव से उसी गली में होकर अपने डेरे पर लौटे। गुण्डे बैठे रह गये।

स्वामीजी का निद्रा पर अधिकार

एक दिन पं० गौरीशङ्कर ज्योतिषी और एक तहसीलदार स्वामीजी से वार्तालाप-हेतु आये। स्वामीजी ने कहा कि अभी मैं २५ मिनिट निद्रा लूंगा। वास्तव में २५ मिनिट बाद में उनकी निद्रा भंग हो गई।

एक दिन एक सज्जन ने स्वामीजी को 'नमस्ते' कहकर कुशल पूछा। स्वामीजी ने समीप बैठे हुए तिलकधारी ब्राह्मणों को देखकर कहा कि ? हमें कुशल कहां ? देखो ! ये ब्राह्मण अपना कर्तव्य पालन नहीं करते, केवल बाह्य आडम्बरों से इन्हें प्यार है, धर्मप्रचार का इन्हें ध्यान तक नहीं है।'

दिल्ली में धर्मवर्षा और आर्यसमाज-स्थापना

मेरठ से स्वामीजी ३ अक्टूबर को दिल्ली पधारे और सब्जीमण्डीस्थित लाला बालमुकुन्द व केसरीचन्द के बाग में ठहरे। वहीं कुछ दिन तक धर्मोपदेश करते रहे और १३ अक्टूबर से मोहल्ला शाहजी के छत्ते में व्याख्यान देने लगे। यहां अचरौल (जयपुर) के ठाकुर रणजीतसिंह के भेजे जोशी रूपराम स्वामीजी से मिले। स्वामीजी ने उन्हें 'पञ्चमहायज्ञविधि' और 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' की कुछ प्रतियां विक्रयार्थ दीं और एक 'सत्यार्थप्रकाश' भी दिया।

स्वामीजी के वैदिक धर्मोपदेश के प्रभाव से दिल्ली में ३ नवम्बर १८७८ को आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

पुष्कर के कार्तिक-मेले में धर्मप्रचार

दिल्ली से स्वामीजी अजमेर होते हुए ता० ७ नवम्बर १८७८ तदनुसार कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी वि० संवत् १९३५ को पुष्कर पहुंचे और जोधपुर घाट पर नवनाथजी के दलीचे में निवास किया। यहां का० शु० एकादशी से पौर्णमासी तक होनेवाले विशाल मेले में विज्ञापन वितरित किया गया, कि वेदोक्त-धर्म-विषय में चर्चा करनी हो तो सभ्यता एवं प्रीतिपूर्वक वार्तालाप करें। स्वामीजी के मुख से वैदिक धर्म के अश्रुतपूर्व रहस्य सुनकर दर्शक और जिज्ञासु सन्तुष्ट होकर शान्तिलाभ करने लगे। मसूदा के राव बहादुरसिंह ने भी यहीं स्वामीजी के प्रथम बार दर्शन किये।

झूठी मन्त्रशक्ति की पोल खुली

पुष्कर में मन्त्रशक्ति से प्राणहरण जैसे अलौकिक कार्य कर सकने की डींग हांकनेवाले कुछ वाममार्गी साधुओं के विषय में जब कुछ कॉलेज के विद्यार्थियों ने स्वामीजी को बताया, तो स्वामीजी ने कहा कि उन्हें यहां बुला लाओ। हम वायु के आवागमन वाली एक कांच की शीशी में एक जीवित मक्खी को बन्द करके, उन्हें मन्त्रशक्ति से मक्खी को मारने को कहेंगे या मन्त्रशक्ति से हमारा प्राणहरण करने को कहेंगे। जब छात्र उन साधुओं को बुलाने गये तो उन्होंने टालमटोल करके उन्हें लौटा दिया। इस घटना से सब पर उन वाममार्गियों के प्रपञ्च की कलई खुल गई।

यहां स्वामीजी बहुत सबेरे भ्रमण करने जाते। आकर ब्राह्मी के स्वरस के साथ दुग्धपान करते और फिर ग्यारह बजे तक वेदभाष्य लिखवाते। फिर दण्ड-मुगदर का व्यायाम करके भोजन ग्रहण करते। रात्रि में चित्रक की छाल के साथ दूध पीते।

पुराण की काट पुराण से

एक दिन बूंदी के राजपण्डित ने एक श्लोक पढ़कर कहा कि पद्मपुराण के इस श्लोक से मूर्तिपूजा सिद्ध होती है, तब स्वामीजी ने तत्क्षण एक श्लोक बनाकर

कहा कि दयानन्दपुराण के इस श्लोक से मूर्तिपूजा का खण्डन होता है। 'यह पुराण कैसा है ?' ऐसा पूछने पर स्वामीजी ने कहा कि पद्मपुराण का रचयिता मनुष्य तो अब जीवित नहीं है, किन्तु दयानन्दपुराण का रचयिता तो तुम्हारे समक्ष उपस्थित है और हमारे श्लोक के अनुकूल तो वेदादि शास्त्रों के अनेक प्रमाण हैं, जब कि तुम्हारे श्लोक के अनुकूल वेदादि का एक भी प्रमाण नहीं है।

कल्पित अवैदिक गायत्रियां निरर्थक हैं

एक दिन एक पण्डित ने कहा कि गायत्री एक प्रकार की नहीं अपितु २४ प्रकार की हैं। जैसे 'दशरथाय विद्महि सीतापतये धीमहि। तन्नो रामः प्रचोदयात्।' इसी प्रकार कृष्णगायत्री आदि। इस पर स्वामीजी ने कहा कि ये अवैदिक गायत्रियां कल्पित हैं और व्यर्थ हैं। ऐसे तो २४ हजार प्रकार की गायत्रियाँ हो सकती हैं। जैसे 'शीतलावाहनाय विद्महि लम्बकर्णाय धीमहि। तन्नो गर्दभः प्रचोदयात्।' ऐसे ही जूता छाता आदि की गायत्रियां बन सकती हैं। अतः वेदोक्त गायत्री द्वारा ही उपासना करना उचित है।

पृथ्वी शेषनाग पर नहीं, शेष (= परमात्मा) के आधार पर है

स्वामीजी ने वार्तालाप द्वारा एक पण्डित को बताया कि पृथ्वी का आधार शेषनाग नामक सर्प नहीं, अपितु प्रलयादि के पश्चात् शेष रहने के कारण शेष नाम वाच्य परमेश्वर ही आधार है। सर्प के आधार पर मानने से तो पुराणानुसार शेषनाग के पिता-पितामह-प्रपितामह कश्यप-मरीचि-ब्रह्मा आदि के समय पृथ्वी को निराधार मानना पड़ेगा। इसलिये 'शेषाधारा भूः' का अर्थ परमेश्वररूपी शेष के आधार से पृथ्वी है। ऐसा ही मानना योग्य है।

अजमेर में धर्मप्रचार

पुष्कर से स्वामीजी १४ नवम्बर १८७८ को अजमेर पहुंचे और रामप्रसाद के बाग में उतरे तथा उसी दिन से व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। यहां मुख्य सात व्याख्यान हुए। जिनमें ईश्वर का एकत्व, वेद ईश्वरोक्त हैं, वेद विविध विद्याओं के स्रोत, इञ्जील-कुरान-समीक्षा, सती-प्रथा आदि कुरीति-खण्डन, आर्यों की देशान्तर-यात्रा, जन्ममरण एवं आर्यों की उन्नति और अवनति ये विषय मुख्य थे।

पादरियों से शास्त्रार्थ

स्वामीजी के व्याख्यानों से अजमेर में तहलका मच गया। सहस्रों मनुष्यों के अतिरिक्त कमिश्नर, डिप्टी कमिश्नर, योरोपियन पादरी और प्रतिष्ठित मुसलमान भी व्याख्यानों में आते थे। गवर्न० कॉलेज के प्रिन्सिपल ने छात्रों को स्वामीजी के व्याख्यानों में जाने की अनुमति दे दी थी।

पादरियों द्वारा शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट करने पर स्वामीजी ने उनके पास इंजील के ६४ वाक्य लिखकर भेजे जिन पर शास्त्रार्थ में प्रश्नोत्तर होना था। ता० २८ नवम्बर १८७८ को पादरी ग्रे डॉ० पादरी हसबैण्ड के साथ शास्त्रार्थ हेतु आये। शास्त्रार्थ

लिखने के लिये दो हिन्दू लेखक और एक मुसलमान लेखक नियत हुए। स्वामीजी ने इंजील उत्पत्ति की पुस्तक पर्व १ आयत २ में लिखित 'पृथ्वी बेडोल थी' और 'परमेश्वर का आत्मा जल पर डोलता था' इन दो वाक्यों पर प्रश्न करना आरम्भ किया। पादरी लोग बिना विचार पूरा हुए जल्दी जल्दी आगे के वाक्यों पर चर्चा की जिद करने लगे। स्वामीजी ने जब इंजील के पर्व २ आयत ३ में लिखित "परमेश्वर ने ६ दिन में जगत् रचा और सातवें दिन विश्राम किया" इस वाक्य पर प्रश्न किया कि परमेश्वर तो सर्वशक्तिमान् और सच्चिदानन्दस्वरूप है, तो उसे जगत् के रचने में परिश्रम ही क्या हो सकता है, जो उसे थककर विश्राम करना पड़े? इसका बिना उत्तर दिये 'हमें देर होती है' का बहाना करके पादरी वहां से चल दिये। दूसरे दिन पादरियों ने कहलवा दिया कि यदि शास्त्रार्थ लिखा न जावे तो हम आगे शास्त्रार्थ करने आ सकते हैं। स्वामीजी शास्त्रार्थ के लिखे जाने पर दृढ थे, जिससे कोई अपने कथन से मुकर न सके। अतः आगे शास्त्रार्थ न हुआ।

शास्त्रार्थ के विषय में सम्मति

पहले दिन के शास्त्रार्थ के विषय में उसमें उपस्थित किशनगढ़ के दीवान रा०ब० श्यामसुन्दरलाल ने कहा था कि उस शास्त्रार्थ में पादरी ग्रे सुनिश्चितरूप से परास्त हुए थे। डॉ० पादरी हसबैण्ड ने स्वामीजी के विषय में कलकत्ता के 'इंडियन मिरर' अखबार में दिये एक लेख में (जो पीछे ३१ अगस्त १८७९ के अङ्क में छपा था) लिखा था कि 'प्रत्येक सायङ्काल को लोगों के बृहत् समूह स्वामी दयानन्द की बेदव्याख्या सुनने के लिये एकत्रित होते थे। और यद्यपि हिन्दू स्तम्भित हुए और मुसलमान शीघ्र ही क्रूर-भावयुक्त हो गये, तथापि सबने यह अनुभव किया, कि वे एक ऐसे मनुष्य के सम्मुख हैं, जिसकी मानसिक शक्तियां दुर्लभ हैं, जिसकी बुद्धि परिष्कृत, तर्कशक्ति सूक्ष्म और प्रभावोत्पादिका शक्ति प्रबल है। उनके व्याख्यानों ने बड़ा प्रभाव उत्पन्न किया था।'

'राजपुताना गजट' के सम्पादक मौलवी मुहम्मद मुरादअली ने स्वामीजी से 'आत्मा क्या वस्तु है?', 'मोक्ष किस वस्तु का नाम है?', 'जीव के बार बार जन्म लेने का क्या कारण है?' और 'बुराई-भलाई का उत्पन्न करनेवाला कौन है?' ये चार प्रश्न किये। मौलवी ने पीछे बताया था कि स्वामीजी ने मेरे प्रश्नों का कई प्रकार से उत्तर दिया और पहले तथा चौथे प्रश्न के उत्तर इतने युक्तिसंगत थे, कि मुझे पूरा सन्तोष हो गया। दूसरे और तीसरे प्रश्न के विषय में फिर सन्तुष्ट करने को वचन दिया। ये मौलवी गोरक्षा के समर्थक थे, अतः स्वामीजी उनसे अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें अपना एक फोटो भी दिया।

रा०ब० श्यामसुन्दरलाल ने वेदों में वैज्ञानिकतत्त्व होने के बारे में सन्देह प्रकट किया। जिसका स्वामीजी ने युक्तियुक्त समाधान कर दिया।

मूर्तिपूजा पर मृदु आक्रमण लक्ष्यप्राप्ति में बाधक

एक दिन रा०ब० श्यामसुन्दरलाल ने स्वामीजी से कहा कि आप मूर्तिपूजा पर इतना तीव्र आक्रमण क्यों करते है उसे थोड़ा सा नरम कर देने से भी तो काम चल सकता है।' इसका स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हम भी जानते हैं, कि मूर्तिपूजा पर आक्रमण का वेग कुछ कम करने से अनेक लोग हमारे पक्ष में आ सकते हैं और हमारे प्रति निन्दा और अत्याचार भी कुछ कम हो जायेगा, किन्तु इससे हमारे व्रत का उद्देश्य शीघ्र ही शिथिल हो जावेगा। मूर्तिपूजा पर मृदु आक्रमण करने वा उससे किसी प्रकार की सन्धि करने से हमारे सिद्धान्तों की भी वही दशा होगी जो अन्य सिद्धान्तों की हुई है और समयान्तर में आर्यसमाज पौराणिक होकर हिन्दुओं में मिल जायगा।

एक व्याख्यान में जब स्वामीजी ने नवीन धर्मग्रन्थों की भ्रान्तियां दिखाने के प्रसङ्ग में बाइबल के 'चौथे दिन सूर्य की सृष्टि हुई' इस वाक्य पर कहा कि जब सूर्य उत्पन्न ही नहीं हुआ था, तो 'तीन दिनों' का ज्ञान कैसे हुआ? अतः यह महाभ्रान्ति है। इस पर एक मिर्जा के 'हमारा कुरान ईश्वरीय है, उसमें सब कुछ शुद्ध है' ऐसा कहने पर स्वामीजी ने कहा कि कुरान में लेख है 'जो पुरुष दिन में पांच बार नमाज पढ़ता है, उसे स्वर्ग में सत्तर हूरें भोग के लिये मिलेंगी' तो क्या जो स्त्री पांच बार नमाज पढ़ती है, उसे क्या सत्तर पुरुष मिलेंगे? ऐसी बातें जिस पुस्तक में हों वह ईश्वरीय और शुद्ध कैसे हो सकती है? इस पर मिर्जा चुप हो गये।

मसूदा में धर्मोपदेश

अजमेर से स्वामीजी मसूदाधिपति राव बहादुरसिंह के निमन्त्रण पर मसूदा पधारे और रामबाग में ठहरे। सत्सङ्ग एवं विशेष व्याख्यान द्वारा भी लोगों की धर्म-पिपासा को शान्त किया। राव साहब तो प्रायः सारे दिन ही स्वामीजी की सेवा में उपस्थित रहकर धर्मालाप करते रहते थे। एक दिन स्थानीय अश्वशाला के अध्यक्ष हनुमान्-भक्त शिवराम को भी वार्तामाध्यम से स्वामीजी ने मूर्तिपूजा की निस्सारता समझाई। रावसाहब ने स्वामीजी को २००) दो सौ रुपये भेंट किये।

नसीराबाद में ३ व्याख्यान

मसूदाधिपति की बग्घी में बैठकर स्वामीजी नार्मल स्कूल (छावनी) के अध्यापक पं० सुखदेवप्रसाद के निमन्त्रण पर नसीराबाद आये और भूताखेड़ी के बगीचे में ठहरे। यहां स्वामीजी ने 'कर्तव्याऽकर्तव्य' पर तीन दिन तक व्याख्यान दिये। दो जैनियों ने कुछ प्रश्न किये, किन्तु १५-२० मिनिट में ही वे उत्तर पाकर शान्त हो गये। इन तीन व्याख्यानों से ही नगर में जागृति हो गई। उपर्युक्त पं० सुखदेवप्रसाद पहले स्थानीय मिशन स्कूल में नौकर थे और ईसाइयों के संसर्ग से वे ईसाई बनने वाले

थे। किन्तु अजमेर में स्वामीजी के प्रवचन सुनकर उन्होंने ईसाई बनने का विचार त्याग दिया। जिससे चिढ़कर पादरियों ने उन्हें मिशन स्कूल से निकाल दिया। इससे वे विचलित न हुए और कम वेतन पर ही नार्मल स्कूल में नौकरी कर ली और वेदधर्ममण्डन और क्रिस्तान-मुस्लिम-मतखण्डन करते रहे॥

जयपुर में धर्मोपदेश

तत्पश्चात् स्वामीजी ता० १५ दिसम्बर १८७८ को जयपुर आये और सांगानेरी दरवाजे बाहर सदासुख ढड्ढे के बाग में उतरे। कुछ दिन स्वामीजी ने स्व-स्थान पर ही पण्डितों और जिज्ञासुओं के प्रश्नों का समाधान किया, फिर ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी की हवेली पर तीन व्याख्यान दिये, जिनमें राज्य के दीवान, उच्च कर्मचारी, सरदार तथा जागीरदार भी आते रहे।

मेरठ के एक गुजराती ब्राह्मण ने रुड़की जाकर यह अफवाह फैला दी, कि जयपुर-महाराजा ने स्वामी दयानन्द को बन्दीगृह में डाल दिया है, क्योंकि वे मृतकश्राद्ध का खण्डन करते थे। भक्तों ने अजमेर और जयपुर तार किये और स्वामीजी के कुशलक्षेम का समाचार पाकर जान लिया कि किसी तेजोद्वेषी की वह करतूत थी।

जयपुर के उच्चपदस्थ कर्मचारी श्रीप्रसाद ने मन्त्री फतहसिंह के माध्यम से स्वामीजी के जयपुर-महाराज के साथ साक्षात्कार-हेतु प्रयास किया, किन्तु ब्राह्मणों ने स्वामीजी द्वारा किये गये, मृतकश्राद्ध और मूर्तिपूजा के खण्डन की आड़ में जयपुराधीश को स्वामीजी के विरुद्ध कर रखा था, अतः जयपुर-महाराज स्वामीजी के दर्शन से वंचित रहे।

जयपुर-महाराज के विरोधी होने पर भी स्वामीजी निर्भयतापूर्वक ९ दिन तक जयपुर में धर्मोपदेश करते रहे।

रेवाड़ी में धर्मवर्षा

ता० २४ दिसम्बर १८७८ को स्वामीजी रेवाड़ी पधारे और उनके अनुपम भक्त राव युधिष्ठिरसिंह के अतिथि बनकर 'लाला की बारहदरी' नामक उनके बाग में ठहरे। राव और उनके भाई स्वामीजी के सच्चे अनुयायी बन गये तथा उन्होंने अपने सगे सम्बन्धियों और जातिबन्धुओं को स्वामीजी के उपदेश सुनने को बुलाया।

'पाप मुझे और पुण्य तुम्हें'

यहां एक व्यक्ति ने स्वामीजी से गायत्री-मन्त्र सीखा। ब्राह्मणों ने जब उसे बहकाया कि यह ब्रह्मगायत्री नहीं है और ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य मनुष्य को गायत्रीमन्त्र जाप से पाप लगता है, तो स्वामीजी ने उससे कहा, कि जो इसे ब्रह्मगायत्री न बतावे उसे मेरे सामने लाओ और इस मन्त्र के जाप से यदि पाप लगे तो वह हमारा और जो पुण्य हो वह तुम्हारा। तब उस व्यक्ति को सन्तोष हुआ।

'अहं ब्रह्म' वाले की परीक्षा

एक दिन एक नवीन वेदान्ती साधु ने आकर कहा कि मैं ब्रह्म हूं। तब स्वामीजी ने कहा ईश्वर ने सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि लोक बनाकर उन्हें आकाश में अधर व्यवस्थित किया है, तुम भी एक हाथ भर भूमि आकाश में अधर रच कर दिखाओ। इस बात को सुनकर सब श्रोता हंस पड़े और नकली ब्रह्म का नशा उतर गया। पौराणिक पण्डित दूर से शास्त्रार्थ की हांकते रहे, पर स्वामीजी के सम्मुख कोई न आया।

दिल्ली में पुनरागमन

स्वामीजी रेवाड़ी से ९ जनवरी १८७९ को दिल्ली आये और वहां छः दिन के निवास में उन्होंने तीन व्याख्यान दिये और धर्मोपदेश किया। वहां से हरिद्वार-कुम्भ-मेले पर प्रचार-हेतु स्थानादि के निश्चय के लिये और विज्ञापनादि छपवाने के लिये १६ जनवरी १८७९ को मेरठ चले गये।

सहारनपुर और ज्वालापुर में धर्मोपदेश

मेरठ में कुछ दिन ठहरकर स्वामीजी ने सहारनपुर में दो दिन व्याख्यान दिये और एक दिन रुड़की में ठहरकर २० फरवरी १८७९ को ज्वालापुर में पदार्पण किया और मूला मिस्तरी के बाग में आसन जमाया। यहां एक मुसलमान रईस राव एवजखां स्वामीजी से कई बार मिले और अपने प्रश्नों के उत्तरों से अतिसन्तुष्ट हुए। एक दिन स्वामीजी ने उन्हें मांसाहार की हानियां और गोरक्षा की आवश्यकता इतने युक्ति-संगत ढंग से समझाईं कि एवजखां ने मांसाहार त्याग दिया और मुसलमानों में गोरक्षा के प्रचार की प्रतिज्ञा की। इनके प्रश्न करने पर स्वामीजी ने नित्य-स्नान को स्वास्थ्य के लिये अति हितकर बताया, जिसे एवजखां ने (स्वयं हकीम भी होने के कारण) तुरत मान लिया।

हरिद्वार-कुम्भ पर धर्मप्रचार

स्वामीजी ता० २७ फरवरी १८७९ (= फा० शु० ६ वि० १९३५) को कुम्भ मेले में प्रचारार्थ हरिद्वार पधारे और मूला मिस्तरी के खेत में डेरा लगाया और आगन्तुकों के लिये भी छप्परों की व्यवस्था की। मेरठ में छपवाये हुए विज्ञापन प्रमुख स्थानों पर चिपका दिये गये, जिनमें सर्वसाधारण से स्वामीजी के साथ सभ्यता एवं प्रीतिपूर्वक धर्मालाप करने के निमन्त्रण के साथ ही उपदेश भी था। जिसका मुख्य सार निम्न-लिखित है –

कुम्भ पर प्रचारित विज्ञापन का मुख्य सारांश

'ऐसा कौन मनुष्य होगा जो अपना और अपने बन्धुओं का हित और परमेश्वर की आज्ञा का पालन करना न चाहे। क्या कोई ऐसा भी मनुष्य है जो धर्मानुष्ठान विद्यावृद्धि आदि शुभकर्मों के ग्रहण और दुष्कर्मों के त्याग के बिना सर्वहित कर

सके और ईश्वर-प्रतिपादित वेदों के अनुसार आचरण किये बिना सुख को प्राप्त हो सके। इसलिये आर्यों के इस महा समुदाय में वेदमन्त्रों के द्वारा सब सज्जन मनुष्यों के हित के लिये ईश्वर की आज्ञा का प्रकाश संक्षेप से किया जाता है। जिसको सब मनुष्य देख और विचार कर ग्रहण करें और इस मेले में आने के श्रम को सार्थक करें तथा मनुष्य-देहरूप वृक्ष के धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूपी चार फलों को पाकर अपना जन्म सफल करें।' इसके बाद अर्थसहित निम्न० वेदमन्त्र दिये थे 'ओ३म् विश्वानि देव०, उत त्वं सख्ये०, यस्तित्याज०, सर्वे नन्दन्ति, सक्तुमिव तितउना०, (ऋ० ५.८२.५, १०.७१.५, ६, १०, २), सहनाववतु० (तैत्तिरीया० ९.१)।' तत्पश्चात् - 'प्राचीनकाल में आर्यावर्त की उन्नति का कारण वेदोक्त धर्म पर चलना था और इस समय की अवनति का कारण वेदोक्त धर्म का त्याग है। जिसका फल दुःख हो वह कभी धर्म और जिसका फल सुख हो वह कभी अधर्म नहीं हो सकता। अब भी यदि उन्नति हो सकती है, तो इन्हीं कामों से हो सकती है, जिन्हें आर्यसमाज के सभासद् करना कराना चाहते हैं अर्थात् संस्कृतविद्या के जानने वाले, स्वदेशियों की बढती के अभिलाषी, परोपकारक, निष्कपट होके सत्यविद्या देने के इच्छुक और धार्मिक विद्वानों की उपदेशक-मण्डली बनाना और वेदादि सत्य शास्त्रों के पढ़ाने के लिये पाठशाला स्थापित करना।'

इस विज्ञापन के प्रचारित होते ही सैंकड़ों हजारो की संख्या में लोग स्वामीजी के डेरे पर आने लगे, जिनमें कोई दर्शनार्थी, कोई जिज्ञासु, कोई द्वेषी, कोई कुतूहली, कोई शास्त्रार्थी और कोई तटस्थ दर्शक होते थे।

दस-दस घण्टे धर्मप्रचार

स्वामीजी प्रातःकाल के नित्यकर्म से निवृत्त होकर सात बजे से ग्यारह बजे तक सभास्थल में शङ्कासमाधान एवं व्याख्यानादि करते। फिर एक बजे से पांच बजे तक। इस अधिवेशन में श्रोताओं की भीड़ के कारण सभास्थल खचाखच भर जाता था। फिर सायं सात बजे से रात्रि नौ बजे तक धर्मालाप। इस निरन्तर परिश्रम के कारण दो सप्ताह बाद स्वामीजी को भारी अतिसार रोग ने घेर लिया, जिससे शरीर निर्बल हो गया, किन्तु उन्होंने उपदेश कार्य में कमी नहीं की। इस बार के कुम्भ में दो लाख से अधिक लोग नहीं आ सके थे।

हरिद्वार-कुम्भ समय की कुछ घटनाएँ

एक दिन उम्मेदखां ने हिन्दुओं को बुत-परस्त कहा तो स्वामीजी ने कहा कि तूर के पहाड़ और आदम के चरण वाले पहाड़ को पूजने, संगे अस्वद को चूमने तथा ताजिये और कब्रों से मनौती मांगने के कारण मुसलमान हिन्दुओं से भी बड़े बुतपरस्त हैं। इसी सज्जन द्वारा 'क्या आप मुसलमानों को आर्य बना लेते हैं? और यदि हां तो हमारे साथ आप खाना क्यों नहीं खाते ? क्योंकि साथ खाने से

प्रेम बढ़ता है' ऐसा प्रश्न करने पर स्वामीजी ने उत्तर दिया 'हां हम मुस्लिमों को भी वास्तव में आर्य अर्थात् श्रेष्ठ सत्यमार्ग पर चलने वाला बना लेते हैं, पर साथ अर्थात् जूठा खाने से रोग होता है, अतः हम साथ नहीं खाते। साथ खाने से प्रेम बढ़ता तो एक ही साथ खाने वाले कुत्ते खाते खाते ही लड़ नहीं पड़ते ?'

यहां विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध सतुआ स्वामी को भी स्वामीजी ने शास्त्रार्थ-हेतु अनेक बार बुलाया, पर वे बहाने बनाकर शास्त्रार्थ से बचते रहे।

एक दिन स्वामीजी बैठे हुए थे कि सहसा लेट गये। लोगों को इस पर आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर बाद स्वामीजी उठे और लम्बा श्वास खींचकर बोले कि विधवाओं और गौओं की हाय से यह देश नष्ट हो गया।

निरञ्जनी अखाड़े के दो नागे स्वामीजी के पास रहकर पढ़ने के इच्छुक बनकर आये, किन्तु स्वामीजी ने, दो शिष्य बने प्रच्छन्न जैनियों द्वारा शङ्कराचार्य को भोजन में विष देने के दृष्टान्त से उन्हें पास रखकर पढ़ाना तो स्वीकार न किया, किन्तु मासपर्यन्त टिकने वाली नागाकढ़ी की विधि उनसे सीख ली।

एक दिन उसी अखाड़े के दो नागाओं ने स्वामीजी से असभ्यतापूर्वक बेतुके प्रश्न किये। बहुत समय तक स्वामीजी ने हँसते हुए सभ्यतापूर्वक उत्तर दिये। स्वामीजी के सद्व्यवहार से वे लज्जित होकर क्षमाप्रार्थी हुए और उन्होंने तत्काल नागाबाना (= पीतल के कड़े, माला, कफनी, जटा आदि) त्यागकर स्वामीजी की शिक्षा पर चलने का संकल्प किया।

एक दिन ईश्वरसिंह नामक निर्मले साधु की प्रार्थना पर स्वामीजी ने उसे चारों वेद दिखाये और उदाहरण देकर समझाया कि सायण और महीधर ने वेदों के अर्थों का अनर्थ कर दिया है। ईश्वरसिंह ने कहा कि पहले तो आप जीव-ब्रह्म की एकता मानते थे। तब स्वामीजी ने स्पष्ट कहा कि उस समय हमने सारे वेद नहीं पढ़े थे। जब सब वेदों को पढ़ा और उन पर मनन किया तो पूर्ण विश्वास हो गया कि जीव और ब्रह्म को एक मानना वेदविरुद्ध है। जो श्रुतिवाक्य अभेद प्रतिपादक हैं, उनका अभिप्राय यह है कि जीव और ब्रह्म में व्याप्यव्यापक सम्बन्ध के कारण अभेद है, किन्तु जीव ब्रह्म नहीं है। जैसे कुटिया और आकाश में इस सम्बन्ध से अभेद है, किन्तु कुटिया आकाश नहीं है।

एक दिन मूला मिस्त्री ने स्वामीजी के अनुभव से सहमति व्यक्त करते हुए स्वीकार किया था, कि 'बद्रीनाथ-केदारनाथ आदि की यात्रा पुण्यार्जन की दृष्टि से निरर्थक है।

बहुविवाह अनुचित

रुड़की के सत्य-जिज्ञासु तहसीलदार नजफअली ने एक दिन कहा, कि जैसे राजा को कई मन्त्रियों की आवश्यकता होती है, वैसे ही एक पुरुष को कई बीबियों

की आवश्यकता है, अतः इस्लाम में चार बीबियों की इजाजत है। स्वामीजी ने कहा कि "एक पुरुष का एक स्त्री से विवाह ही वेदविहित है और युक्ति से भी यही बात ठीक है। देखो एक वेश्या सैंकड़ों पुरुषों को बिगाड़ती है, तो जब एक पुरुष के चार स्त्रियां हों, तो उनके लिये एक पुरुष कभी पर्याप्त नहीं हो सकता"। इससे तहसीलदार की समझ में यह बात आ गई।

एक दिन नजफअली, रुडकी के डि०कले० वकारअली बेग के साथ स्वामीजी का व्याख्यान सुनने आये। इस व्याख्यान से उन्हें पूरा निश्चय हो गया, कि जितनी ब्रह्मविद्या संस्कृत में है उतनी किसी भाषा में नहीं। डिप्टी के प्रश्न करने पर स्वामीजी ने कहा कि हर की पौड़ी वास्तव में हाड की पौड़ी है और यहां स्नान करने से पुण्य मानना वैसे ही मिथ्या है, जैसे अजमेर की दरगाह में चढ़ावा चढ़ाना।

नदिया (बंगाल) के तीन सभ्य पण्डितों ने भी स्वामीजी से चार दिन तक कई कई घण्टे वेदमन्त्रों के अर्थ आदि पर विचार विनिमय किया और सन्तुष्ट होकर उन्होंने स्वामीजी के अगाध पाण्डित्य और असाधारण तर्कशक्ति की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की।

महाराजा कश्मीर शुद्धि के पक्षपाती

इस अवसर पर महाराजा कश्मीर ने एक राजकर्मचारी को भेजकर एक पत्र द्वारा स्वामीजी से निवेदन किया कि "आप एक ऐसा ग्रन्थ बना दें, जिससे बिना पक्षपात और खींचातानी के यह सिद्ध हो जाय, कि जो लोग वैदिक धर्म त्याग कर ईसाई-मुसलमान आदि हो गये हैं, वे यदि चाहें तो वापिस वैदिक-धर्म में आ सकते हैं और उनके साथ खान-पान आदि व्यवहार अन्य वैदिक-धर्मियों के समान किया जा सकता है।" स्वामीजी ने उसे कहा कि 'ऐसा ग्रन्थ शास्त्रप्रमाण-पुष्ट सहज ही बनाया जा सकता है, किन्तु तुम लौटते हुए मुझसे एक पत्र महाराजा के नाम लेते जाना।' ज्ञात नहीं कि वह राजकर्मचारी स्वामीजी का पत्र ले गया कि नहीं?

जोतसिंह नामक एक निर्मला साधु तीन दिन तक स्वामीजी से व्यङ्ग एवं कटाक्षपूर्ण शब्दों के साथ वार्ता करने आता रहा। अन्तिम दिन व्याख्यान के अन्त में अश्रुपूर्ण होकर वह स्वामीजी के चरणों में गिर पड़ा और अपनी धृष्टता के लिये क्षमाप्रार्थी होकर स्वामीजी का पक्का अनुयायी बन गया।

नवीन वेदान्ती संन्यासी का सत्यप्रेम

एक दिन प्रातःकाल ही आनन्दवन नामक एक अस्सी वर्षीय संन्यासी अपने दस बारह शिष्यों के साथ स्वामीजी के पास आये और दो बजे अपराह्न तक नवीन वेदान्त पर चर्चा करते रहे। स्वामीजी ने चारों वेदों और साठ-पैंसठ अन्य ग्रन्थों के प्रमाणों से जीव ब्रह्म की भिन्नता आदि को सिद्ध कर दिया। तब उस सत्यप्रेमी संन्यासीजी ने खड़े होकर अपने शिष्यों से कहा कि "मैंने दयानन्द के मत को स्वीकार कर लिया है और तुम भी वैसा ही मानो।"

जङ्गलात के कंजरवेटर, मेरठ के कमिश्नर, सहारनपुर के कलेक्टर और डि०कले० वकारअली बेग भी एक दिन स्वामीजी के डेरे पर आये और उनसे ईश्वर-विषयक वार्तालाप करके अति प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी दिन से स्वामीजी की रक्षार्थ पुलिस का पहरा लगा दिया।

कुम्भपर आये साधुओं के विषय में स्वामीजी ने कहा कि इनमें से केवल स्वा० विशुद्धानन्द, स्वा० जीवनगिरि और स्वा० सुखदेवगिरि ये तीन ही विद्वान् हैं, शेष तो लड्डू पूरी उड़ाने वाले हैं। स्वामीजी ने इन तीनों के पास एक पत्र भी भेजा जिसका आशय था, कि जिन बातों का मैं प्रचार कर रहा हूं, उन्हे आप भी सत्य मानते हैं, फिर भी आप प्रकट रूप में उनको स्वीकार क्यों नहीं करते ? पर उस पत्र का विशेष परिणाम न निकला।

'हैजा-निवारणार्थ घी-कपूर जलाओ'

स्वामीजी से हवनविषय पर वार्तालाप करने आये नैनीताल के अंग्रेज डॉक्टर ने जब यह बताया कि मेले में हैजा न फैले इस दृष्टि से विष्ठा को कुछ दिन बाद भूमि में गाड़ा जा रहा है, तो स्वामीजी ने कहा कि इससे तो शीघ्र ही हैजा फैलने की सम्भावना है। इस वार्तालाप के तीसरे दिन ही हैजे से कई मनुष्य मर गये। तब डाक्टरों के पूछने पर स्वामीजी ने हैजे को रोकने के लिये घी और कपूर जलवाने और विष्ठा को विपरीतवायु वाले सुदूर स्थान पर जलाने का उपाय बताया।

एक दिन वेदान्ती साधु रामसिंह के 'आप ज्ञानी होकर भिक्षुक के समान ईश्वर से क्यों प्रार्थना करते हैं ?' ऐसा प्रश्न करने पर स्वामीजी ने कहा कि ज्ञानी को भी ईरश्वर-प्रार्थना करनी चाहिये। जैसे शरीर के लिये अन्न-जल आदि आवश्यक हैं, वैसे ही आत्मा के लिये ईश्वराराधना आवश्यक है।

५ अप्रैल को स्वामीजी की जांघ पर एक भयंकर छाला हो गया। इस कष्ट और अतिसार से उत्पन्न निर्बलता के कारण स्वामीजी ने एक दिन व्याख्यान स्थगित कर दिया। स्वामीजी की इस अशक्ति का अनुचित लाभ उठाने की दृष्टि से कुछ नवीन वेदान्ती साधु शास्त्रार्थ करने आये।

शास्त्रार्थहेतु आई मंडली आरम्भ में ही परास्त

स्वामीजी रुग्ण होते हुए भी शास्त्रार्थ के लिये तुरत तैयार हो गये। शास्त्रार्थ तो दूर वे साधु निम्न० वार्तालाप से ही निरुत्तर होकर चले गये -

स्वामीजी - पहले आप मुझे यह समझा दें कि वेदान्त से आपका क्या अभिप्राय है ?

साधु - यही कि जगत् मिथ्या और ब्रह्म सत्य है।

स्वामीजी - जगत् से क्या अभिप्राय है ? उसके भीतर क्या क्या पदार्थ हैं ? और मिथ्या से क्या अभिप्राय है ?

साधु – परमाणु से ले के सूर्यपर्यन्त जो कुछ है, उसे जगत् कहते हैं और यह सब मिथ्या अर्थात् झूठ है ।

स्वामीजी – आपका शरीर, बोलना, चालना, उपदेश, गुरु और पुस्तक भी उसके भीतर हैं वा नहीं ?

साधु – हां, यह सब उसी के भीतर हैं ।

स्वामीजी – और आपका मत भी उसी के भीतर है वा बाहर ?

साधु – हां, यह भी जगत् के भीतर है ।

स्वामीजी – जब आप स्वयं ही कहते हैं कि हम, हमारा गुरु, हमारा मत, हमारी पुस्तक, हमारा बोलना और उपदेश यह सब मिथ्या ही मिथ्या है, तो हम आप से क्या कहें ? जब स्वयं वादी के कथन से ही दावा खारिज हो, तो साक्षी आदि की आवश्यकता ही क्या है ?

साधु हक्का बक्का सा रह गया और किंकर्तव्य-विमूढ होकर अपनी मण्डली के साथ चला गया ।

मूर्तिपूजा-निवारण और वेद-धर्मप्रचार का कार्य गुरु-आज्ञा से

एक दिन मूला मिस्त्री के पूछने पर स्वामीजी ने कहा, कि प्रथम तो मुझे ही विचार हुआ था कि मूर्तिपूजन केवल अविद्या-अन्धकार है, परन्तु गुरुवर्य स्वामी विरजानन्दजी भी उसका खण्डन किया करते थे और कहा करते थे, कि कोई हमारा शिष्य ऐसा हो, जो इस अन्धकार को देश से दूर करे । उनके आदेश से मैंने वैदिक-धर्म-प्रचार का कार्य अपने ऊपर लिया है ।

पौराणिकों द्वारा उपद्रव-हेतु शास्त्रार्थ का ढोंग

पंजाबी पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी और पं० चतुर्भुज आदि तीस पण्डितों ने स्व-हस्ताक्षरों से युक्त एक पत्र स्वामीजी के पास भिजवाया जिसमें स्व-स्थान (= जूना अखाड़ा) पर आकर स्वामीजी को शास्त्रार्थहेतु आमन्त्रण था । जब यह ले जाया जा रहा था, तभी साधुओं ने कह दिया था कि यदि दयानन्द यहां आ जाय तो एक पत्थर मारो जो सिर फूट जावे, कुछ परवाह नहीं एक को फांसी हो जावेगी । जब वह पत्र स्वामीजी के पास पहुंचा तो स्वामीजी ने कहा 'मैं शास्त्रार्थ के लिये हर समय उद्यत हूं । परन्तु उसका प्रबन्धकर्ता कोई राजपुरुष हो, शास्त्रार्थ में पण्डितों के अतिरिक्त कोई अपठित मनुष्य न आने पावे । शास्त्रार्थ की जगह न मेरी हो न आपकी । जूना अखाड़े में आने में मुझे शारीरिक हानि पहुंचने का भय है । शरीरपात की तो मुझे चिन्ता नहीं है, परन्तु जो उपकारकार्य मैं कर रहा हूं, वह अधूरा रह जावेगा ।' उत्तर-प्रत्युत्तर का जब कोई परिणाम न निकला तो स्वामीजी ने अन्तिम पत्र में लिखा कि 'यदि स्वामी विशुद्धानन्दजी कह दें कि आप लोग मेरी अपेक्षा वेदों को अधिक जानते

है, तो मैं शास्त्रार्थ करने को उद्यत हूं और मैं उन्हीं को मध्यस्थ नियत करता हूँ ।'

स्वामी विशुद्धानन्द की सत्योक्ति

जब इस पत्र को लेकर पौराणिक पण्डित स्वामी विशुद्धानन्दजी के पास गये तो स्वा० विशुद्धानन्दजी ने पं० श्रद्धाराम फिल्लौरी और पं० चतुर्भुज को अवर्णनीय कुवाच्य कहे और स्पष्ट कहा कि तुम दयानन्द के सामने एक अक्षर भी नहीं जानते । साथ ही उन्होंने स्वामीजी को एक चिट्ठी लिख दी, कि बहुत से मूर्ख और हठधर्मी लोग उपद्रव करने के अभिप्राय से इकट्ठे हुए हैं, आप कदापि ऐसे लोगों की बात पर ध्यान न दें ।"

स्वामी विशुद्धानन्दजी के इस पत्र को स्वामी दयानन्दजी की सत्सङ्ग-सभा में पं० भीमसेन ने उच्च स्वर से पढ़कर सुना दिया । जिससे श्रोताओं को पौराणिकों के षड्यन्त्र का ज्ञान हो गया ।

श्रद्धाराम फिल्लौरी का असली रूप

पं० श्रद्धाराम ने अनेक साधुओं के द्वारा भी स्वामीजी के विरुद्ध अनेक मिथ्या आरोप लगवाये । जिन्हें देखकर पं० श्रद्धाराम के साथी जम्मूनिवासी पं० गोपालशास्त्री उससे पृथक् हो गये और श्रद्धाराम के भक्त लाला भोलानाथ भी स्वामीजी के प्रशंसक बन गये । पं० श्रद्धाराम वास्तव में नास्तिक थे और धन लेकर किसी का भी समर्थन कर देते थे । ईसाइयों से दान लेकर ईसाईमत-समर्थन में भी पंजाबी में एक पुस्तक उन्होंने लिख दी थी । मृत्यु से पूर्व उन्होंने 'सत्यामृत-प्रवाह' नामक पुस्तक में अपनी नास्तिकता को सार्वजनिक रूप से प्रकट कर दिया था ।

कुम्भ के अन्तिम पर्व दिवस से कई दिन पूर्व ही स्वामीजी ने सत्सङ्गियों को कहना आरम्भ कर दिया था, कि मेले में हैजा फैलने वाला है, अतः सब लोग अपने अपने घर चले जायें । स्वामीजी ने सरकार द्वारा मलत्याग-व्यवस्था को दोषपूर्ण बताया था, जो कि हैजे का प्रमुख कारण था ।

देहरादून में धर्मप्रचार और आर्यसमाज-स्थापना

हरिद्वार-कुम्भ पर धर्मप्रचार के पश्चात् स्वामीजी पं० कृपाराम के आग्रह पर ता० १४ अप्रैल १८७९ को देहरादून पधारे । कुम्भ में निरन्तर घण्टों बैठकर व्याख्यानादि देने के कारण स्वामीजी अतिसार से अति रुग्ण थे, अतः तीन दिन विश्राम किया । तत्पश्चात् पहला व्याख्यान 'ईश्वर' विषय पर दिया ।

एक अंग्रेज द्वारा बाइबिल का खण्डन

दूसरे व्याख्यान का विषय था 'वेद ईश्वरोक्त है', जिसमें बाइबिल और कुरान की बुराइयों को दिखाया गया था । उससे पादरी मॉरिसन उत्तेजित होकर निरर्गल बकवास करने लगे । स्वामीजी उनकी बातों का शान्तिपूर्वक उत्तर देने लगे, किन्तु

वे आपे से बाहर होते गये। उनके अंग्रेज साथी मि० पारमर ने उन्हें अंग्रेजी में समझाया, पर वे न माने और चले गये। तत्पश्चात् मिस्टर पारमर और मि० गार्टलेन स्वामीजी से सभ्यतापूर्वक धर्मचर्चा करने को तत्पर हुए, तो बीच में ही मिशन स्कूल के है० मा० विपिनमोहन बोस ने बाइबिल का मण्डन आरम्भ कर दिया। स्वामीजी उसका उत्तर देने ही लगे थे, कि मि० गार्टलेन स्वयं विपिनमोहन बोस के बाइबिल मण्डन का खण्डन करने लग गये। स्वामीजी और श्रोताओं पर मि० गार्टलेन के सत्यप्रेम का सुप्रभाव पड़ा।

अगले दिन तीसरा व्याख्यान 'धर्म' विषय पर था। उसी के मध्य में लगभग डेढ़सौ मुसलमानों की भीड़ मौलाना अहमदहसन के साथ स्वामीजी का शास्त्रार्थ कराने के उद्देश्य से स्वामीजी के स्थान पर पहुंची। स्वामीजी ने शास्त्रार्थ के नियम लिखकर दे दिये। पर पीछे कोई न आया।

चौथा व्याख्यान 'पुराणों' पर और फिर पांचवाँ व्याख्यान 'आर्यावर्त के प्राचीन इतिहास' पर हुए।

स्वामीजी के उपदेश से युवक ईसाई न बने

देहरादून के एक रईस के दो अंग्रेजी शिक्षित पुत्र ईसाइयों के संसर्ग से ईसाई बनने को उद्यत थे। पिता के निर्देश से उन्होंने छः मास की अवधि निश्चित की थी, कि इस अन्तराल में उनके तर्कों का कोई हिन्दू पण्डित समाधान कर देगा तो वे ईसाई न बनेंगे। हिन्दू पण्डित तो उनका समाधान न कर सके। स्वामीजी जब यहां पहुंचे, तब उस अवधि के कुछ ही दिन शेष रह गये थे। स्वामीजी ने उनके तर्कों का ऐसा उत्तर दिया, कि उन्होंने ईसाई मत की असारता स्वीकार कर ली और ईसाई बनने का विचार सर्वथा त्याग दिया।

२९ अप्रैल १८७९ को देहरादून में आर्यसमाज स्थापित हो गया। यहां एक मुहम्मद उमर नामक जन्मजात मुसलमान स्वामीजी के हाथों शुद्ध हुआ और उसका नाम 'अलखधारी' रखा गया।

मेरठ में धर्मोपदेश

स्वामीजी देहरादून से प्रस्थान करके दो दिन सहारनपुर रुकते हुए थ्योसोफिकल सोसायटी के कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवेट्स्की के साथ ता० ३ मई १८७९ को मेरठ पधारे। ता० ६ मई तक थ्योसो० के उक्त व्यक्तियों ने स्वामीजी के साथ योग आदि विषयों पर चर्चा की और स्वामीजी के मन्तव्यों से सहमति प्रकट की और वेदधर्म और ईश्वर के प्रति विश्वास एवं श्रद्धा दर्शाई तथा अपने व्याख्यानों में भी इन विचारों को दोहराया और ईसाईधर्म का खण्डन भी किया। ता० ७ मई को कर्नल और मैडम बम्बई चले गये।

शास्त्रार्थ-हेतु मुसलमानों का दिखावा

यहां देवबन्द के प्रसिद्ध मौलवी मुहम्मद कासिम आदि मुसलमानों ने स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की और अपनी ओर से शास्त्रार्थ के दस नियम प्रस्तुत किये, जिनमें शास्त्रार्थ मौखिक ही हो, श्रोताओं की संख्या की सीमा न बांधी जाय, वक्ता के बोलने का समय सीमित न हो, शास्त्रार्थ पूर्वाह्न ७ से ११ बजे हो और शास्त्रार्थ उर्दू भाषा में ही हो इत्यादि शर्तें मुख्य थी। स्वामीजी ने समझ लिया, कि इन शर्तों को लगाकर वे उपद्रव और धींगामस्ती से स्व-विजय करना चाहते हैं, अतः स्वामीजी ने उनमें कुछ संशोधन रखे, कि शास्त्रार्थ लिखा भी जाना चाहिये, श्रोता पठित और सीमित हों, उभयपक्ष के प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता के बोलने का समय नियत हो, समय सायंकाल से रात्रिपर्यन्त हो और उर्दू ही की शर्त न रखी जाय। गवर्न० स्कू० के हैड० मिस्टर कैस्पियन ने भी इन संशोधनों को न्याययुक्त बताया। मुसलमान इस पर सहमत नहीं हुए और इस प्रकार वे शास्त्रार्थ करने से बच गये। उक्त मौलवी ने रुड़की में भी ऐसा ही किया था।

मुरादाबाद में धर्मप्रचार और आर्यसमाज-स्थापना

२२ मई १८७९ को स्वामीजी अलीगढ़ पहुंचे। रुग्ण होने के कारण छः दिन रुककर २८ मई को छलेसर आये। वहाँ विधिवत् चिकित्सा एवं विश्रामं से उन्हें कुछ स्वास्थ्य-लाभ हुआ। ता० ३ जुलाई को स्वामीजी मुरादाबाद पधारे और राजा जयकिशनदास की कोठी पर उतरे। यहां स्वामीजी के केवल ३ व्याख्यान ही हुए। इनमें से एक व्याख्यान वहां के जोइंट मैजिस्ट्रेट मि० स्पीडिंग के अनुरोध पर उन्हीं के प्रबन्ध से 'राजनीति' विषय पर हुआ। टिकिटें द्वारा नियमित तीन सौ श्रोताओं में भक्तगण, राजकर्मचारी, वकील तथा प्रतिष्ठित लोग थे। कई घण्टे व्याख्यान हुआ। एक संन्यासी के मुख से राजा और प्रजा के कर्तव्यों पर ऐसे युक्तिसङ्गत विचार सुनकर सभी श्रोता चकित हो गये। अन्त में मि० स्पीडिंग ने स्वामीजी की भूरि भूरि प्रशंसा की।

स्वामीजी उन दिनों संग्रहणी रोग से पीड़ित थे। मुरादाबाद के सिविल सर्जन डॉ० डीन से इसकी चिकित्सा कराई गई। भक्तों के आग्रह करने पर भी डॉ० डीन ने 'स्वामीजी जगदुपकारी पुरुष हैं, मैं इनकी चिकित्सा की फीस नहीं लेना चाहता' कहकर फीस नहीं ली।

परस्पर अभिवादन 'नमस्ते' वाक्य से करना उचित

एक दिन मुंशी इन्द्रमणि से परस्पर अभिवादन के लिये उचित शब्द पर वार्तालाप हुआ। स्वामीजी ने 'नमस्ते' इस वाक्य को उचित बताया और वेदों तथा आर्षग्रन्थों से प्रमाण भी दिये। मुंशीजी - 'यह तो ठीक है कि छोटा बड़े को नमस्ते कहे, पर बड़ा छोटे को 'नमस्ते' कहे यह कैसे उचित है ?' स्वामीजी - 'बड़ा भी छोटे

के साथ निरभिमान होकर सद्व्यवहार तो करना चाहता ही है, अतः बड़े के द्वारा भी छोटे के प्रति 'नमस्ते' कहना उचित ही है।'

यजुर्वेदभाषार्थ-कर्ता पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने यजुर्वेद (१६.२८) के 'नमःश्वभ्यः' आदि में 'नमः' के अर्थ के सम्बन्ध में स्वामीजी से वार्तालाप किया। स्वामीजी ने कहा कि 'नमः' का अर्थ अन्न और वज्र (= दण्ड) भी है।

२० जुलाई १८७९ ई० को मुरादाबाद में स्वामीजी के सान्निध्य में राजा जयकिशनदास की कोठी पर ही आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

अग्निहोत्र और बलिवैश्वदेव नहीं तो भोजन नहीं

यह ज्ञात होने पर कि साहू श्यामसुन्दर ने सब दुराचार छोड़ दिये हैं, स्वामीजी ने उसके घर पर भोजन किया और नित्य अग्निहोत्र और बलिवैश्वदेवयज्ञ करने का उपदेश दिया तथा उसकी माता से कहा कि तुम्हारा पुत्र जिस दिन ये कर्म न करे, उसे कदापि भोजन न देना।

विषप्रभाव से ही स्वामी-स्वास्थ्य में गिरावट

रामलाल नामक सज्जन कायमगंज से यहां आये और उन्होंने स्वामीजी से यज्ञोपवीत लिया। 'क्या आपके स्वास्थ्य पर कोई आघात पहुंचा है ?' रामलाल द्वारा ऐसा पूछने पर स्वामीजी ने बताया, कि मुझे कई बार विष दिया गया है। यद्यपि मैंने उसे वमन और वस्ति-कर्म आदि से बाहर निकाल दिया, फिर भी उसका कुछ अंश रक्त में रह ही गया। इसी से मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया, अन्यथा मेरी आयु सौ वर्ष से अधिक होती। 'फिर आप योग्य शिष्य क्यों नहीं बनाते ?' इस प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने कहा, कि मैंने पहले वैदिक पाठशालाएँ स्थापित कीं, ताकि उनमें से विद्वान् निकलें और वैदिक धर्म का प्रचार करें, किन्तु उन पाठशालाओं में पढ़कर भी वे पौराणिक ही बने रहे। परन्तु आर्यसमाज के लोग अवश्य मेरे उद्देश्य को पूर्ण करेंगे।

बदायूं में धर्मोपदेश

१ अगस्त १८७९ को स्वामीजी मुरादाबाद से बदायूं गये और साहू गङ्गाराम के बाग में ठहरे। यहां स्वामीजी के आगमन से दो मास पूर्व ही आर्यसमाज स्थापित हो चुका था।

उस बार २ अगस्त को रक्षाबन्धन (= श्रावणी पर्व) था। स्वामीजी ने उपदेश किया कि इस पर्व का सम्बन्ध वेदाध्ययन से है।

दो सभ्य पण्डितों से शास्त्रार्थ

४ अगस्त को पं० रामप्रसाद और पं० वृन्दावन प्रश्नोत्तर-माध्यम से शास्त्रार्थ

करने आये । ५ अगस्त को भी यह शास्त्रार्थ-सभा हुई । पहले पं० रामप्रसाद के प्रश्नों के उत्तर में स्वामीजी ने समझाया कि 'सहस्त्रशीर्षा पुरुषः' (य०३१.१) इससे ईश्वर साकार सिद्ध नहीं होता, अपितु इसका अर्थ 'प्राणियों के असंख्य शिर, नेत्र और पैर आदि हैं जिसमें वह परमेश्वर' ऐसा है । वेदार्थ में अमरकोष प्रमाण नहीं, अपितु निघण्टु-निरुक्त प्रमाण हैं । खिलरूप में (= परिशिष्टरूप में) पठित लक्ष्मी-सूक्त भी प्रमाण कोटि का नहीं है । उसके आधार पर विष्णु को साकार एवं लक्ष्मीरूप स्त्रीवाला मानकर उस स्त्रीरूप लक्ष्मी का आवाहन करना क्या पाप नहीं है ? क्योंकि पराई स्त्री को अपने लिये बुलाना अधर्म है । वस्तुतः वहां भी लक्ष्मी का अर्थ राजलक्ष्मी = राज्यसम्पत्ति ही है, जैसा कि उसमें हाथी, रथ, अश्व आदि का वर्णन है । विष्णु शब्द का अर्थ ही व्यापक होने वाला है । और जो व्यापक होगा वह साकार नहीं । वेदों को पढ़ने का अधिकार मनुष्य-मात्र को है, इसमें 'यथेमां वाचं०' (य० २६.२) आदि प्रमाण हैं । परमेश्वर कभी अवतार नहीं लेता । 'इदं विष्णुर्विचक्रमे०' (य० ५.१५) से विष्णु का वामनावतार सिद्ध नहीं होता । इसका यही अर्थ है, कि ईश्वर जगत् को तीन स्थानों में स्थापित करके उसे धारण कर रहा है ।

पं० वृन्दावन के प्रश्नों का उत्तर देते हुए अतिरिक्तरूप से स्वामीजी ने कहा कि 'मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः' (य०१८.७१) के 'कुचरः' शब्द से मत्स्य आदि अवतार सिद्ध नहीं होते हैं । 'कु' का वेद में कहीं भी पृथिवी अर्थ में प्रयोग नहीं हुआ है । महीधर द्वारा ऐसा अर्थ करना दोषपूर्ण है । उसकी वेदटीका में अनेक दोष हैं और अश्लील अर्थ भी हैं, जैसे 'गणानां त्वा गणपतिं' (य०२३.१९) मन्त्र की टीका में । वेदों पर जो निरुक्त आदि ऋषिकृत टीकाएँ हैं, वही प्रमाणयोग्य हैं । ईश्वर का अवतार न होना 'स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्०' (यजु० ४०.८) आदि से सिद्ध है ।

ये दोनों पण्डित दुराग्रही नहीं थे, अतः युक्तियुक्त उत्तर पाकर शान्त हो गये ।

कोई 'भूतयोनि' नहीं है

श्रावणी के दिन एक वैद्य स्वामीजी के पास एक युवक को लाये और कहा कि इसमें 'भूत का आवेश' है, अतः किसी औषध से ठीक नहीं हुआ है । स्वामीजी ने कहा कि 'आप वैद्य होकर ऐसी अज्ञानभरी बात कह रहे हैं । कोई 'भूतयोनि' नहीं है । वैद्यकग्रन्थों में ऐसे अनेक रोगों का वर्णन है, जिनके होने से मनुष्य उल्टी चेष्टा करने लगते हैं और अण्डबण्ड बकते हैं । इस युवक ने अवश्य कोई मादक वस्तु खा ली है । अन्त में यह बात सत्य निकली । उसने भांग बहुत पी ली थी । स्वामीजी ने उसका उपचार भी बताया ।

स्वामीजी का एक व्याख्यान 'ईश्वर' विषय पर ला० गंगाप्रसाद के दीवानखाने और एक व्याख्यान 'धर्म' विषय पर 'कोठी चुंगी' में हुआ । शेष व्याख्यान स्वामीजी के स्थान पर ही हुए ।

कुछ मुसलमानों ने स्वामीजी के सामने इच्छा प्रकट की, कि हम आपका मौलवी मुहम्मद कासिम के साथ शास्त्रार्थ करवाना चाहते हैं। स्वामीजी ने तुरत स्वीकार कर लिया, किन्तु पीछे न मुहम्मद कासिम आये और न शास्त्रार्थ हुआ।

बरेली में धर्मप्रचार

बदायूं से स्वामीजी १४ अगस्त १८७९ को बरेली आये और ला० लक्ष्मीनारायण खजांची की कोठी पर ठहरे।

पादरी टी० जी० स्काट के साथ शास्त्रार्थ

यहाँ ता० २५ अगस्त को 'आवागमन' विषय पर स्वामीजी का पादरी टी०जी० स्काट के साथ शास्त्रार्थ हुआ। उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है –

स्वामीजी – जीव और उसके गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं तथा परमेश्वर और उसके न्याय करना आदि गुण भी अनादि हैं। जीव के प्रवाहरूप से चले आ रहे कर्मों का फल बिना उसके शरीर धारण किये सम्भव नहीं है, अतः आवागमन सिद्ध है। जीव के हर जन्म में सञ्चित और क्रियमाण क़र्म होते हैं। एक जन्म का क्रियमाण कर्म ही दूसरे जन्म का सञ्चित कर्म बनता है।

पादरी – यद्यपि पुनर्जन्म का सिद्धान्त पुराना है, परन्तु सभ्य शिक्षित लोग उसे छोड़ते जाते हैं। कर्म के अनादि होने से पुनर्जन्म होता है, तो ईश्वर का भी पुनर्जन्म होना चाहिये। पुनर्जन्म यदि पाप का फल भोगने के लिये है, तो हमें याद क्यों नहीं रहता, कि हमें अमुक पाप का अमुक दण्ड मिला ? मनुष्य को शान्ति एक जन्मवाद में ही मिलती है, न कि पुनर्जन्मवाद में। पुनर्जन्मवाद से पाप भी बढ़ता है, क्योंकि मनुष्य यह समझ लेता है कि कभी न कभी तो अच्छा जन्म मिलेगा ही। यह विश्वास इञ्जील के विरुद्ध है, जो वेद से पुरानी पुस्तक है।

स्वामीजी – यह कोई युक्ति नहीं है कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त पुराना है, पर सभ्य लोग इसे छोड़ते जाते हैं। यदि पुराना होने से ही कोई झूठा है, तो आपके अनुसार इञ्जील पुरानी है तो वह भी झूठी हुई। परमेश्वर का पुनर्जन्म नहीं होता, क्योंकि वह सर्वव्यापक, निष्काम, नित्यमुक्त और निराकार है। पुनर्जन्म पूर्वकृत पापों और पुण्यों के बुरा और अच्छा फल भोगने के लिये होता है। केवल याद न रहने से पूर्वजन्म असिद्ध नहीं होता। हमें इसी जन्म की बचपन की बातें याद नहीं रहती और सुषुप्ति अवस्था में कोई बात याद नहीं रहती। इससे बचपन और जागृत अवस्था असिद्ध हो गये क्या ? कुपथ्य का स्मरण न रहने पर भी, रोग कुपथ्य ही का फल है, इसे रोगी और चिकित्सक दोनों मानते हैं, ऐसे ही दुःख-सुख देखकर पुनर्जन्म के कर्मों का अनुमान होता है। एक-जन्मवाद में विश्वास से कभी शान्ति नहीं मिल सकती, क्योंकि दुःखी मनुष्य सदैव बैचेन रहता है, कि उसे दुःख क्यों दिया गया,

जब कि उसका कोई अपराध नहीं है । जब कि पुनर्जन्म का विश्वासी जानता है कि सुख-दुःख उसके पूर्वकर्मों के फल हैं । पाप तो इस विश्वास से बढ़ता है, कि हम किसीं की सिफारिश से पापों के दण्ड से मुक्त हो जायेंगे । पुनर्जन्मवाद यदि इञ्जील के विरुद्ध है, तो इससे वह असत्य सिद्ध नहीं होता । इञ्जील में बहुत भी भ्रमपूर्ण बातें हैं । वेद में कोई भी ऐसी बात नहीं है, वही ईश्वरोक्त है और सर्गारम्भ का है । और पुनर्जन्मवाद वेद के सर्वथा अनुकूल है ।

ता० २६ अगस्त १८७९ को शास्त्रार्थ 'ईश्वर देह धारण करता है वा नहीं' इस विषय पर हुआ -

पादरी - ईश्वर की पुस्तक (= बाइबिल) में लिखा है कि परमेश्वर ने मनुष्य को अपनी (शारीरिक नहीं आत्मिक) आकृति पर बनाया । जीवात्मा और परमात्मा के बहुत से गुण आपस में मिलते हैं, दोनों में मेल हो सकता है, इसलिये यदि परमेश्वर की इच्छा हो, कि देह में प्रकट होऊँ तो क्या वह असम्भव है ?

स्वामीजी - प्रश्न यह नहीं है कि परमेश्वर का देह धारण करना सम्भव है या नहीं, बल्कि यह है कि वह देह धारण करता है वा नहीं ? इस पर मेरे प्रश्न हैं, कि परमेश्वर को देह धारण करने की क्या आवश्यकता है ? देह धारण करने से तो वह साकार और एकदेशी हो जायगा तथा उसका सृष्टिकर्ता एवं सृष्टिपालक होना असम्भव हो जायगा । उसे सारी सृष्टि का ज्ञान भी न रहेगा । फिर यह कि परमेश्वर देह में आता है तो वह पूर्णरूप से सर्वथा आ जाता है वा टुकड़े टुकड़े हो जाता है ?

पादरी - ईश्वर सर्वव्यापक तो है, परन्तु हमें इसके अर्थ पूर्णतया ज्ञात नहीं । वह सारे शरीर में आ जाता है और बाहर भी रहता है । मनुष्यों को सन्मार्ग दिखाने के लिये वह देह धारण करता है । ईश्वर के देह धारण करने से उसकी महत्ता कम नहीं होती ।

स्वामीजी - परमेश्वर सर्वव्यापक होने के कारण पहले से ही देह में था । वह सर्वशक्तिमान् है । वह देहधारण किये बिना भी मनुष्यों को सन्मार्ग दिखा सकता है । यदि नहीं दिखा सके, तो वह अशक्त और असमर्थ हुआ । अतः ईश्वर का देहधारण करना निरर्थक और असम्भव है । मेरे सारे प्रश्नो के उत्तर भी पादरीजी ने नहीं दिये हैं ।

तीसरे दिन अर्थात् २७ अगस्त १८७९ को शास्त्रार्थ 'ईश्वर पापों को क्षमा करता है कि नहीं' इस विषय पर हुआ -

पादरी - ईश्वर का और हमारा पिता-पुत्र का सम्बन्ध है । वह पापों के लिये दण्ड अवश्य देता है, परन्तु क्षमा भी करता है । लोक में पिता-पुत्र को दण्ड देता है और क्षमा भी करता है ।

स्वामीजी - दण्ड देना और क्षमा करना दो परस्पर विरुद्ध बातें हैं। पापी को क्षमा करने से पाप बढ़ता है। पापी को पाप करने का साहस होता है। न्याय करना ईश्वर का स्वाभाविक गुण है, वह उससे उलट्य काम नहीं कर सकता। फिर परमेश्वर कौन कौन से पाप क्षमा करता है और कौन कौन से नहीं ?

पादरी - हमें यह पता नहीं कि ईश्वर कहां तक दण्ड देता है और कहां तक क्षमा करता है। मि० म्योर ने लिखा है, कि वेद में अदिति को पापों की क्षमाकर्त्री कहा है। क्षमा के विषय में इञ्जील का प्रमाण भी है और युक्ति भी। योहन्ना रसूल द्वारा क्षमा करने पर एक डाकू सुधर गया। बहुत से लोगों का 'तौबह' करने से पाप छूट गया। ईश्वर ने ईसामसीह द्वारा क्षमा का प्रबन्ध कर दिया है।

स्वामीजी - यदि किसी की सिफारिश से परमेश्वर क्षमा करता है, तो वह खुशामदी हुआ, न्यायकारी न हुआ। अदिति के अर्थ पृथिवी, अन्तरिक्ष, माता, पिता ईश्वरादि हैं। वेदों में पापों का क्षमा होना कहीं नहीं लिखा। अंग्रेजी-ज्ञाता मि० म्योर का वेदार्थ में प्रमाण नहीं हो सकता। यदि क्षमा पापी के पवित्र होने के लिये है, तो वह ठीक नहीं, क्योंकि क्षमा से पाप की निवृत्ति सम्भव नहीं।

नास्तिक मुंशीराम स्वामीजी के उपदेश से आस्तिक बने

पीछे जाकर 'स्वामी श्रद्धानन्दजी' नाम से प्रसिद्ध हुए विद्यार्थी मुंशीराम अपने पिता नानकचंद (शहरकोतवाल) के पास छुट्टियों में बरेली आये हुए थे। पिता अपने इस नास्तिक पुत्र को स्वामीजी के व्याख्यानों में ले गये। मात्र संस्कृत के ज्ञाता एक संन्यासी से ऐसी युक्तियुक्त बातें सुनकर मुंशीराम चकित हो गये। फिर तीन दिन तक मुंशीराम ने स्वामीजी से ईश्वरविषय में प्रश्नोत्तर किये। अन्त में मुंशीराम के यह कहने पर कि 'आपने तर्कों से मुझे निरुत्तर तो कर दिया, किन्तु मुझे ईश्वर पर अभी विश्वास नहीं हुआ है' स्वामीजी ने कहा कि ईश्वरकृपा से तुम्हें ईश्वर पर विश्वास भी अवश्य होगा। और वास्तव में कालान्तर में मुंशीराम सच्चे ईश्वर-विश्वासी बन गये।

पादरी और अंग्रेजों के सामने ईसाइयत का खण्डन

एक दिन व्याख्यान में पुराणों की आलोचना के प्रसंग में द्रौपदी के पांच पति होना और उसके कुमारीत्व आदि बातों के खण्डन के समय स्वामीजी ने देखा, कि उपस्थित कलेक्टर, कमिश्नर, पादरी आदि अंग्रेज ग्लानियुक्त एवं अपमानजनक हंसी हंस रहे हैं, तो झट उन्होंने कहा कि 'यह तो हुई पुराणियों की बातें, अब किरानियों (= ईसाइयों) की बातें सुनो। ये लोग कुमारी मरियम के पेट से पुत्र होना मानते है और दोष उस शुद्ध परमात्मा पर लगाते हैं तथा ऐसा घोर पाप कहते हुए, इन्हें तनिक भी लज्जा नहीं आती।' यह सुनकर अंग्रेजों के मुख क्रोधपूर्ण दिखने लगे, परन्तु स्वामीजी ने बाइबिल की तीव्र आलोचना करने में कमी न की।

'शरीरनाश के भय से मैं सत्यकथन से कभी नहीं हटूंगा'

कमिश्नर ने ला० लक्ष्मीनारायण खजांची के माध्यम से अंग्रेजों की नाराजगी स्वामीजी तक पहुंचा दी। दूसरे दिन 'आत्मा के स्वरूप' पर व्याख्यान देते हुए स्वामीजी ने प्रसंग से सत्य का महत्त्व बताते हुए कहा कि "लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो, कलेक्टर क्रुद्ध होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अरे चक्रवर्ती राजा क्यों न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे। आत्मा को कोई हथियार काट नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकता, वायु सुखा नहीं सकता और पानी गला नहीं सकता। यह शरीर तो अनित्य है, इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है, इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नष्ट कर दे।" तत्पश्चात् स्व-नेत्रों की ज्योति चारों ओर डालकर सिंहनाद करते हुए कहा कि "मुझे वह शूरवीर दिखलाओ जो यह कहता हो, कि वह मेरे आत्मा का नाश कर सकता है। जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता, तब तक मैं यह सोचने के लिये भी तैयार नहीं हूं, कि मैं सत्य को दबाऊँगा या नहीं।" स्वामीजी की इस गर्जना से सुनकर सारे सभास्थल में सन्नाटा छा गया।

स्वामीजी का गिरजाघर में उपदेश

एक दिन स्वामीजी जब पादरी स्कॉट के गिरजे को देखने को गये, तो पादरी के आग्रह पर स्वामीजी ने वहां उपस्थित लोगों को मनुष्यपूजा के खण्डन पर व्याख्यान दिया। जिसे सबने शान्तिपूर्वक सुना।

यह ज्ञान होने पर कि ला० लक्ष्मीनारायण ने एक वेश्या रखी हुई है स्वामीजी ने उससे पूछा कि तुम अपने आपको खत्री (= क्षत्रिय) कहते हो, तो यह बताओ कि किसी खत्री के वीर्य से वेश्या के पुत्र उत्पन्न हो तो उसे क्या कहोगे ? लाला ने लज्जा से सिर झुका लिया और उसी रात वेश्या को घर से निकाल दिया।

पाश्चात्त्य-दर्शन के ज्ञान से गर्वीले एक वकील विष्णुलाल एम०ए०ने स्वामीजी के सामने वैदिक दर्शनों का अपनी समझ में अकाट्य खण्डन किया। परन्तु जब स्वामीजी ने उसके तर्कों को छिन्न भिन्न करना आरम्भ किया, तो उसे अपनी बातों को भ्रान्तिपूर्ण मानना पड़ा और उसने लोगों से कहा कि स्वामीजी का तात्त्विक ज्ञान हम लोगों से बहुत बढ़ा चढ़ा है।

बरेली से ही स्वामीजी ने स्व-जीवन-चरित का कुछ लिखित अंश थियोसोफिस्ट अखबार में छपने को भेजा था, शेष अंश किसी अन्य स्थान से भेजा होगा। उसी का अंग्रेजी अनुवाद उक्त अखबार में छपा था

शाहजहांपुर में धर्मप्रचार

बरेली से प्रस्थान करके स्वामीजी ४ दिसम्बर १८७९ को शाहजहांपुर पहुंचे। वहां पूर्वतः स्थापित आर्यसमाज के सभासदों ने स्वामीजी के निवास आदि का प्रबन्ध किया। आर्यसमाज की ओर से ६ से १४ दिसम्बर तक स्वामीजी के व्याख्यान होने की सूचना दी गई और शास्त्रार्थ के इच्छुक को इसी बीच आकर लिखित शास्त्रार्थ के नियमों को निश्चित करने का निमन्त्रण भी दिया गया।

एक पं० लक्ष्मण शास्त्री मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करने आये। स्वामीजी द्वारा 'मूर्तिपूजा-समर्थक कोई वेदमन्त्र प्रस्तुत करो' यह कहने पर लक्ष्मण शास्त्री ने कहा कि वेद का प्रमाण कहां से दूं, वेद तो शङ्खासुर ले गया। तब स्वामीजी ने वेदग्रन्थ सामने रखते हुए कहा, कि तुम्हारे आलस्यप्रमादरूपी शङ्खासुर का वध करके ये (छपे हुए) वेद मैंने जर्मनी से मंगाये हैं, इनमें से खोजकर कोई प्रमाण दीजिये। यह देखकर शास्त्री तो सर्वथा मौन हो गये और श्रोता जन हंस पड़े।

तत्पश्चात् पौराणिकों ने पीलीभीत से पं० अङ्गदराम शास्त्री को शास्त्रार्थ के लिये बुलाया। ये अङ्गदराम शास्त्री वही थे जो बरेली में भारी भीड़ लेकर स्वामीजी से शास्त्रार्थ का दिखावा करने आये थे और शोर मचाकर चले गये थे। यहां भी उक्त शास्त्री दो-तीन दिन तक शास्त्रार्थ के स्वनिर्धारित नियम आदि पर ही स्वामीजी से पत्रव्यवहार करते रहे, परन्तु सभ्यतापूर्वक शास्त्रार्थ करने को राजी न हुए।

यहां एक व्याख्यान में स्वामीजी ने कहा कि जिस बात पर सब मत-मतान्तर वाले सहमत हों 'जैसे सत्य बोलना आदि' वही सत्य धर्म है, और जिन जिन बातों में असहमत हों वही अधर्म है।

एक दिन पं० भीमसेन को धन के अपव्यय न करने का उपदेश देते हुए कहा कि रुपया बड़ी सावधानी से खर्च करना चाहिये। कभी कभी एक पैसे की कमी से करोड़ों की हानि हो जाती है।

एक दिन एक कर्मचारी के आधा घण्टा देरी से काम पर आने पर स्वामीजी ने कहा, कि हमारे देशवासी समय का मूल्य नहीं जानते, उसे व्यर्थ खोते हैं, यही इनकी दुरवस्था का कारण है। समय का मूल्य तब ज्ञात होता है, जब किसी मरणासन्न रोगी को देखकर वैद्य कहता है, कि यदि मुझे पांच मिनिट पहले बुलाते, तो यह न मरता। अब सहस्र रुपये व्यय करके भी इसे बचाया नहीं जा सकता।

फर्रुखाबाद में धर्मप्रचार

१७ सितम्बर को स्वामीजी शाहजहांपुर से प्रस्थान करके छः दिन लखनऊ और एक दिन कानपुर ठहरते हुए ता० २५ सितम्बर १८७९ को फर्रुखाबाद पहुंचे और ला० कालीचरण के बाग में ठहरे। यहां प्रतिदिन सन्ध्यासमय ५ से ७ बजे

तक व्याख्यान होते रहे। सभ्य और प्रतिष्ठित श्रोताओं में ज्वाइंट मजिस्ट्रेट मि० डेनियल और पादरी टी०जे० स्कॉट भी होते थे।

यहां स्वामीजी का एक व्याख्यान 'गोरक्षा' विषय पर हुआ। उन्होंने बताया कि एक गौ को मारकर खाने से तो एक समय में कुछ ही मनुष्यों का पेट भरेगा, किन्तु उसकी रक्षा की जाय तो अपने जीवनकाल में वह अठरह हजार सेर दूध देगी। जिसकी खीर आदि से हजारों मनुष्यों का पेट भर सकता है। फिर उसकी बछियाओं से बनी गौओं और बछड़ों से तैयार हुए बैलों के द्वारा हुए उपकारों की तो सीमा ही नहीं है। ऐसी उपकारी प्राणी गौएँ हमारे देश में भी प्रतिदिन हजारों की संख्या में मारी जाती हैं, इसी से यह देश दुर्दशा को प्राप्त हो रहा है। इसमें केवल शासकों का ही दोष नहीं है, हमारा भी दोष है। यदि हम सब में एकता हो तो हम इसे अवश्य बन्द कर सकते हैं।

फतहगढ़ में स्वामीजी का 'आर्यसमाज के नियम' विषय पर अति सुन्दर व्याख्यान हुआ। ता० ३ तथा ४ अक्टूबर को प्रतिष्ठित और धनाढ्य आर्यसामाजिक पुरुषों ने स्वामीजी के सान्निध्य में स्थानीय आर्यसमाज के स्थायित्व के लिये एक निधि स्थापित करने हेतु दो सौ रुपये से लेकर हजार रुपये तक का चन्दा लिखाया तथा वेदभाष्य की सहायतार्थ भी एक हजार रुपये का सहयोग दिया।

पच्चीस प्रश्न और उनके उत्तर

जब स्वामीजी का विचार फर्रुखाबाद से प्रस्थान करने का हुआ तभी विरोधियों ने ६ अक्टूबर को पच्चीस प्रश्न लिखकर भेजे कि स्वामीजी इनका युक्तियुक्त उत्तर न देंगे, तो उन्हें पराजित मान लिया जायेगा। ७ अक्टूबर को उनके उत्तर लिखवाये गये और पश्चात् उन्हें आर्यसमाज के अधिवेशन में सबको सुनाकर प्रश्नकर्ताओं के पास भेज दिया गया। प्रश्नोत्तर इस प्रकार थे –

(१) प्रश्न – आप्तग्रन्थानुसार परिव्राजकों के धर्म क्या हैं ? उनको यान आदि पर चढ़ना अथवा धूम्रपानादि अन्य व्यसन करना योग्य है वा अयोग्य ?

उत्तर – वेदादि शास्त्रों में विद्वान् होकर वेद और वेदानुकूल आप्तशास्त्रोक्त रीति से पक्षपात, वित्तैषणा, लोकैषणा, पुत्रैषणा, अविद्या, हठ, दुराग्रह, स्वार्थसाधनतत्परता, निन्दा, स्तुति, मानापमान, परद्रोह आदि दोषों से रहित हो, सुपरीक्षापूर्वक सत्याऽसत्य-निश्चय करके सर्वत्र भ्रमणपूर्वक सर्वथा सत्यग्रहण (और) असत्यपरित्याग से सब मनुष्यों को शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के साधन सत्यविद्या सनातन-धर्म सुपुरुषार्थयुक्त करके व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखों से सह वर्तमान करके दुष्टाचारों से पृथक् कर देना परिव्राजकों का धर्म है। लाभ में हर्ष, अलाभ में शोकादि से रहित हो के यानों पर बैठना तथा रोगादि-निवारणार्थ ओषधिवत् धूम्रपान करके परोपकार करने में यतियों को कुछ भी दोष नहीं, यह सब शास्त्रों में विधान है, परन्तु वेदादि

सत्य शास्त्रों से विमुख होने के कारण तुमको भ्रम है, सो ऐसी आप्तग्रन्थों से विमुखता न चाहिये ।

(२) प्रश्न – यदि आपके मत में पापों की क्षमा नहीं होती तो मन्वादिक आप्तग्रन्थों में प्रायश्चित्तों का क्या फल है ? वेदादि ग्रन्थों में परमेश्वर की क्षमाशीलता और दयालुता का वर्णन है, उससे क्या प्रयोजन है ? यदि उससे आगन्तुक पापों की क्षमा से प्रयोजन है तो (उसे) क्षमा नहीं कहते और जब मनुष्य स्वतन्त्र है, आगन्तुक पापों से बचा रहे, तो उससे परमेश्वर की क्षमाशीलता क्या काम आ सकती है ?

उत्तर – हमारा वेदप्रतिपादित मत के सिवाय कोई कपोलकल्पित मत नहीं है और वेदों में कहीं कृत पापों की क्षमा नहीं लिखी और न कोई युक्ति से भी विद्वानों के सामने (किये पापों की क्षमा) सिद्ध कर सकता है । क्या प्रायश्चित्त तुमने सुखभोग का नाम समझा है । जिस प्रकार जेलखाने आदि में चोरी आदि पापों के फल का भोग होता है, वैसे ही प्रायश्चित्त भी समझो । यहां क्षमा की कुछ भी कथा नहीं है । परमेश्वर की क्षमा और दयालुता का यह प्रयोजन है, कि बहुत से मूढ़ मनुष्य वास्तविकता से परमात्मा का अपमान और खण्डन करते और पुत्रादि के न होने वा अकाल में मरने, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, रोग, पीड़ा और दरिद्रता के होने पर ईश्वर को गाली भी प्रदान करते हैं, तथापि परब्रह्म सहन कर कृपालुता रहित नहीं होता, यही उसके दयालु स्वभाव का प्रयोजन है । क्या कोई न्यायाधीश कृत पापों की क्षमा करने से अन्यायकारी और पापों के आचरण का बढ़ाने वाला नहीं होता ? क्या परमेश्वर कभी अपने न्यायकारी स्वभाव से विरुद्ध अन्याय कर सकता है ? हां ! जैसे न्यायाध्यक्ष राजदण्ड और अप्रतिष्ठादि करके तथा विद्या और सुशिक्षा देकर पापियों को पाप से पृथक् कर शुद्ध और सुखी कर देता है, उसी भांति परमेश्वर को भी जानो ।

(३) प्रश्न – यदि आपके मत से तत्त्वादिकों के परमाणु नित्य हैं और कारण का गुण कार्य में रहता है तो परमाणु जो सूक्ष्म और नित्य हैं, उनसे सांसारिक स्थूल और अनित्य पदार्थ कैसे उत्पन्न हुए ?

उत्तर – जो परम अवधि–सूक्ष्मता की है अर्थात् जिसके आगे स्थूल से सूक्ष्मतारूपी कभी नहीं हो सकती उसको परमाणु कहते हैं, जिसके प्रकृति, अव्याकृति, अव्यक्त और कारण आदि नाम भी हैं और वह अनादि होने से नित्य हैं । हाय ! लोगों की उलटी समझ पर । जो कारण के गुण समवाय सम्बन्ध से कारण में हैं वे नित्य हैं । क्या जो गुण कारणावस्था में नित्य हैं, वे कार्यावस्था में भी नित्य हैं ? क्या जो गुण कारणावस्था में हैं वे कार्यावस्था में वर्तमान होकर फिर जब कारणावस्था होती है तब भी (कारण के गुण) नित्य नहीं होते ? और जब परमाणु मिलकर स्थूल होते हैं वा पृथक् पृथक् होकर कारणरूप होते हैं, तब भी उनके विभाग और संयोग होने का सामर्थ्य नित्य होने से अनित्य नहीं होते । वैसे ही गुरुत्व, लघुत्व होने का

सामर्थ्य भी उनमें नित्य है, क्योंकि यह बात गुणगुणी-समवाय सम्बन्ध से है ।

(४) प्रश्न - मनुष्य और ईश्वर में क्या सम्बन्ध है ? विद्या ज्ञान से मनुष्य ईश्वर हो सकता है वा नहीं ? जीवात्मा और परमात्मा में क्या सम्बन्ध है ? और जीवात्मा और परमात्मा दोनों नित्य हैं और चेतन हैं, तो जीवात्मा परमात्मा के अधीन है वा नहीं ? यदि है तो क्यों ?

उत्तर - मनुष्य और ईश्वर का राजा-प्रजा, स्वामी-सेवक आदि का सम्बन्ध है। अल्पज्ञान होने से जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता । जीव और परमात्मा में व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध भी है। जीवात्मा परमात्मा के अधीन सदा रहता है, परन्तु कभी कर्म करने में नहीं । किन्तु पापकर्मों के फलभोग में वह ईश्वर की व्यवस्था के अनन्त सामर्थ्ययुक्त होने से परतन्त्र है और जीव अल्प सामर्थ्यवाला है, इसलिये उसका परमेश्वर के अधीन होना अवश्य है ।

(५) प्रश्न - आप संसार की रचना और प्रलय को मानते हैं या नहीं ? जब प्रथम सृष्टि हुई तो आदि सृष्टि में मनुष्य एक अथवा बहुत मनुष्य उत्पन्न हुए ? जब कि उनमें कर्म आदि की विभिन्नता न थी, तब परमेश्वर ने कुछ मनुष्यों ही को वेदोपदेश क्यों किया ? ऐसा करने से परमेश्वर पर पक्षपात का दोष आता है ।

उत्तर - संसार की रचना और प्रलय को हम मानते हैं। सृष्टि प्रवाह से अनादि है सादि नहीं। क्योंकि ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि और अव्याहत (बे रोकटोक) हैं। जो ऐसा नहीं मानते, उनसे पूछना चाहिये कि (क्या) प्रथम ईश्वर निकम्मा और उसके गुण-कर्म-स्वभाव भी निकम्मे थे ? जैसे परमेश्वर अनादि वैसे जगत् का कारण अनादि और जीव भी अनादि हैं। क्योंकि बिना किसी वस्तु के उससे किसी कार्य का होना सम्भव नहीं। जैसे इस कल्प की सृष्टि की आदि में बहुत स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए थे, वैसे ही पूर्वकल्पान्त सृष्टि में उत्पन्न हुए और आगे की कल्पान्त सृष्टियों में भी उत्पन्न होंगे, कर्मादिक भी जीवों के अनादि हैं। चार मनुष्यों के आत्मा में वेदोपदेश करने में यह हेतु है, कि उनके सदृश वा अधिक पुण्यात्मा जीव कोई भी नहीं थे। इसलिये परमेश्वर में पक्षपात कुछ नहीं आ सकता ।

(६) प्रश्न - आपके मतमें न्यूनाधिक कर्मानुसार फल होता है तो मनुष्य स्वतन्त्र कैसे है ? परमेश्वर सर्वज्ञ है तो उसे भूत, भविष्यत्, वर्तमान का ज्ञान है, अर्थात् उसको यह ज्ञान है कि अमुक पुरुष अमुक समय में अमुक काम करेगा और परमेश्वर का यह ज्ञान असत्य नहीं होता क्योंकि वह सत्यज्ञान है अर्थात् वह पुरुष वैसा ही कर्म करेगा जैसा कि परमेश्वर को ज्ञान है, तो कर्म उसके लिये नियत हो चुका तो जीव स्वतन्त्र कैसे ?

उत्तर - कर्म के फल न्यूनाधिक कभी नहीं होते, क्योंकि जिसने जैसा और जितना कर्म किया उसको वैसा और उतना ही फल मिलना न्याय कहलाता है। अधिकन्यून

होने से ईश्वर में अन्याय आता है। ईश्वर के ज्ञान में भूत, भविष्यत् काल का सम्बन्ध नहीं होता। क्या ईश्वर को ज्ञान होकर न हो और न होके होने वाला है ? जैसे ईश्वर को हमारे आगामी कर्मों के होने का ज्ञान है, वैसे ही मनुष्य अपने स्वाभाविक गुण-कर्म-साधनों के नित्य होने से सदा स्वतन्त्र है, परन्तु अनिच्छित दुःखस्वरूप पापों का फल भोगने के लिये ईश्वर की व्यवस्था में (जीव) परतन्त्र होते हैं। जैसे कि राजा की व्यवस्था में चोर और डाकू पराधीन हो जाते हैं, वैसे ही उन पाप-पुण्यात्मक के दुःखसुख होने का ज्ञान मनुष्य को प्रथम नहीं (होता) है। क्या परमेश्वर का ज्ञान हमारे किये हुए कर्मों से उलटा है ? जैसे वह अपने ज्ञान में स्वतन्त्र है, वैसे ही सब जीव अपने अपने कर्मों के करने में स्वतन्त्र हैं।

(७) प्रश्न - मोक्ष क्या पदार्थ है ?

उत्तर - सब दुष्ट कर्मों से छूटकर सब शुभ कर्म करना जीवन्मुक्ति और सब दुःख से छूट के आनन्द से परमेश्वर में रहना विदेह-मुक्ति कहलाती है।

(८) प्रश्न - धन बढाना अथवा शिल्पविद्या, वैदिकविद्या से ऐसा यन्त्र अर्थात् कला तथा ओषधि निकालना जिससे मनुष्य को इन्द्रियजन्य सुख प्राप्त हो अथवा पापी मनुष्य जो रोगग्रस्त हो उसको ओषधि आदि से नीरोग करना धर्म है वा अधर्म ?

उत्तर - न्याय से धन बढ़ाने, शिल्पविद्या प्राप्त करने और परोपकारिणी बुद्धि से यन्त्र वा ओषधि सिद्ध करने से धर्म और अन्याय द्वारा करने से अधर्म होता है। धर्म में प्रवृत्ति करने के लिये यत्न करना तथा ओषधि आदि से रोग छुड़ाने की इच्छा हो तो धर्म है, इसके विपरीत करने से अधर्म होता है।

(९) प्रश्न - आमिष भोजन से पाप है वा नहीं ? यदि पाप है तो वेद और आप्तग्रन्थों में पशुहिंसा करना यज्ञादिकों में विहित है और भक्षणार्थ हिंसा करना क्यों लिखा है ?

उत्तर - मांसभक्षण में दोष है। जैसे डाकू आदि दुष्ट मनुष्यों को राजा लोग मारते हैं, उसका बन्धन वा छेदन करते हैं, वैसे हानिकारक तथा हिंसक पशुओं को मारना उचित है। वेद और आप्तों ने यज्ञ के लिये पशुहनन कहीं नहीं लिखा। रोगनिवारणादि के बिना इन्द्रियारामता के लिये भक्षणार्थ हिंसा करना वेद व आप्तों ने कहीं नहीं लिखा। हां, वाममार्ग आदि पन्थियों ने आप्तों के लेख में भी अपना झूठ लिखकर मिला दिया है। जैसे 'संवत्सरं तु गव्येन' गाय के मांस के पिण्ड प्रदान करने से पितरों की तृप्ति वर्ष दिन तक होती है। इसी प्रकार भैंसा आदि के पिण्ड भी लिखे हैं। क्या कोई भद्र पुरुष ऐसे दुष्ट वचनों को अङ्गीकार करेगा ?

(१०) प्रश्न - जीव का लक्षण क्या है ?

उत्तर - 'इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्' (इच्छा, द्वेष, चेष्टा,

सुख, दुःख और ज्ञान जिसमें हों वह जीव है) यह न्यायशास्त्रोक्त जीव का लक्षण है ।

(११) प्रश्न – सूक्ष्म यन्त्रों से ज्ञात होता है, कि जल में अनन्त जीव हैं, तो जल का पीना उचित है वा नहीं ?

उत्तर – क्या विद्याहीन लोग अपनी मूर्खता को अपने वचनों से प्रसिद्ध नहीं करा देते ? न जाने यह भूल दुनिया में कब तक रहेगी ? जलपात्र और पात्रस्थ जल अन्तवाले हों, तो उसमें अनन्त जीव कैसे समा सकेंगे ? छानकर वा आँख से देखकर जल का पीना सबको उचित है । जिसको शङ्का हो वह जल पीना छोड़ दे ।

(१२) प्रश्न – मनुष्य के लिये बहुत स्त्री करने का कहां निषेध है ? यदि निषेध है तो धर्मशास्त्र में यह जो लिखा है, कि यदि एक पुरुष के स्त्री बहुत हों, तो उनमें से एक के पुत्र होने से सब पुत्रवती हैं, यह क्यों लिखा ?

उत्तर – मनुष्य को अनेक स्त्रियों के करने का निषेध वेद में लिखा है । संसार में हर कोई अच्छा नहीं होता । जो अनेक अधर्मी पुरुष कामातुर होके अपने विषयसुख के लिये बहुत भी स्त्रियां कर लें, तो उनमें सपत्नीभाव होने से अवश्य विरोध हो जाता है । जब एक के पुत्र होता है, दूसरी विरोध के कारण विषप्रयोग आदि से उसको न मार डाले, इसलिये सबका पुत्रवती होना लिखा है ।

(१३) प्रश्न – आप ज्योतिषशास्त्र के फलित ग्रन्थों को मानते हैं वा नहीं ? और भृगुसंहिता आप्तग्रन्थ है वा नहीं ? और उक्त शास्त्र द्वारा मनुष्यों के दुःख और सुख का ज्ञान होता है वा नहीं ?

उत्तर – हम ज्योतिषशास्त्र के गणितभाग को मानते हैं फलितभाग को नहीं । क्योंकि जितने ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थ हैं, उनमें फलित का लेश भी नहीं है । जो भृगुसिद्धान्त कि जिसमें केवल गणितविद्या है, उसको हम आप्त-ग्रन्थ मानते हैं, इतर को नहीं । ज्योतिषशास्त्र में भूत-भविष्यत्-कालस्थ सुख वा दुःख का विदित होना कहीं नहीं लिखा, सिवाय अनाप्तोक्त ग्रन्थों के ।

(१४) प्रश्न – और ज्योतिषशास्त्र में आप किस सिद्धान्त ग्रन्थ को आप्तग्रन्थ समझते हैं ?

उत्तर – ज्योतिषशास्त्र में जो वेदानुकूल ग्रन्थ हैं, उन सब को हम आप्तग्रन्थ मानते हैं, अन्य को नहीं ।

(१५) प्रश्न – आप पृथ्वी पर सुख, दुःख, विद्या, धर्म और मनुष्य-संख्या की न्यूनता और अधिकता मानते हैं वा नहीं, यदि मानते हैं, तो पहले इनकी वृद्धि थी, अब है या होगी ?

उत्तर – हम पृथ्वी में सुख आदिकों की वृद्धि-क्षय की व्यवस्था सापेक्ष होने से अनियत मानते हैं । मध्यावस्था में बराबर जानो ।

(१६) प्रश्न – धर्म के क्या लक्षण हैं और धर्म सनातन है, परमेश्वरकृत वा मनुष्यकृत है ?

उत्तर – जो पक्षपातरहित न्याय कि जिसमें सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग हो, वह धर्म का लक्षण कहाता है। तथा जो सनातन और ईश्वरोक्त वेदप्रतिपादित है। मनुष्यकल्पित कोई धर्म नहीं।

(१७) प्रश्न – यदि मुहम्मदी अथवा ख्रीष्ट मतानुयायी कोई आपके धर्मानुसार चले और आपके मत में दृढ़ विश्वासी हो, तो आप और आप के मतानुयायी उसको ग्रहण कर सकते हैं वा नहीं ? और उसका पाक किया हुआ भोजन आप और आपके मतानुयायी कर सकते हैं वा नहीं ?

उत्तर – बिना वेदों के हमारा कपोलकल्पित कोई भी मत नहीं हैं। क्या तुमने अंधेरे में गिरकर खाना, पीना, मलमूत्र करना; जूती, धोती, अंगरखा धारण करना; सोना, उठना, चलना, धर्म मान रखा होगा। हाय ! उन कुमति पुरुषों पर कि जिनकी बाहर और भीतर की दृष्टि पर पर्दा पड़ा हो, जो कि जूता पहनना या न पहनना धर्म मानते हैं। सुनो भाईयो और आँख खोल कर देखो ! ये सब अपने अपने देश के रीति-व्यवहार हैं।

(१८) प्रश्न – आपके मत से बिना ज्ञान मुक्ति होती है वा नहीं ? यदि कोई मनुष्य आपके मतानुसार धर्मपर आरूढ हो और ज्ञानहीन हो, तो उसकी मुक्ति हो सकती है वा नहीं ?

उत्तर – बिना परमेश्वर-सम्बन्धी ज्ञान के मुक्ति किसी की नहीं होती, सुनो भाईयो ! जो धर्म पर आरूढ होगा क्या उसको ज्ञान का अभाव हो सकता है वा ज्ञान के बिना धर्म पर पूरी स्थिति मनुष्य कर सकता है ?

(१९) प्रश्न – श्राद्धादिक अथवा पिण्डदानादिक जिसमें पितृतृप्ति के अर्थ ब्राह्मण-भोजनादि कराते हैं, शास्त्रीय हैं या अशास्त्रीय ? यदि अशास्त्रीय हैं तो पितृकर्म का क्या अर्थ है ? और मन्वादिक ग्रन्थों में इनका उल्लेख है वा नहीं ?

उत्तर – जीवित पितरों की श्रद्धा से सेवा करना तथा उत्तम पदार्थों से उनकी तृप्ति करना श्राद्ध और तर्पण कहाता है। वह वेदादिशास्त्रोक्त है। भोजनभट्ट स्वार्थियों का लड्डू आदि से पेट भरना श्राद्ध वा तर्पण शास्त्रोक्त तो नहीं, किन्तु पोपों का अनर्थकारक आडम्बर है। जो मनु आदि ग्रन्थों का लेख है, सो वेदानुकूल मान्य है, अन्य कोई नहीं।

(२०) प्रश्न – कोई मनुष्य यह समझकर कि 'मैं पापों से विमुक्त नहीं हो सकता' आत्मघात करे, तो उसका कोई पाप है वा नहीं ?

उत्तर – आत्मघात करने से पाप ही होता है। पापाचरण का फल भोगे बिना कोई बचता नहीं। पापों से मुक्ति नहीं हो सकती।

(२१) प्रश्न – जीवात्मा सङ्ख्यात हैं वा असङ्ख्यात ? कर्म से मनुष्य पशु अथवा वृक्षादि योनि में उत्पन्न हो सकता है या नहीं ?

उत्तर – ईश्वर के ज्ञान में जीव सङ्ख्यात और जीव के अल्प ज्ञान में असंख्यात हैं। पापादिक करने से जीव पशु, वृक्षादिक योनियों में उत्पन्न होता है।

(२२) प्रश्न – विवाह करना अनुचित है वा नहीं और सन्तानोत्पत्ति करने से किसी पुरुष को पाप होता है वा नहीं, यदि है तो क्यों ?

उत्तर – जो पूर्ण विद्वान् जितेन्द्रिय होकर सर्वोपकार किया चाहे उस पुरुष वा स्त्री को विवाह करना योग्य नहीं, अन्य सबको उचित है। वेदोक्त रीति से विवाह करके ऋतुगामी होकर सन्तानोत्पत्ति करने में कुछ दोष नहीं। व्यभिचार आदि से सन्तान उत्पन्न करने में दोष है, क्योंकि अन्यायाचरणों में दोष हुए बिना कभी नहीं रह सकता।

(२३) प्रश्न – अपने सगोत्र में विवाह करना दूषित है वा नहीं ? यदि हैं तो क्यों है ? सृष्टि के आदि में ऐसा हुआ था वा नहीं ?

उत्तर – अपने सगोत्र में विवाह करने में दोष यों है, कि इससे शरीर और आत्मा में प्रेम व बलादि की उन्नति यथावत् नहीं होती, इसलिये भिन्न गोत्रों में ही विवाह–सम्बन्ध करना उचित है। सृष्टि के आदि में गोत्र नहीं थे, फिर वृथा क्यों परिश्रम किया ? हां, पोपलीला में दक्ष प्रजापति वा कश्यप रूप एक ही व्यक्ति से सब सन्तान मानने से पशुव्यवहार सिद्ध होता है। इसको जो माने सो मानता रहे।

(२४) प्रश्न– गायत्री–जाप से कोई फल है या नहीं ? और है तो क्यों ?

उत्तर – गायत्री का जप जो वेदोक्त रीति से करे तो फल अच्छा होता है, क्योंकि गायत्री के अर्थानुसार आचरण करना लिखा है। पोपलीला के जप के अनर्थरूप फल होने की क्या ही कथा कहना है ? कोई अच्छा वा बुरा किया हुआ कर्म निष्फल नहीं होता।

(२५) प्रश्न – धर्माऽधर्म मनुष्य के अन्तरीय भाव से होता है या कर्म के परिणाम से ? यदि कोई मनुष्य किसी डूबते हुए मनुष्य को बचाने को नदी में कूद पड़े और वह आप डूब जाय, तो उसे आत्मघात का पाप होगा या पुण्य होगा ?

उत्तर – मनुष्य के धर्म और अधर्म भीतर और बाहर की सत्ता से होते हैं, जिनका नाम कर्म और कुकर्म भी है। जो किसी को बचाने के लिये परिश्रम करेगा और परोपकार के लिये जिसका शरीर वियुक्त हो जायगा उसको बिना पाप के पुण्य ही होगा।

प्रश्नों के इन उत्तरों को पढ़कर बाबू बलदेवप्रसाद (जिन्होंने सनातन–धर्मसभा की ओर से उपर्युक्त प्रश्न भेजे थे)ने वैदिक धर्म की सत्यता स्वीकार कर ली और वे आर्यसमाज फर्रुखाबाद के सभासद बन गये।

'मेरी इच्छा बहुतों को मोक्ष दिलाने की है'

एक दिन ला० मोहनलाल ने स्वामीजी से कहा कि शास्त्रोक्त लक्षणों से आप मोक्ष के पूर्ण अधिकारी हैं, क्या आप इसी शरीर से मोक्ष पाने के इच्छुक हैं ? उत्तर में स्वामीजी बोले 'मैं अकेला मोक्ष पाकर क्या करूँगा, मेरी तो यह इच्छा है कि बहुत से मनुष्यों को मोक्ष मिले।

एक दिन एक ग्रामीण बुढिया ने अपने मृत युवा पुत्र के शव को इन्धन के अभाव में बिना दाह-कर्म के ऐसे ही गङ्गा में बहा दिया। इस समाचार को जानकर स्वामीजी शोक में भरकर करुण-स्वर से बोले 'हाय ! हमारा देश इतना निर्धन हो गया है, कि मृतक शरीरों को काष्ठ तक भी नहीं मिल सकता।' ला० मोहनलाल कहते थे, कि स्वामीजी को कभी शोकातुर नहीं देखा था, पर इस घटना के श्रवण से उनके नेत्रों में आंसू भर आये थे।

इस जन्म के अदृष्ट कारणवाले भोग का कारण पूर्वजन्म का कर्म

यहां स्वामीजी के व्याख्यानों में स्थानीय मैजिस्ट्रेट मिस्टर स्काट भी रुचिपूर्वक आया करते थे। वे एक पैर से लंगड़े थे। एक दिन उन्होंने कहा कि कर्मफल का पता नहीं लगता है। स्वामीजी ने उनसे पूछा कि आपके पैर में लंगड़ापन क्यों है ? मि० स्काट ने उत्तर दिया कि 'ईश्वर की इच्छा'। स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर की इच्छा नहीं, यह कर्मफल है। सुख दुःखरूपी भोग का नाम ही कर्मफल है। जिस भोग का कोई कारण दिखाई न दे, वह पूर्वजन्म के कर्मों का फल है।

'मन्दिर तुड़वाना मेरा काम नहीं'

उस समय फर्रुखाबाद के बाजार की नाप हो रही थी। सड़क के बीच में एक छोटा मन्दिर सा था, जिस में लोग धूपदीप जलाया करते थे। बाबू मदनमोहनलाल वकील ने स्वामीजी से कहा, कि मैजिस्ट्रेट आपके भक्त हैं, उनसे कहकर इस मढिया को सड़क पर से हटवा दीजिये। स्वामीजी बोले 'मेरा काम लोगों के मनों में से मूर्तिपूजा को निकलवाना है, ईंट पत्थर के मन्दिरों को तोड़ना तुड़वाना मेरा लक्ष्य नहीं है।'

कानपुर होते हुए प्रयाग को प्रस्थान

८ अक्टूबर १८७९ को स्वामीजी कानपुर पहुंचे और आठ दिन रुक कर उन्होंने वहां केवल वेदभाष्य-रचना का कार्य ही किया। सम्भवतः इसी अन्तराल में यहां आर्यसमाज स्थापित हुआ। १७ अक्टूबर को स्वामीजी प्रयाग पहुंचे और ला० दुर्गाप्रसाद के बाग में ठहरे। इन दिनो स्वामीजी ज्वराक्रान्त थे और सङ्ग्रहणी से भी सर्वथा मुक्त नहीं हुए थे, तो भी उन्होंने यहां तीन व्याख्यान – 'सृष्ट्युत्पत्ति, पुनर्जन्म एवं मृतकश्राद्ध और नवीन वेदान्त पर दिये। यहां भगवान्दास नामक व्यक्ति ने एक दिन उषःकाल में छिपकर देखा कि स्वामीजी ध्यानावस्था में भूमि से छः इंच ऊपर शून्य में अवस्थित हैं।

मिर्जापुर में धर्मोपदेश

प्रयाग से स्वामीजी २३ अक्टू० १८७९ को मिर्जापुर पहुंचे और सेठ रामरतन के बाग में उतरे। यद्यपि स्वामीजी रुग्ण थे, तो भी उपदेशादि परोपकारकार्य में तत्पर थे। यहां उन्होंने तीन व्याख्यान दिये। सेठ रामरतन की कोठी पर 'विद्या के महत्त्व' पर हुए व्याख्यान से श्रोतागण अत्यधिक प्रभावित हुए। श्रोताओं में उपस्थित एक मारवाड़ी सेठ ने अपने साथ आये अपने पुरोहित से पूछा कि 'महाराज! व्याख्यान कैसा हुआ?' पुरोहितजी ने कहा कि 'अच्छा हुआ।' इस पर मारवाड़ी ने पुरोहित से कहा कि 'तो फिर आपने हमें भ्रान्ति के कुए में क्यों डाल रखा है?'

दानापुर में धर्मप्रचार

ता० ३० अक्टू० १८७९ को स्वामीजी मिर्जापुर से दानापुर पधारे और सौदागर जोन्स के बंगले (दीघा लॉज) में उतरे। उनके साथ तीन लेखक पण्डित, एक साधु और एक सेवक था।

बाबू जनकधारीलाल और माधवलाल आदि सज्जनों के प्रयास से ही स्वामीजी का दानापुर आगमन हुआ था। इन सज्जनों ने कन्हैयालाल अलखधारी के प्रभाव से यहां एक 'हिन्दू सत्यसभा' नाम से एक संस्था स्थापित की थी। किन्तु फिर सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका पढ़कर ये लोग स्वामीजी के अनुयायी बन गये और स्वामीजी की अनुमति से इन्होंने अपनी उक्त सभा का नाम अप्रैल १८७९ में ही 'आर्यसमाज' रख लिया था।

३१ अक्टू० को कैम्प मजिस्ट्रेट की व्याख्यानार्थ अनुमति मिलने पर ता० २ नवम्बर को विज्ञापन द्वारा, स्वामीजी के डेरे पर प्रातः ८ से ९.३० तक सत्संग होने की और कटरे में बाबू महावीरप्रसाद की दुकान के सामने सायं व्याख्यान होने की सूचना दे दी गई।

"लोग मानें चाहे न मानें, सत्य कहना हमारा कर्तव्य है"

स्वागतकर्ताओं में से एक बाबू उमाप्रसाद मुकर्जी (हैड क्लर्क कैम्प मजि० ने स्वामीजी से कहा "आपका उपदेश ठीक है, परन्तु यदि लोग हठ से न मानेंगे तो आप क्या करेंगे?" स्वामीजी ने कहा "हमारा काम इतना ही है कि हमारे कथन को लोग कानों में जगह दें और वे पूरे तौर पर सुन लेंगे तो वह सुई की तरह अन्दर चुभ जायगा और निकालने से भी न निकलेगा। यदि उनका मित्र वा प्यारा एकान्त में पूछेगा तो वे स्पष्ट कह देंगे कि ठीक है। हठ या लालच से न कहें तो न कहें।"

दानापुर में स्वामीजी के व्याख्यानों के मुख्य विषय 'सृष्ट्युत्पत्ति, देशोन्नति, वैदिकधर्म, पौराणिक-ईसाई-मुसलमानी-मत-खण्डन, धर्म में एकता की आवश्यकता, ईश्वर की वाणी, शिक्षा का प्रकार और मूर्तिपूजन निषेध' आदि थे।

पौराणिक पण्डित चतुर्भुज भी इन्हीं दिनों दानापुर आये हुए थे। वे लोगों में प्रलाप करते रहे, कि मैंने दयानन्द को अनेक बार शास्त्रार्थ में हराया है, पर उनके आतिथेय श्री नन्दलाल और रामलाल के आग्रह करने पर भी वे स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को तैयार न हुए। फलतः श्री नन्दलाल और रामलाल ने पं० चतुर्भुज से अपना निवास-स्थान खाली करवा लिया। इन्हीं पं० चतुर्भुज और इनके अन्धभक्तों ने मुसलमानों से मेल कर लिया और स्वामीजी को मारने का षड्यन्त्र रचा।

पौराणिकों का दुर्व्यवहार और उसका परिणाम

एक दिन व्याख्यान की समाप्ति पर पं० चतुर्भुज के कुछ लोगों ने स्वामीजी से कहा कि आप झारीसाह के घर पर चलें, वहां पं० चतुर्भुज भी आयेंगे और वहीं शास्त्रार्थ के नियम भी निश्चित कर लें। स्वामीजी उन पर विश्वास करके निर्दिष्ट स्थान पर चले गये। कुछ भद्र पुरुष भी स्वामीजी के साथ थे। वहां जाकर देखा कि पं० चतुर्भुज तो वहां हैं नहीं और उनके अन्धभक्त और मुसलमान उपद्रव हेतु एकत्रित हैं। एक गोविन्दशरण नामक, धर्मसभा के मन्त्री ने 'पं० चतुर्भुजजी को तो आपके दर्शन से ही पांप लगता है, आप मुझसे बात कर लें' ऐसा कहकर दीपक बुझा दिया और उपद्रव-कारियों ने ताली बजाना आरम्भ कर दिया। तब स्वामीजी के साथ आये सूबेदारसिंह आदि ने ललकार कर कहा कि 'दुष्टो! हम तुम सबको मार डालेंगे।' तभी स्वामीजी के भक्तों ने अपनी लालटेन के प्रकाश में स्वामीजी को वहां से बाहर निकाला। पौराणिकों के इस दुर्व्यवहार से सूबेदारसिंह, सौदागरसिंह और जयराजसिंह आदि ने पौराणिक मत त्याग दिया और वैदिक धर्म के सच्चे अनुयायी बन गये।

पौराणिकों के सहयोग से मुसलमानों ने एक दिन एक मौलवी को स्वामीजी के व्याख्यान-स्थल के समीप ही व्याख्यान देने खड़ा कर दिया। उसने इतने जोर से बेहूदा बकना आरम्भ कर दिया, कि स्वामीजी के व्याख्यान में विघ्न पड़ने लगा। शिकायत मिलने पर पुलिस इन्स्पेक्टर गिलबर्ट ने आकर मौलवी का व्याख्यान बन्द करवा दिया और वह स्वयं कुर्सी डालकर वहीं बैठ गया। उस दिन स्वामीजी के व्याख्यान से इन्स्पेक्टर इतना प्रसन्न हुआ, कि वह प्रतिदिन प्रवचन सुनने आता रहा। एक दिन वह एक पादरी और कई अंग्रेज मित्रों को भी साथ लाया।

कहने से भी स्वामीजी ने व्याख्यान-विषय नहीं बदला

एक दिन एक सज्जन ने स्वामीजी से कहा कि आप इस्लाम के विरुद्ध कुछ न कहा करें। उस समय स्वामीजी ने कोई उत्तर न दिया, परन्तु सायङ्काल को जो व्याख्यान दिया, वह आदि से अन्त तक इस्लाम के सिद्धान्तों के विषय में ही दिया, जिसमें उनकी तीव्र समालोचना की गई थी। व्याख्यान का आरम्भ ही इन शब्दों

से किया कि 'कुछ छोकरों के छोकरे मुझसे कहते हैं, कि मुसलमानी मत का खण्डन मत करो, परन्तु मैं सत्य को नहीं छिपा सकता । जब मुसलमानों की चलती थी, तब वे हम लोगों का तलवार से खण्डन करते थे । अब यह अन्धेर देखो कि मुझे उनका जिह्वा मात्र से भी खण्डन करने से निषेध करते हैं ।'

डेरे पर आकर स्वामीजी ने इसी प्रसङ्ग में बताया था, कि एक बार पंजाब के एक नगर में पहले विज्ञापन देकर ईसाईमत के खण्डन पर व्याख्यान दिया । विज्ञापन के कारण कई देशी और विदेशी पादरी भी व्याख्यान सुनने आये थे । घटनाचक्र से जनरल रॉबर्ट्स भी सभास्थान पर पहुंच गये । उस दिन प्रबल युक्तियों के साथ मैंने यथाशक्ति ईसाईमत के दोषों का खण्डन किया था । व्याख्यान की समाप्ति पर जनरल रॉबर्ट्स ने मुझ से हाथ मिलाया और मेरी निर्भीकता की प्रशंसा की ।

स्त्री-सहित नित्य हवनसन्ध्या करने वाले की सन्तान जीवित रहेगी

यहां एक दिन ठाकुरदास सुनार ने स्वामीजी से कहा कि मेरी सन्तानें जीवित नहीं रहती हैं । स्वामीजी ने कहा कि तुम प्रतिदिन अपनी स्त्री को साथ बिठाकर सन्ध्याहवन किया करो, तुम्हारी विपत्ति दूर हो जायेगी । कहते हैं कि ठाकुरदास ने वैसा ही किया । और तत्पश्चात् उसकी जो भी सन्तान हुई जीवित रही ।

इन्हीं ठाकुरदास को स्वामीजी ने बतांया कि अलखनन्दा के उस पार सोमलता मिलती है और वह ११ प्रकार की है ।

दानापुर के एक ठाकुरदास घड़ीसाज को हठपूर्वक प्राणायाम करने से नाभिकमल में बहुत समय से पीड़ा रहती थी । स्वामीजी ने उसे चित लिटाया और उसके घुटने खड़े कराकर और पैर जुड़वाकर अपने पैर उसके पैरों पर रक्खे और उसके सिर को दूसरे मनुष्य के हाथ का सहारा दिलाकर इस प्रकार उठाया कि उसके पैर धरती से न उठने पाये । ऐसा करने से उसका दर्द जाता रहा और फिर कभी न हुआ ।

इन्हीं ठाकुरदास ने स्वामीजी से कहा, कि जब ईश्वर का नाम है तो उसका कुछ रूप भी होगा और उसका प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है ? उत्तर में स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर सर्वव्यापक एवं अतिसूक्ष्म है अतएव अरूप है, उसका साक्षात् ध्यान से होता है । स्वामीजी ने इस घड़ीसाज से घड़ी को खोलना और उसके पुर्जों को यथास्थान लगाना सीखा था ।

स्वामीजी ने इनको एक दिन उपरिचर्चित पं० चतुर्भुज के पास यह कहलाकर भेजा कि यदि पण्डितजी हमारे सामने वेद से मूर्तिपूजा सिद्ध कर दें, तो हम उन्हें ५०० रुपये भेंट करें, परन्तु पण्डितजी ने स्पष्ट कह दिया कि हम उनके सामने नहीं जायेंगे ।

सौदागर जोन्स से धर्मालाप

एक दिन दीघालॉज के मालिक मि० जोन्स सौदागर, मिस्टर शरबियर ओवरसियर और कई पादरी तथा मेमों के साथ स्वामीजी से धर्मालाप करने आये। उनके वार्तालाप का संक्षेप निम्न है -

स्वामीजी - जैसे ईश्वर-रचित सूर्य, चन्द्र, वायु आदि सबके लिये समान हैं, वैसे ही ईश्वरीय धर्म भी सबके लिये समान होना चाहिये कि नहीं ?

जोन्स आदि - अवश्य, सबके लिये समान होना चाहिये।

स्वामीजी - कल्पना कीजिये कि सब धर्मों का (जो लगभग एक हजार हैं) एक मेला लगे और उसमें हर एक धर्म का उपदेष्टा अपने ही धर्म को सच्चा और अन्यों के धर्म को झूठा बतावे अर्थात् प्रत्येक धर्म के झूठा होने में नौ सौ निन्यानवे गवाह होवें तो बताइये कौन सा धर्म सच्चा होगा ?

जोन्स आदि - न्याय के अनुसार तो सभी झूठे हैं।

स्वामीजी - नहीं, सब धर्म सर्वथा झूठे नहीं है। हर एक में कुछ न कुछ सच्चाई है। कोई जिज्ञासु उस मेले में हर सम्प्रदाय (= धर्म) के उपदेशक के पास जाकर पूछे कि सत्य बोलना, चोरी न करना आदि अच्छा है अथवा झूठ बोलना, चोरी करना आदि ? तो सभी उपदेशक यही कहेंगे, कि सत्य बोलना आदि अच्छा है और झूठ बोलना आदि बुरा है। इसी प्रकार उन सब बातों को जिनमें सबका एक मत है, वह एकत्र कर लेता है, तो बस वही सत्य धर्म है। वही ईश्वरीय धर्म है। ऐसी ही बातें वेद की हैं, जो सर्वग्राह्य हैं, सबके लिये समान हैं। इस धर्म में कहीं नहीं लिखा, कि किसी व्यक्ति का आश्रय लिये बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। जैसा कि कुरान में मुहम्मद साहब का और बाइबल में ईसा पर ईमान लाये बिना मुक्ति को असम्भव बताया है। अब आप इस पर अपने विचार बताइये ?

जोन्स आदि - आप इस प्रकार से कथन करते हैं, उसके विरुद्ध कुछ कहना अखरता है। परन्तु जब आपके ऐसे विचार हैं तो आप छूतछात क्यों मानते हैं ? हमारे साथ ख़ाने में आपको क्या आपत्ति है ?

स्वामीजी - किसी के साथ खाने न खाने में धर्म-अधर्म की बात नहीं है। उसमें देश और जातीय रीतिनीति की बात है। जैसे आप अपनी पुत्री का विवाह किसी देशी ईसाई से इसीलिये तो नहीं करेंगे, क्योंकि वह देश की और जाति की रीतिनीति के विरुद्ध है।

जोन्स आदि - आप रामचन्द्रजी को ईश्वर मानते हैं कि नहीं ?

स्वामीजी - नहीं।

जोन्स - हिन्दू मूर्ति क्यों पूजते है ?

स्वामीजी – अविद्या के कारण, जैसे बहुत से ईसाई भी ईसा-मरियम की मूर्ति पूजते हैं। मूर्तिपूजा हिन्दूओं का धर्म नहीं है, क्योंकि वेदादि सत्य शास्त्रों में मूर्तिपूजा का विधान नहीं हैं। ऐसा हो सकता है कि स्मृति हेतु कुछ लोगों ने महापुरुषों की मूर्तियां बनाई होंगी, पीछे लोग उनकी पूजा करने लगे। यह बात हिन्दुओं और ईसाइयों में समान है।

एक अन्य दिन जोन्स साहब से वार्तालाप में स्वामीजी ने बताया कि 'जिस कार्य से बहुत से लोगों का उपकार हो वही पुण्य है।' इसे मि० जोन्स ने स्वीकार किया। तब स्वामीजी ने उन्हें समझाया कि गौ की रक्षा करने से सहस्रों मनुष्यों का उपकार होता है, अतः गोरक्षा पुण्य है और गोवध पाप है। इस वार्तालाप के अन्त में जोन्स साहब ने गोमांस कभी न खाने की प्रतिज्ञा की।

दानापुर में माधवलाल आदि सज्जनों ने स्वामीजी से विधिवत् यज्ञोपवीत भी लिया था।

दलितों की चिन्ता से स्वामीजी की व्याकुलता

एक रात्रि में स्वामीजी अचानक उठकर इधर-उधर टहलने लगे। उनके पांव की आहट से एक कर्मचारी की भी आँख खुल गई। उसने पूछा कि महाराज! कोई कष्ट है? उन्होंने एक लम्बा श्वास लेकर कहा, कि ईसाई लोग दलितों को ईसाई बनाने का भरसक यत्न कर रहे हैं और रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं। इधर हिन्दुओं के धर्मनेता हैं कि जो कुम्भकर्ण की नींद सो रहे हैं। यही चिन्ता मुझे व्याकुल कर रही है।

काशी में धर्मदुन्दुभि-नाद

ता० १९ नवम्बर १८७९ को स्वामीजी दानापुर से प्रस्थान करके काशी पहुंचे और विजयनगराधिपति के आनन्द बाग में ठहरे। स्वामीजी संग्रहणी के कारण दुर्बल थे। १ दिसम्बर १८७९ को एक विज्ञापन छपवाकर काशी के सभी मुख्य स्थानों पर चिपकवा दिया गया। यह विज्ञापन स्वामीजी के लेखक पण्डित भीमसेन की ओर से निकलवाया गया था। विज्ञापन की मुख्य बातें इस प्रकार थीं –

"सबको विदित हो कि पं० स्वामी दयानन्द सरस्वती काशी में आकर आनन्द बाग में ठहरे हैं। वे वेद के विरुद्ध कुछ भी नहीं मानते। ईश्वर के वेदोक्त गुण-कर्म-स्वभाव, सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण, आप्तों का आचरण और सिद्धान्त तथा आत्मा की पवित्रता इन पांच परीक्षाओं से असत्य सिद्ध होने वाली बातों का वे खण्डन करते हैं। अतएव पाषाणादि मूर्तिपूजा, जल तथा स्थलविशेष में पापनिवारण की शक्ति मानना; व्यास के नाम से छल से प्रसिद्ध नवीन लोगों द्वारा रचित ब्रह्मवैवर्त आदि

पुराण, परमेश्वर के अवतार व ईश्वर का पुत्र होके अपने विश्वासियों के पाप क्षमा कर मुक्ति देने हारे का मानना, उपदेश के लिये अपने मित्र पैगम्बर को पृथ्वी पर भेजना, पर्वतों का उठाना, मुर्दों का जिलाना, चन्द्रमा के टुकड़े करना, कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति मानना, ईश्वर को नहीं मानना, स्वयं ब्रह्म बनना अर्थात् ब्रह्म के अतिरिक्त वस्तु कुछ भी न मानना, जीव ब्रह्म को एक ही समझना; कण्ठी, तिलक तथा रुद्राक्ष आदि धारण करना और जो शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सम्प्रदाय आदि हैं, इन सबका स्वामीजी खण्डन करते हैं। जिस किसी को इन विषयों पर शास्त्रार्थ करना अभीष्ट हो, वह सभ्यतापूर्वक नियमानुसार शास्त्रार्थ करे। शास्त्रार्थ लिखित होगा। सत्याऽसत्य का निर्णय करना विद्वानों का मुख्य कार्य है। यदि काशी के विद्वान् शास्त्रार्थ करके सत्याऽसत्य का निर्णय न करेंगे, तो यह उनके लिये अत्यन्त लज्जा की बात होगी।"

जब १५ दिन तक कोई भी शास्त्रार्थ-हेतु न आया तो एक विज्ञापन और दिया गया कि २० दिसम्बर से बंगाली टेले के स्कूल में स्वामीजी का व्याख्यान होगा। इस सूचना से पौराणिकों में खलबली मच गई। उन्होंने उसी अन्तराल में पड़ने वाले मुहर्रम की आड़ लेकर काशी के मजिस्ट्रेट मिस्टर बाल से मिलकर स्वामीजी के व्याख्यानों पर प्रतिबन्ध लगवा दिया। अतः २० दिस० को स्वामीजी के भक्त बने कर्नल अल्काट (थियोसोफिकल सोसायटी के प्रवर्तक) का ही व्याख्यान हुआ।

मजिस्ट्रेट द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध के विरोध में 'स्टार', 'पायोनियर' तथा 'थियोसोफिस्ट' आदि अखबारों में उनके सम्पादकों ने टिप्पणियां लिखीं। स्वामीजी ने भी लेफ्टि० गवर्नर और चीफ कमिश्नर को पत्र लिखा था। परिणामतः उक्त मजिस्ट्रेट ने स्वामीजी से लगभग एक घण्टे तक वार्तालाप करने के बाद व्याख्यानों पर से प्रतिबन्ध हटा लिया और ता० २१ मार्च १८८० से व्याख्यान-माला आरम्भ हो गई। पहला व्याख्यान 'सृष्टि' विषय पर था।

वैदिक-यन्त्रालय की स्थापना

स्वामीजी की व्याख्यान-माला आरम्भ होने से पूर्व काशी में एक विशेष कार्य हुआ। अब तक स्वामीजी के ग्रन्थ काशी की लाजरस कम्पनी के प्रेस में छपते थे। परन्तु इससे बड़ी असुविधा होती थी। अतः आर्यजनों के परामर्श और उत्साह से ता० १२ फरवरी १८८० (माघशु० २ संवत् १९३६ विक्रमी) को लक्ष्मी कुण्ड पर स्वामीजी ने स्वयं के प्रिंटिंग प्रेस 'वैदिक यन्त्रालय' की स्थापना कर दी। इस प्रेस के लिये बाद में आर्यसमाज फर्रुखाबाद ने ३१५० रुपये की और आर्यसमाज मेरठ ने ४२८ की सहायता की। राजा जयकिशनदास ने भी इसमें सहयोग किया। इस प्रेस के सर्वप्रथम प्रबन्धकर्ता मुंशी बख्तावरसिंह नियुक्त हुए थे।

काशी-आर्यसमाज की स्थापना

इसी वैदिक यन्त्रालय की छत पर सायं ६ से ८ बजे तक स्वामीजी के व्याख्यान हुआ करते थे। २१ मार्च से १५ अप्रैल तक काशी में स्वामीजी के कुल २० व्याख्यान हुए थे। १५ अप्रैल १८८० को ही काशी में आर्यसमाज की स्थापना भी हुई।

एक दिन डिपुटी कलेक्टर और प्रसिद्ध साहित्यसेवी बाबू सीताराम भी स्वामीजी से मिलने आये थे। पीछे उन्होंने स्वामीजी के जीवनचरित के प्रसिद्ध अनुसन्धानकर्ता श्री देवेन्द्रनाथ मुखोयाध्याय से कहा था, कि भारत में स्वामी दयानन्द के समान कोई संस्कारक उत्पन्न नहीं हुआ। वेदप्रतिष्ठा और गोरक्षा ये दो ही ऐसे विषय हैं, जिन पर सारे हिन्दू एक मत हो सकते हैं और स्वामीजी ने विशेषतः इन्हीं दो विषयों का अवलम्बन किया था।

स्वामीजी के व्याख्यानों में काशी के अनेक पण्डित गुप्तरूप से व्याख्यान सुनने आते थे। स्वामीजी को इसका ज्ञान था। वे पण्डितों को लक्ष्य करके कहा करते थे, कि जो पहलवान कुश्ती के लिये ललकारे जाने पर भी कुश्ती के लिये सामने नहीं आता वह कैसा पहलवान है?

मुंशी बख्तावरसिंह, मुंशी समर्थदान और मेरठवासी लाला शादीराम ने स्वामीजी से विधिपूर्वक यज्ञोपवीत लिया था।

एक नवीन वेदान्ती ने एक दिन गीता के 'भ्रामयन् सर्वभूतानि' श्लोक को उद्धृत करते हुए स्वामीजी से कहा कि 'जो कुछ करता है ईश्वर ही करता है, जीव कुछ नहीं करता'। स्वामीजी ने कहा कि इसका अर्थ यह है कि 'ईश्वर पृथ्वी आदि सब भूतों (= महाभूतों) को घुमा रहा है'। इस अर्थ को सुनकर उक्त पण्डित ने तथा उपस्थित श्रोताओं ने इस अर्थ की सत्यता को स्वीकार किया।

विद्याहीन ब्राह्मण काठ के हाथी के समान निरर्थक

एक दिन एक पण्डित ने व्याकरण महाभाष्य के 'विद्या तपश्च योनिश्च एतद् ब्राह्मणकारकम्। विद्यातपोभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः' श्लोक को उद्धृत करके वर्णव्यवस्था को जन्मगत सिद्ध करने का प्रयास किया। उसके उत्तर में स्वामीजी ने तुरत मनु (२.१५७) का "यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः। यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति" श्लोक उद्धृत करके विद्याहीन ब्राह्मण को काठ के हाथी के समान निरर्थक बताया।

काशी के प्रसिद्ध पण्डितों की स्वामीजी के विषय में सम्मति

स्वामीजी के भक्त पं० कृष्णराम इच्छाराम भी इन दिनों काशी पहुंच गये थे। वे अनजान बनकर काशी के पण्डितों से मिले थे, और स्वामीजी के विषय में उनका मन्तव्य पूछा था। इस क्रम में पं० बालशास्त्री ने कहा था "दयानन्द विद्वान् हैं,

इसमें सन्देह नहीं है, परन्तु मूर्तिपूजा का खण्डन उनके लिये सम्भव है, हमारे लिये नहीं" । पं० बापूदेव शास्त्री ने भी स्वामीजी की विद्वत्ता की प्रशंसा की । स्वामी विशुद्धानन्दजी से मिलने पर पं० कृष्णराम इच्छाराम ने उनसे 'अग्निमीडे' मन्त्र का, स्वामी दयानन्द-कृत वेदभाष्य की पद्धति से सप्रमाण अर्थ करके दयानन्दीय अर्थ का खण्डन करने को कहा, तो वे खिज गये और खण्डन न हो सका तो क्रोध में बोले 'भाई हम मूर्ख हैं, तुम्हारा दयानन्द विद्वान् है, तुम हमारे पास से चले जाओ' ।

"मैं दुकानदार के समान कर्तव्य से आगे पीछे नहीं होऊँगा"

वेंकटगिरि के महाराजा दो तैलंग ब्राह्मणों के साथ स्वामीजी से मिलने आये । उन्होंने अन्य बातों के समाधान होने के पश्चात् स्वामीजी से निवेदन किया कि 'मूर्तिपूजा के विषय में आपकी बात कई अंशो में ठीक है, परन्तु यदि आप अन्य बातों का प्रचार करें और मूर्तिपूजा की बात सबसे पीछे के लिये रक्खें, तो आपके वेदभाष्य के लिये ज़ितने धन की आवश्यकता होगी हम देंगे' । स्वामीजी ने यह सुनकर कुछ आवेश के साथ कहा कि "आप इन बातों को नहीं समझते । मैं क्या कोई दुकानदार हूं, जो रुपये के कारण अपने कर्तव्य को आगे पीछे करूँ" ।

स्वामीजी के सङ्ग्रहणी रोग का कारण अनेक बार विषप्रयोग

एक दिन अनूपशहरनिवासी प्रेमी भक्त पं० भगवान्वल्लभ वैद्य स्वामीजी से बहुत समय बाद मिलने आये । उन्होंने स्वामीजी की नाड़ी देखकर ग्रहणी-सञ्चार बताया । स्वामीजी ने कहा कि 'मुझे कई बार विष दिया गया है और यह रोग उसी का परिणाम है' । वैद्यजी ने कहा कि सुश्रुत में ऐसा ही निर्देश भी किया गया है ।

ब्राह्मणादि वर्ण जन्म-गत नहीं

स्वामीजी ने एक दिन प्रसङ्ग में बताया कि ब्राह्मण आदि वर्ण जन्मगत नहीं हो सकते । यदि ऐसा हो तो एक ब्राह्मण के दो पुत्रों में से एक ईसाई और एक मुसलमान हो जाय, तो क्या वे फिर भी ब्राह्मण ही माने जायेंगे ? यदि नहीं माने जायेंगे तो फिर जन्म से ब्राह्मणत्व कहां रहा ?

'मेरा खण्डनकर्म हित और सुधार के लिये'

एक दिन पं० हरिश्चन्द्र ने स्वामीजी से कहा कि आपके खण्डनकार्य से वैरविरोध बढ़ता है, तो स्वामीजी ने उन्हें समझाया कि मेरा उद्देश्य सबको ऐसे आपस में मिलाना है, जैसे जुड़े हुए हाथ । मैं भील से ब्राह्मण तक में एकता की - राष्ट्रीयता की ज्योति जगाना चाहता हूं । मेरा खण्डन हित और सुधार के लिये है ।

जहां आर्यसमाज नहीं वहां आर्य क्या करें ?

एक दिन एक सज्जन ने पूछा कि जहां आर्यसमाज नहीं वहां अपने धार्मिक

जीवन को परिपुष्ट बनाये रखने के लिये आर्यजन क्या उपाय करें ? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि ऐसे स्थान में यदि कोई आर्य अकेला हो तो स्वाध्याय करे, यदि दो हों तो आपस में प्रश्नोत्तर और संवाद करें और तीन या अधिक हों तो परस्पर सत्सङ्ग और किसी धार्मिक ग्रन्थ का पाठ करें ।

'भ्रमोच्छेदन' पुस्तक के निर्माण का कारण

काशी में पर्याप्त समय तक धर्मप्रचार करने के पश्चात् स्वामीजी का विचार हुआ कि मई मास (सन् १८८० ई०) के आरम्भ में अन्यत्र जाया जाय । इसी उद्देश्य से प्रस्थान से कई दिन पूर्व एक विज्ञापन छपवाकर बटवाया गया, कि स्वामीजी ५ मई १८८० को काशी से प्रस्थान करेंगे, यदि किसी को संशय हो तो आनन्दबाग में आकर निवारण कर ले । स्वामीजी इस बार कई मास काशी में रहे, शास्त्रार्थ-हेतु विज्ञापन बांटे, बीसियों सार्वजनिक व्याख्यान भी दिये । परन्तु न किसी ने प्रश्न किया और न शङ्का प्रस्तुत की । किन्तु प्रस्थान करने के दिन एन रेलगाड़ी के समय से कुछ ही पूर्व राजा शिवप्रसाद सी०एस०आई० (इन्स्पेक्टर शिक्षा-विभाग) की ओर से एक छपी हुई प्रश्नावली स्वामीजी के पास भेजी गई । स्वामीजी ने तुरत सन्देश भिजवाया कि रेलगाड़ी पर जाने को तैयार बैठा हूं, समय अत्यल्प है और स्वयं आकर शङ्काओं का समाधान सुन जाइये । पर राजा महोदय नहीं आये । यह प्रश्नावली वास्तव में स्वामी विशुद्धानन्द की तैयार की हुई थी । पीछे स्वामीजी ने इस प्रश्नावली के उत्तर में 'भ्रमोच्छेदन' नामक पुस्तक लिखकर प्रकाशित की ।

लखनऊ में धर्मप्रचार और आर्यसमाज-स्थापना

काशी से स्वामीजी ता० ५ मई १८८० को लखनऊ पहुंचे और मोतीमहल में ठहरे । यहां स्वामीजी के चार व्याख्यान हुए । जिनमें प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ क्रमशः गोरक्षा, सद्धर्म-समर्थन और जैनमतखण्डन पर हुआ । ९ मई १८८० को लखनऊ आर्यसमाज की स्थापना हो गई । आरम्भ के ९ सभासदों में एक मुसलमान भी था ।

पं० यज्ञदत्त और एक रामानुज-मतानुयायी को 'अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते' (ऋ०९.८३.१) के प्रसङ्ग में स्वामीजी ने बताया कि 'तप्ततनूः' का अर्थ जप, तप, यम, नियम आदि से इन्द्रियों को वश में करना है, शरीर को जलाना या उसको दागना नहीं है ।

फर्रुखाबाद में धर्मोपदेश और आर्यसमाज-स्थापना

लखनऊ से स्वामीजी कानपुर होते हुए २० मई १८८० को फर्रुखाबाद पधारे और ला० कालीचरण रामचरण के बाग में उतरे । यहां २४ मई से २८ मई तक स्वामीजी के पांच व्याख्यान सेठ माधोलाल के बाड़े में हुए ।

ता० २९ मई १८८० को एक व्याख्यान मुंशी गौरीलाल के निवास स्थान पर

हुआ और उसी दिन वहीं आर्यसमाज फर्रुखाबाद की स्थापना हो गई और मन्त्री भी मुंशी गौरीलाल नियुक्त हुए। ये मुंशी गौरीलाल वही थे, जो कभी अपने आपको किसी भी मत का अनुयायी नहीं मानते थे, किन्तु स्वामीजी द्वारा उपदिष्ट वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन सुनकर, स्वामीजी के पूर्व फर्रुखाबाद-प्रवास के समय से ही वैदिक धर्म पर विश्वासी बन गये थे।

मद्य-मांस-सेवी योगाभ्यास के अयोग्य

५ जून को स्वामीजी का प्रभावशाली व्याख्यान 'योगाभ्यास' विषय पर हुआ। उसमें योग की सिद्धियों का भी वर्णन था। जिला मजिस्ट्रेट मि० स्कॉट और जोइंट मजि० डानिस्टन भी श्रोताओं में थे। उन्होंने पूछा कि 'क्या हम लोग भी योगाभ्यास में सफल हो सकते हैं'। इस पर स्वामीजी ने कहा कि मद्य-मांस का सेवन करते हुए योगाभ्यास का सेवन सम्भव नहीं है। यदि आप इन वस्तुओं का त्याग कर दें और नियमपालन करें तो योग में सफल हो सकते हैं।

'पार्वती पहाड़ की पुत्री नहीं'

१३ जून को 'सृष्टिक्रम के अनुकूल ग्राह्य और विरुद्ध अग्राह्य' विषय पर व्याख्यान देते हुए स्वामीजी ने बताया कि पार्वती हिमाचल पहाड़ की पुत्री नहीं थी, अपितु हिमाचल अथवा हिमालय नाम के मनुष्य की पुत्री थी। पार्वती के मैल से गणेश का शरीर नहीं बनाया गया था, अपितु अपने जाये पुत्र का नाम उन्होंने गणेश रखा होगा। २७ जून को हुए अन्तिम व्याख्यान में वेद के अन्तःप्रमाणों से और शतपथब्राह्मण तथा षड्दर्शनों की साक्षी से वेदों का ईश्वरोक्त होना सिद्ध किया।

वेदभाष्य की शीघ्र पूर्ति-हेतु विशेष चन्दा

मुंशी हरनारायण ने स्वामीजी की रुग्णता को देखते हुए वेदभाष्य की शीघ्र पूर्णता के लिये आर्यजनों के समक्ष पर्याप्त आर्थिक सहायता हेतु एक प्रस्ताव रखा। तदनुसार उसी समय १३५० रु० का चन्दा हो गया और वेदभाष्य के ११ नये ग्राहक बने। बा० दुर्गाप्रसाद के प्रस्ताव पर एक धर्मार्थ-कोष स्थापित हुआ। जिसमें स्वयं प्रस्तावक ने ५०० रुपये दिये।

'धर्मप्रचार में उचित सीमा तक अत्याचार भी सहन करो'

यहां के एक आर्य चौबे तोताराम को पौराणिक पहलवान पुत्तूलाल शुक्ल और नारायण दुबे ने छेड़छाड़ करके पीट दिया। उपर्युक्त मि० स्कॉट की अदालत में दोनों पर अभियोग चला। फलतः शुक्ल को २० रु० का अर्थदण्ड और दुबे को तीन मास की जेल हुई। यह घटना स्वामीजी के इस बार फर्रुखाबाद आने से पूर्व की है। स्वामीजी को इस घटना की जानकारी जब मि० स्कॉट ने दी तो स्वामीजी ने उनसे कहा, कि संन्यासी तो अपने घातक को पीड़ा पहुंचती देख प्रसन्न नहीं होते। और

आर्यसमाजियों से कहा कि 'यदि तुम इस प्रकार मुकदमेबाजी करोगे, तो धर्म और देश का क्या सुधार कर सकोगे ? जिन्हें सन्मार्ग पर लाना है, उन्हें कैद में पहुंचाना सुधार की शैली नहीं है । घूंसे का बदला घूंसा नहीं है । यदि पौराणिकभाई तुम पर कोई अत्याचार करें, तो उचित सीमा तक उसे सहना चाहिये, जब उन्हें ज्ञान होगा, वे स्वयं पश्चात्ताप करेंगे और तुमसे प्रेम प्रकट करेंगे ।'

'पाप का कारण' । 'सत्पुरुषों की कसौटी' । 'स्वार्थ की परिभाषा'

२५ जून १८८० को मुंशी नारायणदास मुख्त्यार ने स्वामीजी से तीन प्रश्न पूछे थे, उनका उत्तरसहित विवरण निम्न० है –

प्रश्न – मनुष्य पाप क्यों करता है ?

उत्तर – लोभादि के वशवर्ती होकर, बुद्धि की चंचलता से, मादक-द्रव्य के सेवन से, दुष्ट पुरुषों के संग से और मिथ्या ज्ञान से पाप में प्रवृत्ति होती है ।

प्रश्न – सत्पुरुषों की कसौटी क्या है ? और उनसे मिलना कैसे हो सकता है ?

उत्तर – न्यायप्रियता, स्वार्थत्याग, पराये हित में योग देना आदि उत्तम गुण सत्पुरुषों की कसौटी है । ऐसे पुरुष अपने उत्तम गुण और स्वभाव से पहिचाने जाते हैं । वे सत्यभाषण, परोपकार, उदारता, न्यायकर्तृत्व, ईश्वरभक्ति और दयालुता आदि गुणों से युक्त होते हैं । तलाश करने वाले को सब कुछ मिल जाता है । जो ढूंढ़ता है सो पाता है । विद्या व सत्सङ्ग से प्रत्येक मनुष्य सत्पुरुष बन सकता है ।

प्रश्न – स्वार्थ किसे कहते हैं ?

उत्तर – धर्मपूर्वक उपायों से अपनी उन्नति अर्थात् वृद्धि करना स्वार्थ कहलाता है । परन्तु इस समय के लोग येन केन प्रकारेण धर्माऽधर्म के विवेकरहित उपायों से अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं और परहानि और परदुःख का कुछ भी विचार नहीं करते, इस प्रकार वे स्वार्थान्ध हैं । परार्थ तथा परोपकार वह है, जिसके आचरण से मनुष्यों के दुःख की निवृत्ति हो ।

आतिथ्य-धर्म पर स्वामीजी का विशेष ध्यान

स्वामीजी अतिथि-सत्कार पर विशेष ध्यान देते थे । एक दिन 'भारतसुदशाप्रवर्तक' अखबार के सम्पादक पं० गणेशप्रसाद रात्रि ९ बजे तक स्वामीजी के पास सामाजिक कार्यार्थ उपस्थित रहे । स्वामीजी ने उन्हें मिष्टान्न और फल आदि खिलाना चाहा । उनके संकोच करने पर ''रामचन्द्रजी तक ने वनस्थ मुनियों के द्वारा प्रदत्त कन्दमूल आदि ग्रहण किये थे'' कहकर उन्हें आग्रहपूर्वक भोज्य पदार्थ खिलाये । एक दिन स्वामीजी भोजन करने को बैठने ही वाले थे, कि उसी समय मेरठ से एक सज्जन

आ गये । स्वामीजी ने उन्हें देखकर, पहले उन्हें भोजन कराया और फिर स्वयं भोजन किया ।

'यज्ञ में मांसहोम वेदविरुद्ध है; मन्त्रभाग ही वेद है'

एक दिन गोस्वामी नारायणजी के समक्ष स्वामीजी ने शङ्का-समाधान के प्रसंग में प्रबल युक्ति और प्रमाणों से यज्ञ में मांसविधान का खण्डन किया तथा उसे वेदविरुद्ध बताते हुआ कहा, कि यज्ञ का नाम ही 'अध्वर' है जिसका अर्थ ही 'हिंसारहित कर्म' है । इसी प्रकार मन्त्रसंहिता-भाग का नाम ही 'वेद' है, ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं, इसको भी भलीभांति सिद्ध कर दिया । गोस्वामीजी इस वार्तालाप से पूर्णतया सन्तुष्ट हो गये और तब से आर्यसामाजिक कार्यों में सहयोग करते रहे ।

मैनपुरी में धर्मोपदेश और आर्यसमाज-स्थापना

फर्रुखाबाद से चलकर स्वामीजी १ जुलाई १८८० को मैनपुरी पहुंचे और करमल दरवाजे के बाहर थानसिंह सोहिया के बाग में ठहरे । आरम्भ में दो दिन तक सैंकडों मनुष्यों ने स्वामीजी से नाना शङ्काओं का समाधान प्राप्त करके सन्तुष्टि और तृप्ति प्राप्त की । पीछे आकटगंज में शामियाने में तीन दिन स्वामीजी के दो व्याख्यान क्रमशः 'धर्म के स्वरूप और उसके गूढ तत्त्व'; 'ईश्वर की सत्ता और उसके गुण' विषय पर हुए । श्रोताओं में नगर के प्रतिष्ठित जनों के अतिरिक्त कलेक्टर और जज भी थे । सभी लोग व्याख्यानों से अति प्रभावित हुए । तीसरा दिन सन्देहनिवृत्ति हेतु रखा गया था । उस दिन एक घोर नास्तिक अंग्रेज डॉक्टर भी अपने प्रश्नों के तर्कपूर्ण उत्तर सुनकर मौन साध गया । 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' (यजु०५.१५) आदि मन्त्र में तीन प्रकार के पद रखने का अभिप्राय स्वामीजी ने यह बतलाया कि ईश्वर पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीनों में परिपूर्ण है । "कोई भूमि पवित्र है वा नहीं ?" इस प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने कहा कि 'यदि कोई हिमालय पर भी पाप करेगा तो उसका भी फल भोगेगा' ।

समाप्ति पर मिर्जा अहमदअली बेग ने अनेकशः धन्यवाद देते हुए कहा, कि जब इस देश में स्वामीजी जैसे विद्वान् हुए होंगे, तब अवश्य ही दूर देशों के लोग यहां विद्योपार्जन के लिये आया करते होंगे' ।

स्वामीजी के मैनपुरी से प्रस्थान करने के ५ दिन बाद (= ११ जुलाई १८८० को) मैनपुरी में आर्यसमाज स्थापित हो गया ।

मेरठ में धर्मप्रचार

मैनपुरी से भारौल होते हुए स्वामीजी ८ जुलाई १८८० को मेरठ पहुंचे और छावनी में ला० रामशरणदास की कोठी पर उतरे । शङ्कासमाधान तथा व्याख्यानों द्वारा स्वामीजी वैदिक धर्म के सत्य सिद्धान्तों के प्रचार में लग गये ।

रमाबाई को आजीवन स्त्री-शिक्षा में लगने की प्रेरणा

आर्यसमाज मेरठ की कन्या-पाठशाला के लिये एक सुयोग्य अध्यापिका की आवश्यकता थी। एक रमाबाई नामक संस्कृतज्ञा महाराष्ट्रीय महिला का पता लगने पर उसे तदर्थ बुलाया गया और बाबू छेदीलाल गुमाश्ते के बंगले पर ठहराया गया। उसके साथ एक स्त्री और एक पुरुष भृत्य भी थे। यहां रमाबाई के चार-पांच व्याख्यान भी करवाये गये। स्वामीजी पं० ज्वालादत्त को उसका व्याख्यान सुनने भेजा करते थे, जिससे वह उसका सार उन्हें सुना दिया करे। कुछ दिन तक रमाबाई ने स्वामीजी से वैशेषिक दर्शन पढ़ा था। उस समय स्वामीजी की आज्ञा से पं० भीमसेन, पं० ज्वालादत्त, पं० पालीराम और बाबू ज्योतिःस्वरूप उपस्थित रहते थे। रमाबाई को पढ़ाने में स्वामीजी का यह उद्देश्य था कि वह आजीवन ब्रह्मचारिणी रह कर प्राचीन ऋषिकाओं की भांति भारतवर्ष में स्त्रियों की शिक्षा में तल्लीन होवे। ऐसी प्रेरणा स्वामीजी ने रमाबाई को की। पर वह इसे स्वीकार न कर सकी। वास्तव में वह स्वामीजी के पास मात्र इसलिये आई थी, कि अपने एक बंगाली कायस्थ मित्र विपिनबिहारी के साथ विवाह करने को स्वामीजी शास्त्रसम्मत सिद्ध कर दें। स्वामीजी का उद्देश्य ऐसी संस्कृतज्ञा महिला को स्त्री-शिक्षाप्रचार में लगाने का था।

रमाबाई की विदाई और स्वामीजी के विषय में उसकी सम्मति

रमाबाई द्वारा ऋषिकावत् स्त्रीशिक्षा में जीवन लगाने में अरुचि दिखाने पर स्वामीजी हताश हुए और उन्होंने कहा कि 'यदि हम जानते कि रमाबाई स्वदेश के पुनरुद्धार के लिये कार्य करना स्वीकार नहीं करेगी, तो हम कदापि अपने नियम के विरुद्ध उसे शास्त्र पढ़ाने को उद्यत न होते।' अन्त में रमाबाई को ससम्मान मेरठ से विदा कर दिया गया। आर्यसमाज मेरठ की ओर से १२५ रु० तथा एक थान उसे भेंट में दिया गया। स्वामीजी ने स्वरचित ग्रन्थ भेंट में दिये। पीछे स्वामीजी के जीवन-चरित के प्रसिद्ध गवेषक देवेन्द्रबाबू के पत्र के उत्तर में ता० १३ नवम्बर १९०३ को रमाबाई ने लिखा था, कि "मैं मेरठ में आर्यसमाज के एक सभासद् के गृह पर ठहरी थी। मैं उस समय स्वामीजी की विशेष शिक्षाओं से सर्वथा अनभिज्ञ थी। मैं मेरठ में तीन सप्ताह से अधिक रही। और इस कारण मुझे आर्यसमाज के मुख्य मन्तव्यों को स्वयं उसके प्रवर्तक से सीखने का अवसर मिला। स्वामीजी के सम्बन्ध में जो भाव मेरे मन पर अङ्कित हैं, वे वास्तव में बहुत उत्तम हैं। वे सर्वभावेन् दयास्वरूप थे। वे प्रांशु-विशाल-दर्शन भद्र पुरुष थे। वे सच्चे और शुद्ध भावयुक्त पितृप्रकृति के पुरुष थे। उनका मेरे साथ वर्ताव कृपापूर्ण और पितृतुल्य था। वे शुद्ध भाषा प्रभावोत्पादक स्वर में बोलते थे। वे कभी हिन्दी और कभी संस्कृत में बातें किया करते थे। परन्तु संस्कृत उनकी प्यारी भाषा थी। वे दर्शनों में वैशेषिक दर्शन को सबसे अधिक पसन्द करते थे। उनकी शिक्षा अद्वैत वेदान्त से भिन्न थी

और उस समय मैं केवल एक इसी बात में सहमत थी । उन्होंने मुझसे यह कहा था कि 'मैं चाहता हूं कि तुम आर्यसमाज में सम्मिलित हो जाओ, मैं तुम्हें शिक्षा दूंगा और तुम्हें आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार के लिये तैयार करूँगा' । मैं धार्मिक विषयों में अव्यवस्थित थी, अतः मैंने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया ।... स्वामी दयानन्द स्त्रियों के लिये धर्म (शिक्षा) की आवश्यकता स्वीकार करते थे । वे कहते थे कि स्त्रियां वेद पढ़ सकती हैं, जिसकी कि हिन्दूधर्म आज्ञा नहीं देता था । इस कारण से कि हिन्दूधर्म स्त्रियों और शूद्रों से द्वेष करता था । मेरी आत्मा उसकी विद्रोही बन गई थी । जहां तक उनकी शिक्षा का स्त्रियों को वेद, दर्शन और धर्मशास्त्रों के पढ़ने का अधिकार देने से सम्बन्ध था, वहां तक मैं उससे प्रसन्न थी ।''

मेरठ में ही स्वामीजी ने अपना पहला स्वीकारपत्र १६ अगस्त १८८० को लिखा था और १८ अगस्त को उसकी रजिस्ट्री कराई थी । उसके द्वारा जो परोपकारिणी सभा स्थापित की गई थी उसके सभासदों में कर्नल अल्काट और मैडम ब्लेवेट्स्की भी थी ।

थियोसोफिस्ट सोसायटी से स्वामीजी का विच्छेद

अब तक स्वामीजी को यह विश्वास था कि थियोसोफिस्ट सोसायटी के प्रवर्तक कर्नल अल्काट और मैडम ब्लेवेट्स्की आर्यसमाज के सिद्धान्तों को मानते हैं और इसी कारण से वे थियोसोफि० सोसा० को आर्यसमाज की शाखा बनाने पर सहमत हो गये थे । परन्तु इस बार मेरठ आगमन पर कर्नल और मैडम ने अन्य ही रंग दिखाया । पं० पालीराम के माध्यम से पता लगा, कि इन लोगों का न वेदों में विश्वास है और न ईश्वर में तथा ये अपने आप को बौद्ध कहते हैं । स्वामीजी ने कर्नल और मैडम से इस विषय में पूछा, तो पं० पालीराम की बात सत्य निकली । स्वामीजी ईश्वर में विश्वास न रखने वालों से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते थे । अतः उन्होंने इस विषय का निर्णय करने के लिये आग्रहपूर्वक कर्नल को विचार विमर्श करने को राजी किया । तीन दिन के विचार के बाद विषय को अधूरा छोड़कर कर्नल तथा मैडम मेरठ छोड़कर चले गये । तब स्वामीजी ने उसी दिन एक साधारण सभा में घोषणा कर दी, कि अब हमारा और थियोसोफिकल सोसायटी का कोई सम्बन्ध नहीं रहा है ।

धर्मप्रचार-विषय में पालिसी से काम लेना अनुचित

स्वामीजी धर्मप्रचार के विषय में पालिसी से काम लेने के अत्यन्त विरुद्ध थे । ऐसा करने से होने वाली हानि के विषय में स्वामीजी ने स्वानुभव बताया था कि हमने प्रथम बार जयपुर में वैष्णवमत के विरुद्ध शैवमत के पक्ष का अवलम्बन करके पं० हरिश्चन्द्र की सहायता की थी । जिससे हमारा अभिप्राय यह था, कि जयपुर के महाराजा वैष्णव धर्म को त्यागकर शैवमत को स्वीकार कर लेंगे । तत्पश्चात् उन्हें

वैदिक सिद्धान्तों की ओर झुकाना सहज होगा। महाराजा ने शैवमत को स्वीकार कर लिया, परन्तु हमारा उद्देश्य पूरा न हुआ। पीछे जब कभी हम जयपुर गये, लोगों ने हमारे उपदेश को न सुना और कहा कि क्या ये वही रुद्राक्ष नहीं हैं? जिनके पहनने से आपने हमें मोक्ष के मिलने का विश्वास दिलाया था? लोगों के ऐसा कहने में कुछ युक्ति-युक्तता भी थी।

मुजफ्फरनगर में धर्मप्रचार

१६ सितम्बर १८८० को स्वामीजी मेरठ से मुजफ्फरनगर पहुंचे और रा०ब० लाला निहालचन्द्र के बंगले में ठहरे। दो दिन बाद श्राद्ध पक्ष आरम्भ होने वाला था। नगर के कुछ पण्डित ला० निहालचन्द्र के पास स्वामीजी से शास्त्रार्थ करवाने के प्रबन्ध के लिये आये, पर वे पण्डित लालाजी के प्रश्नों का ही उत्तर न दे सके, अतः स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ तो दूर की बात रही।

मृतकश्राद्ध निष्फल है

ला० निहालचन्द्र द्वारा श्राद्धविषयक प्रश्न करने पर स्वामीजी ने समझाया कि मृतकश्राद्ध निष्फल है, क्योंकि मृतक को अपने ही कर्मों का फल मिलता है, दूसरे के कर्मों का नहीं और श्राद्ध उसका कर्म नहीं है और पुत्रकृत श्राद्ध का फल मृतक को मिलता है, तो पुत्र के पापकर्म का जो वह मृतक के नाम से करे अथवा जो अपव्यय अथवा दुष्कर्म मृतक के द्वारा उपार्जित धन से करे उसका फल भी मृतक को मिलना चाहिये। अतः यह मृतकश्राद्ध का सिद्धान्त बहुत बुरा प्रभाव उत्पन्न करने वाला है।

स्त्रियों में चरित्रहीनता का कारण, पढ़ना लिखना नहीं

एक सज्जन के प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने कहा कि स्त्रियां पढ़ने लिखने के कारण कुलटा नहीं होंगी। यह तो प्रकृति और सङ्गति पर निर्भर है। कितने ही पढ़े लिखे पुरुष भी चरित्रहीन होते हैं।

सुख-दुःख और व्याप्य-व्यापक की मीमांसा

एक जिज्ञासा का समाधान करते हुए स्वामीजी ने उत्तर दिया कि सुख दो प्रकार का होता है, एक अविद्याजन्य और दूसरा विद्याजन्य। विद्याजन्य सुख ही वास्तविक सुख है। अविद्याजन्य सुख ऐसा होता है, जैसा पशु आदि को। अज्ञान की निवृत्ति बिना ज्ञान के नहीं होती। जीव अल्पज्ञ है, अतः किन्हीं विषयों में उसे ज्ञान होता है और किन्हीं में अज्ञान। व्यापक वस्तु व्याप्य से भिन्न होती है, जैसे आकाश सब मूर्तिमान् द्रव्यों में व्यापक है, परन्तु न वह द्रव्य आकाश है और न आकाश मूर्तिमान् द्रव्य है। जो सूक्ष्म होता है वह व्यापक और जो स्थूल होता है वह व्याप्य। परमात्मा सबसे सूक्ष्म है, अतः सब में व्यापक है। त्रसरेणु का साठवां भाग परमाणु है, परमात्मा उससे भी सूक्ष्म है, इसलिये परमाणुओं का संयोग-वियोग कर सकता है।

मुजफ्फरनगर में स्वामीजी के लगभग दस व्याख्यान हुए ।

मेरठ-आर्यसमाजोत्सव में सम्मिलित

मेरठ आर्यसमाज के ३ अक्टूबर १८८० से आरम्भ होने वाले वार्षिकोत्सव में भाग लेने हेतु स्वामीजी पुनः मेरठ पधारे और दोनों दिन अपने व्याख्यानों से श्रोताओं को लाभान्वित किया । यहां भक्तों को स्वजीवन की घटनाएँ बताते हुए कहा था, कि आप लोग आश्चर्य करते हैं, कि मैं इतनी दूर तक वायुसेवन के लिये जाता हूं, परन्तु अवधूत दशा में चालीस चालीस मील चलना मेरे लिये कोई बात नहीं थी । मैं एक बार गंगोत्री से चलकर गंगासागर तक और एक बार गंगोत्री से रामेश्वर तक गया था । बद्रीनाथ में रहकर मैंने गायत्री का जपानुष्ठान किया ।... मैं लगातार कई दिन तक मध्याह्न में तप्त रेणु में पड़ा रहा हूं और हिमाच्छादित पर्वतों में तथा गङ्गातट पर नग्न और निराहार सोया हूं ।

देहरादून में धर्मोपदेश

स्वामीजी मेरठ से प्रस्थान करके कुछ समय तक सहारनपुर रेल्वे स्टेशन पर ठहरकर ता० ७ अक्टू० १८८० को देहरादून पहुंचे ।

सूतक का बखेड़ा निरर्थक है

सहारनपुर रे० स्टे० पर एकने प्रश्न किया की जन्म के समय दस दिन का जो सूतक माना जाता है वह शास्त्रानुकूल है वा नहीं ? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि केवल बालक की माता को एक रात का सूतक होता है । सूतक का बखेड़ा खड़ा कर लिया है । लोग उसमें सन्ध्या हवन आदि तक छोड देते हैं, परन्तु असत्य भाषण आदि अशुभ कर्म कोई नहीं छोड़ता ।

पुराणी-कुरानी-किरानियों का शास्त्रार्थ का दिखावा

देहरादून पहुंचते ही स्वामीजी द्वारा एक विज्ञापन निकलवा कर प्रचारित कर दिया गया, कि स्वामी दयानन्द सरस्वती केवल वैदिक धर्म को मानते हैं और अन्य धर्मों में जो त्रुटियां हैं, उन्हें युक्तिपूर्वक सबको दर्शाते हैं । यदि किसी को उनसे शास्त्रार्थ करना, हो तो लिपिबद्ध शास्त्रार्थ कर लें । इस विज्ञापन में शास्त्रार्थ के नियम भी अङ्कित थे । पौराणिकोंने एकतरफा घोषणा कर दी कि किशन स्कूल में हम शास्त्रार्थ करने को तैयार है । स्वामीजी ने उत्तर भेज दिया कि मैं अभ्यागत हूं, आप लोगों को मेरे स्थान पर आकर शास्त्रार्थ करने में कोई आपत्ति न होनी चाहिये । मैं इस बात का उत्तरदायित्व लेता हूं कि कोई उपद्रव आदि न होगा । यदि आप मुझे ही अपने स्थान पर बुलाना चाहते हैं, तो मजिस्ट्रेट साहब की ओर से प्रबन्ध होना चाहिये, क्योंकि जहां कहीं भी मैं पौराणिकों के स्थान पर गया हूं, वहां उपद्रव हुए बिना नहीं रहा । इस उत्तर पर पौराणिक चुप हो गये ।

मुसलमानोंने स्वामीजी को पत्र लिखा कि हम वेद पर आक्षेप करेंगे और जब तक हम सन्तुष्ट नहीं होंगे हम किसी की नहीं सुनेंगे। स्वामीजी का उत्तर था दि आप अवश्य वेद पर आक्षेप करें, मैं उत्तर दूंगा, किन्तु फिर मैं कुरान पर आक्षेप करूँगा आप उत्तर दें। यह उत्तर पाकर मुसलमान भी मौन हो गये।

एक दिन पादरी गिलबर्ट (मेकमासर)ने अन्य कई ईसाइयों के साथ आकर स्वामीजी से प्रश्न किया कि वेद के ईश्वरोक्त होने में क्या युक्ति है? स्वामीजी उनकी भावभङ्गी से समझ गये कि इनका उद्देश्य जिज्ञासा न होकर विवाद करना है, अतः स्वामीजी ने प्रतिप्रश्न किया कि बाइबल के ईश्वरोक्त होने में क्या युक्ति है? इसका बिना उत्तर दिये जब वे लोग चलने लगे तो स्वामीजी ने कहा कि आप वेद पर दस प्रश्न कीजिये पर मुझे भी बाइबल पर दस प्रश्न करने दीजिये। इस पर वे चल दिये।

अलखधारी का मुसलमानों को उत्तर

स्वामीजी ने अपने पूर्व देहरादून आगमन पर जिस मुंशी मुहम्मंद उमर को शुद्ध करके उसे अलखधारी नाम दिया था, उसके पास मुसलमान आकर कहने लगे कि तेरी मुक्ति असम्भव है और तू कठोर यातना के योग्य है। अलखधारीने उनसे कहा कि आपका खुदा मुसलमानों का ही पालन करता है कि मनुष्य मात्र का? यदि पहली बात ठीक है तो आपको मेरे उद्धार की चिन्ता करना व्यर्थ है और यदि दूसरी ठीक है तो फिर मुझमें और आपमें कोई भेद नहीं। उत्तम तो यही है कि आप भी पवित्र वेदों के विश्वासी बनें और सत्य धर्म को ही सत्य जानें, अन्यथा छुटकारा कठिन है। इस युक्तिपूर्ण उत्तर को सुनकर मुसलमान चले गये।

देहरादून में स्वामीजी का एक फोटो भी लिया गया था।

आगरा में धर्मोपदेश और आर्यसमाज-स्थापना

स्वामीजी देहरादून से चलकर पांच दिन मेरठ रुक कर २७ नवम्बर १८८० को आगरा पहुंचे और मुंशी गिरधरलाल भार्गव वकील के भवन पर ठहरे। मुफीद-ए-आम स्कूल पीपल मंडी में स्वामीजी के व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया। २८ नवम्बर से व्याख्यान आरम्भ हुए और लगातार २५ व्याख्यान हुए। दुर्भाग्य है कि पूना के समान यहां किसी ने उन व्याख्यानों को लिपिबद्ध नहीं किया। व्याख्यानों की समाप्ति पर स्वामीजी ने शास्त्रार्थ करने अथवा शङ्कासमाधान हेतु सबको खुला आमन्त्र दिया था। शास्त्रार्थ करने तो कोई नहीं फटका, किन्तु जिज्ञासुओं और तमाशबीनों सबके प्रश्नों के उत्तर स्वामीजी ने यथोचित रूप से दिये। इस व्याख्यानमाला का यह प्रभाव हुआ कि ता० २६ दिसम्बर १८८० को आगरानगर में आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

इसी बीच ९ दिसम्बर को स्वामीजी ने वजीरपुर के ठाकुर श्यामलालसिंह के

घर पर उनके तीन पुत्रों का यज्ञोपवीत संस्कार विधिवत् सम्पन्न करवाया। जिसे देखने एक रोमन कैथालिक मिशनरी योरोपियन महिला भी आई थी।

गिरजाधर में बिशप से धर्मचर्चा

आगरा के सुप्रसिद्ध सेंटपीटर्स गिरजाघर (चर्च) के बिशप से स्वामीजीने कहा - यदि हम और आप तथा अन्य धर्मों के बुद्धिमान् नेता केवल उन बातों का प्रचार करें, जिन्हें सब मानते हैं, तो एकता स्थापित हो सकती है और फिर विपक्ष में नास्तिक ही रह जायेंगे।

बिशप - यह अतिकठिन है। मुसलमान और ईसाई मांस खाना कभी नहीं छोड़ सकते। जैसे विक्टोरिया महाराणी अपने प्रतिनिधि वायसराय के बिना भारतवर्ष का शासन नहीं कर सकती, वैसे ही परमेश्वर भी प्रभु ईसामसीह के बिना मनुष्यों के धार्मिक शासन और मुक्ति का प्रबन्ध नहीं कर सकता।

स्वामीजी - जो उदाहरण आपने दिया है वह ठीक नहीं है। महाराणी विक्टोरिया एकदेशी और अल्पज्ञ है, उसकी ईश्वर से क्या तुलना हो सकती है ? परमेश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् सत्ता है, वह किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं रखता। यदि यह मान भी लिया जाये कि ईसा एक महात्मा पुरुष थे, तो भी यह नहीं हो सकता कि परमेश्वर उनकी सिफारिश से अन्याय करे और पापी को पाप का फल न दे। वह न्यायकारी है। जो जैसा कर्म करेगा, उसे वैसा फल अवश्य देगा।

बिशप - परमेश्वर ने वेदज्ञान कैसे दिया ?

स्वामीजी - परमेश्वर ने अपने अनन्त ज्ञान से सृष्टि के आदि में वेदों के रूप में ज्ञान चार ऋषियों के द्वारा दिया।

बिशप - उनके प्रतिनिधि अब कौन हैं ?

स्वामीजी - ब्राह्मण, उपनिषद्, षड्दर्शन के कर्ता तथा लाखों ऋषि मुनि उनके प्रतिनिधि हैं। परन्तु आप तो बताइये कि ईसामसीह का प्रतिनिधि कौन है ?

बिशप - पृथ्वी पर परमेश्वर का प्रतिनिधि. पोप है। जो भूल वा अपराध हम लोगों से होते हैं, वह उनका संशोधन कर देते हैं।

स्वामीजी - जो भूल अथवा अपराध पोप से होता है, उसका संशोधन कौन करता है ?

स्वामीजी के इस प्रश्न का बिशप कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सके। बिशप ने वेदविषयक अन्य भी कुछ प्रश्न किये, जिनका यथार्थ उत्तर स्वामीजी ने दे दिया।

पगड़ी प्रतिष्ठा का सूचक है

धर्मचर्चा के पश्चात् उक्त गिरजाघर देखने गये स्वामीजी से गिरजाघर के प्रबन्धक

ने पगड़ी उतार कर अन्दर जाने को कहा, तो स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हमारी रीति के अनुसार पगड़ी पहनना प्रतिष्ठा का सूचक है, हम इसे नहीं उतारेंगे। तब स्वामीजी बरामदे से ही गिरजाघर देखकर लौट आये।

पिता, पुत्र, पुत्री आदि सम्बन्ध शरीर की दृष्टि से हैं

एक दिन नगर-कोतवाल मौलवी तुफैल अहमद ने पुनर्जन्म पर आक्षेप करते हुए कहा, कि परमेश्वर अन्यायकारी नहीं है, कि जो जीवों को बार-बार जन्म धारण कराकर उनसे ऐसे पाप करावे कि एक जन्म में जो एक मनुष्य की पुत्री है, वही अन्य जन्म में उसकी स्त्री बने। इसका उत्तर स्वामीजी ने दिया कि पिता और पुत्री आदि का सम्बन्ध देह का है, आत्मा का नहीं। आत्माओं की आपस में कोई नातेदारी (सम्बन्ध) नहीं है। इस पर मौलवी कुछ न बोल सके।

पहाड़ से आये एक पादरी ने स्वामीजी-कृत वेदभाष्य में 'अग्नि' शब्द का अर्थ परमेश्वर करने पर आपत्ति की तो, स्वामीजी ने 'अग्नि' शब्द का व्याकरणानुसार अर्थ करके उसे समझा दिया, कि अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति से जिन जिन गुणों का वह वाचक है, वे गुण परमेश्वर में है अतः 'अग्नि' शब्द परमेश्वर का वाचक है।

२३ से २९ जनवरी १८८१ तक स्वामीजी के सात व्याख्यान और हुए। तत्पश्चात् प्रति रविवार को आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्सङ्ग में स्वामीजी के प्रवचन होते रहे।

मुक्ति नित्य नहीं

यहां मुरादाबादी मुंशी इन्द्रमणि के मुक्ति-विषयक प्रश्न के समाधान में स्वामीजी ने कहा कि मुक्ति से यथासमय लौटना ही युक्तियुक्त है। मुक्ति का नित्य होना असम्भव है और परमेश्वर में जीव का मिल जाना भी असम्भव है। जीव अल्पज्ञ है और परमेश्वर सर्वज्ञ दोनों के गुण पृथक् हैं।

सन्ध्योपासना के दो ही काल

सेंट जॉन्स कॉलेज के पं० कालीदास के त्रिकालसन्ध्या सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने कहा, कि किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में त्रिकालसन्ध्या का विधान नहीं पाया जाता, दूसरे 'सन्ध्या' शब्द के अर्थों से भी यही सिद्ध होता है, कि दो ही काल में सन्ध्या करनी चाहिये।

गुरु मार्गदर्शक है, पर स्व-आचरण और साधना से ईश्वरप्राप्ति सम्भव

एक दिन राधास्वामी मत के कुछ पंजाबी अनपढ़ साधु स्वामीजी के पास आये और कहा कि गुरु के बिना कोई मनुष्य संसार-सागर के पार नहीं हो सकता। स्वामीजी ने उत्तर दिया, कि गुरु की शिक्षा तो आवश्यक है, परन्तु जब तक शिष्य अपना आचरण ठीक नहीं करता तब तक कुछ नहीं हो सकता। राधास्वामियों का 'हमारा

गुरु ही हमारा परमेश्वर हैं' यह मानना भी भ्रान्तिपूर्ण है। अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् और बद्ध जीव को परमेश्वर मानने से कभी कल्याण नहीं हो सकता।

मुंशी गिरधरलाल की अनपुम स्वामी-भक्ति

आगरा में विरोधियों ने और मुंशी गिरधरलाल वकील के मुवक्किलों ने उन्हें स्वामीजी को अपने भवन से निकाल देने को अनेक प्रकार से उकसाया, किन्तु वकील साहब ने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया और स्वामीजी को सादर अपने भवन में रहने दिया।

सार्वजनिक सम्पत्ति के ट्रस्टी बनना जनहितकारी

स्वामीजी की सम्मति के अनुसार वकील गिरधरलाल ने एक स्थानीय मन्दिर की दान से प्राप्त सम्पत्ति का ट्रस्टी बना रहना स्वीकार कर लिया। पीछे जाकर स्वामीजी के जीवनी के आद्य गवेषक पं० लेखरामजी को उक्त वकील साहब ने कहा था कि मैंने स्वामीजी की आज्ञा मानकर अच्छा किया, जिससे उस सम्पत्ति से एक विद्यालय चल रहा है। यदि मैं ट्रस्टी न बनता तो सारी सम्पत्ति पण्डे-पुजारी डकार ज़ाते।

गोकृष्यादिरक्षिणी सभा की स्थापना

एक दिन मुंशी गिरधरलाल के गृह पर 'गोरक्षा' विषय पर स्वामीजी का व्याख्यान हुआ और अन्त में वहीं 'गोकृष्यादिरक्षिणी-सभा' की स्थापना की गई। मुं० गिरधरलाल को मन्त्री बनाया गया। उसी समय सभा-हेतु ११०० रुपये चन्दा हो गया। चन्दा देने वालों में कई मुसलमान भी थे।

पं० चतुर्भुज की स्वार्थ-साधन-लीला

दानापुर आदि स्थानों पर शास्त्रार्थ की डींग हांक कर भी सदा शास्त्रार्थ से दूर भागने वाले काशी-निवासी पं० चतुर्भुज पौराणिक भी आगरा आये। इन्होंने स्वामीजी के और आर्यसमाज के विरुद्ध बोलना और इन्हें गाली देना अपना व्यवसाय बना रक्खा था। ऐसा करने से इन्हें पौराणिकों से यथेष्ट भेंट पूजा प्राप्त होती थी। इन्होंने आगरा में अनेक स्थानों पर व्याख्यान देकर तथा जाल रचकर सम्प्रदायवालों को और साधारणजनों को स्वामीजी के विरुद्ध भड़काया। इनके एक व्याख्यान में स्वामीजी के प्रवचनों से सुप्रभावित एक पण्डित युगलकिशोर चले गये। पं० चतुर्भुज द्वारा उद्धृत एक अधूरे गृह्यसूत्र- वाक्य पर इन्होंने आपत्ति उठाई। कुछ देर तक प्रश्नोत्तर होने पर पं० चतुर्भुज ने कहा कि शास्त्रार्थ करना हो तो मेरे निवास पर आना। पं० युगलकिशोर एक मित्र को साथ लेकर पं० चतुर्भुज के घर पहुँचे, तो उन्होंने पं. युगलकिशोर और उनके मित्र को आधा-आधा सेर पेड़े और एक एक रुपया देकर कहा कि आप लोग कृपा करके अपने अपने घर पधारें। मेरा माथा धमकता है। इस प्रकार पं० चतुर्भुज यहां भी स्वामीजी के सत्सङ्गी से भी शास्त्रार्थ करने से बचते रहे।

'अपने को हिन्दू न कहकर आर्य और वैदिकधर्मी कहो'

स्वामीजी यह चाहते थे कि लोग अपने को हिन्दू न कहकर आर्य और वैदिक-धर्मी कहें, क्योंकि 'हिन्दू' नाम विदेशियों के द्वारा दिया हुआ और कलङ्कसूचक था। सन् १८८१ में जनगणना होनेवाली थी। उसी प्रसंग में आर्यसमाज मुलतान के मन्त्री मास्टर दयाराम वर्मा के आये पत्र के उत्तर में स्वामीजी ने लिखा कि – "मास्टर दयारामजी ! आनन्दित रहो।

विदित हो कि आपका पत्र आया, हाल मालूम हुआ, आपने जो नक्शा मर्दुमशुमारी का लिखा सो उसकी खानापूरी इस प्रकार करो –

मजहब–फिरके–मजहबी .... वैदिक

असल कौम .... आर्य

जात या फिरका ....ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य

गोत्र या शाख .... जो अपना गोत्र हो

और जिसको अपना गोत्र याद न हो वह अपना काश्यप या पाराशर गोत्र लिखा दे और यह सब समाजों को तथा पंजाब भर में इसी प्रकार से लिख भेजें और यहां सब प्रकार से आनन्द में है।"

स्वामीजी की अद्भुत तर्कशक्ति

अपनी तर्कशक्ति को अकाट्य मानने वाला एक नास्तिक बंगाली स्वामीजी से ईश्वरवाद पर प्रश्नोत्तर करने आया, किन्तु दो चार प्रश्नों के उत्तर पाकर ही वह अपनी सिट्टी-पिट्टी भूल गया और उसके मुख से शब्दों का निकला ही कठिन हो गया।

पौराणिकों ने पं. कालीदास को स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने हेतु बहुत उकसाया तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का मेरा सामर्थ्य नहीं है। मैं भी उसी काल में दण्डी विरजानन्द से कुछ दिन पढ़ा हूं, जब स्वामी दयानन्द उनके पास पढ़ते थे। स्वामी दयानन्द कभी कभी ऐसा तर्क उपस्थित करते थे कि दण्डीजी भी तत्क्षण उनका उत्तर न दे सकते थे और कह दिया करते थे इसका उत्तर कल देंगे।

आगरा में लगभग साढ़े तीन मास धर्मोपदेश-वर्षा करने के पश्चात् जब ता० १० मार्च १८८१ को स्वामीजी वहां से प्रस्थान करने लगे तो आगरा-आर्यसमाज ने स्वामीजी की सेवा में एक अभिनन्दन-पत्र समर्पित किया।

भरतपुर में धर्म-सत्सङ्ग

भरतपुर स्वामीजी १० मार्च को पहुंचे और रेल्वे स्टेशन-समीपस्थ एक बाग में ठहरे। दस दिन तक सत्संगियों को सदुपदेश करते रहे।

जयपुर में उपदेश और वेदभाष्य-कार्य

ता० २० मार्च १८८१ को स्वामीजी भरतपुर से जयपुर पहुंचे और गंगापोल बाहर अचरौल के ठकुर के बाग में उतरे। यहां उन्होंने एक ही व्याख्यान दिया। अन्त में प्रश्नकर्ता ठा० रघुनाथसिंह को नवीन वेदान्त की विशद समालोचना करके सन्तुष्ट कर दिया। शेष दिनों में स्वामीजी वेदभाष्य के लिखवाने में संलग्न रहे। इस अन्तराल में जयपुर में 'वैदिक धर्म-सभा' नाम से एक संस्था स्थापित की गई, जिसे पीछे जाकर 'आर्यसमाज' नाम दे दिया गया।

अजमेर में धर्म-प्रवचन

जयपुर से प्रस्थान करके स्वामीजी ५ मई १८८१ को अजमेर पधारे और सेठ फतहमल के उद्यानगृह में ठहरे। ७ मई को विज्ञापन द्वारा सूचित कर दिया गया कि प्रतिदिन सायं ७ से ९ बजे सेठ गजमल की हवेली में स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यान हुआ करेंगे। विज्ञापन बंटते ही धर्मजिज्ञासु लोग भारी संख्या में व्याख्यान सुनने आने लगे। ३० मई तक स्वामीजी के २२ व्याख्यान उक्त हवेली में और चार व्याख्यान स्थानीय आर्यसमाज के रविवारीय अधिवेशनों में अर्थात् कुल २६ व्याख्यान अजमेर में हुए।

पं० लेखरामजी द्वारा स्वामीजी से सत्सङ्ग

अमर बलिदानी और स्वामीजी के जीवन-चरित (उर्दू) के आद्य लेखक पं० लेखरामजी आर्यपथिक स्वामीजी के दर्शनार्थ पेशावर से ता० १६ मई १८८१ को अजमेर आये। उन्होंने स्वामीजी से अनेक शङ्काओं का समाधान करवाया था, उनमें से मुख्य निम्न हैं –

शङ्का – जब आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी व्यापक है, तो दो व्यापक इकट्ठे कैसे रह सकते हैं ?

समाधान – जो वस्तु जिससे सूक्ष्म होती है, वह उसमें व्यापक होती है। परब्रह्म आकाश से सूक्ष्म है, अतः वह उसमें व्यापक है।

शङ्का – जीव और ब्रह्म के पृथक्त्व में वेद का कोई प्रमाण है ?

समा० – यजुर्वेद का पूरा चालीसवां अध्याय जीव और ब्रह्म की पृथक्ता का प्रतिपादक है।

शङ्का – अन्य धर्मावलम्बियों को शुद्ध करना चाहिये कि नहीं ?

समा० – अवश्य शुद्ध करना चाहिये।

शङ्का – विद्युत् क्या पदार्थ है और कैसे उत्पन्न होती है ?

समा० – विद्युत् हर जगह है और रगड़ से प्रकट होती है। बादलों की विद्युत् भी बादलों और वायु की रगड़ से प्रकट होती है।

पं० लेखरामजी को स्वामीजी ने २५ वर्ष की आयु से पूर्व विवाह न करने का आदेश दिया और एक प्रति 'अष्टाध्यायी' की दी। यहाँ का एक हिन्दू युवक ईसाइयत की ओर आकृष्ट था। स्वामीजी के सत्सङ्ग और शङ्कानिवारण से वह ईसाई होने से बच गया।

पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थ-हेतु दिखावा

दानापुर और आगरा आदि अनेक स्थानों पर शास्त्रार्थ का ढोंग रचने वाले सद्धर्म-विरोध-व्यवसायी पं० चतुर्भुज शास्त्री ने काशी से अजमेर के पौराणिकों को लिखा कि मुझे अजमेर बुलाओ, मैं दयानन्द को पराजित कर दूंगा। पौराणिकों ने पं० भागमलजी जज अजमेर (जो कि स्वामीजी के व्याख्यानों में प्रबन्ध स्थिर रखते थे) के पास जाकर पं० चतुर्भुज से स्वामीजी का शास्त्रार्थ करवाने का आग्रह किया। पं० भागमलजी जज ने शास्त्रार्थ करवाने की स्वीकृति देते हुए शास्त्रार्थ-सभा के निम्न० नियम सुनाये –

१.सभा का स्थान मेरी सम्मति के अनुसार होगा।

२.इस सभा में मैं प्रधान की रीति से सम्पूर्ण अधिकार रखूंगा, जिससे दोनों पक्षवालों के साथ न्याय अन्याय पर ध्यान रहे।

३.शास्त्रार्थ लेख-बद्ध होगा।

४.शास्त्रीजी को प्रश्नोत्तर स्वामीजी के सम्मुख बैठकर करने होंगे।

५.यदि कोई पुरुष मूर्खता वा किसी प्रकार से असभ्य भाषण करेगा तो वह तुरत सभा से निकाल दिया जायगा।

इन नियमों को सुनते ही पौराणिक चुपचाप चले गये। वे समझ गये कि इन नियमों के अन्तर्गत शास्त्रार्थ होने पर तो धींगामस्ती और हुल्लड़बाजी करके अपनी विजय नहीं हो सकती।

पश्चिमी विज्ञान के एक विद्वान् ने स्वामीजी के समक्ष योगसिद्धियों की सत्यता पर सन्देह प्रकट किया तो स्वामीजी ने युक्ति-प्रमाणों से उनकी सत्यता प्रतिपादित करके अन्त में कहा कि आप समझते हैं कि हम इतना बड़ा कार्य योगसिद्धि के बिना ही कर रहे हैं ? इस उत्तर पर वह विद्वान् सन्तुष्ट हो गया।

मसूदा में धर्मप्रचार

अजमेर में लगभग पौने दो मास धर्मवर्षा करके स्वामीजी ता० २३ जून १८८१ को मसूदा पधारे और वहां के अधिपति राव बहादुरसिंहजी के अतिथि बनकर रामबाग में उतरे। पीछे वर्षा के कारण स्वामीजी को सोहनमगरी नामक पहाड़ी पर बने बंगले में ठहराया गया। अगले दिन से ही महलों में स्वामीजी के व्याख्यान आरम्भ हो गये।

पादरी शूलब्रेड के प्रश्नों का समाधान

राव बहादुरसिंह के आमन्त्रण पर ब्यावर से पादरी शूलब्रेड पादरी बिहारीलाल के साथ स्वामीजी से धर्मचर्चा करने आये । पहले १५ मिनिट उन्होंने स्वामीजी से राजनीति विषय पर व्याख्यान सुना । तत्पश्चात् कुछ देर निम्न० शङ्कासमाधान हुआ -

पादरी - पाप क्यों अधिक होता है ?

स्वामीजी - काम, क्रोध आदि के प्राबल्य से ।

पादरी - कौन लोग पाप अधिक करते हैं ?

स्वामीजी - किरानी, कुरानी, पुराणी और नास्तिक । क्योंकि किरानियों (= ईसाइयों) के अनुसार रात्रि के पाप प्रातःकाल की प्रार्थना से और दिन के पाप सायंकाल कि प्रार्थना से दूर हो जाते हैं । कुरानियों (= मुसलमानों) के अनुसार छोटे छोटे पाप तौबाह-तौबाह कहने से और बड़े पाप 'बिस्मिल्ला उर्रहमानुर्रहीम' कहने से नष्ट हो जाते हैं । पुराणियों के अनुसार 'अन्यक्षेत्रे कृतं पाप काशी-क्षेत्रे विनश्यति । काश्यामेव कृतं पापं पञ्चक्रोश्यां विनश्यति' अर्थात् अन्य स्थानों में किया हुआ पाप काशी में और काशी में किया हुआ पाप पञ्चक्रोशी में नष्ट हो जाता है तथा नास्तिकों के अनुसार 'ऋणं कृत्वा धृतं पिबेत् । भस्मी-भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः' - जब तक जीवे ऋण लेकर भी घी पीवे और सुखी रहे । मर जाने पर शरीर के भस्म हो जाने पर ऋण देने लोने वाला फिर नहीं आता । इस विश्वास से चारों प्रकार के लोग अपने भ्रान्त विश्वासों के कारण अधिक पाप करते हैं ।

पादरी - आप इन चारो में से कौन हैं ?

स्वामीजी - मैं इनमें से कोई भी नहीं, मैं तो वैदिक धर्मानुयायी हूं और वेदानुकूल ग्रन्थों को मानता हूं ।

पादरी - वेदों में गोमेध नाम से गोवध और अश्वमेध नाम से अश्ववध है कि नहीं ?

स्वामीजी - नहीं है । आपको विश्वास न हो तो ये चारों वेद आपके समक्ष रखे हैं, इनमें से निकाल के बताइये ।

पादरी - आप राजाओं को ही उपदेश करते है, साधारण मनुष्यों को क्यों नहीं ?

स्वामीजी - मेरे व्याख्यानों में किसी को आने का निषेध नहीं है, फिर मैं तो हर जगह घूमता हूं । यथाशक्ति राजा और प्रजा सबको ही उपदेश करता हूं ।

जैन साधु सिद्धकरणजी से वार्तालाप

मसूदा नगरी में जैनियों का बाहुल्य होने से राव साहब की इच्छा थी कि किसी जैन विद्वान् का स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ होवे । अकस्मात् स्वामीजी के

मसूदानिवास-काल में ही जैन साधु सिद्धकरणजी भी चतुर्मासा करने के लिये मसूदा आये। साधुजी के मसूदा पहुंचने के तीसरे दिन भ्रमण-समय में प्रातःकाल स्वामीजी से साधुजी की भेंट हो गई। कुछ काल परस्पर कुशलक्षेम आदि वार्तालाप के बाद जब स्वामीजी ने उनसे मुख पर पट्टी बांधने और गर्म जल पीने का कारण पूछा, तो साधुजी ने कहा कि यदि आप भी मुख पर पट्टी बांध लें, तब मैं इसका उत्तर दूंगा। इस पर कुछ काल तक वादविवाद के पश्चात् बात समाप्त हो गई।

रावसाहब ने पांच प्रतिष्ठित जैनियों, राजमन्त्री, ज्योतिषी और कोठारी को भेजकर साधु सिद्धकरणजी को स्वामीजी से धर्मचर्चा-हेतु आमन्त्रित किया। किन्तु साधुजी ने कहा कि 'यदि स्वामीजी अपने मुख पर पट्टी बांधकर प्रश्नोत्तर करेंगे, तो मैं धर्मचर्चा के लिये उद्यत हूं।' बारबार निवेदन करने पर भी साधुजी अपनी बात पर हठपूर्वक अड़े रहे। वस्तुतः यह वार्तालाप करने से बचने का ही बहाना था।

जैनियों से तीन प्रश्न

प्रत्यक्ष शास्त्रार्थ का अवसर न देखकर स्वामीजी ने साधुजी के पास तीन प्रश्न स्पष्टीकरणसहित लिखकर भेजे –

१. प्रश्न – मुख पर पट्टी क्यों बांधते हो ?

यदि यह कहा जाय कि पट्टी बांधने से जीव कम मरेंगे, तो यह ठीक नहीं। क्योंकि जीव अमर है। यदि कहो कि ऐसा करने से जीवों को कष्ट कम होगा, सो यह भी नहीं बनता, क्योंकि मुख पर पट्टी बांधने से मुख के भीतर का वायु अधिक उष्ण होकर उन्हें अधिक कष्ट पहुंचायेगा। जैसे गृहद्वार बन्द करने से अन्दर का वायु अधिक गर्म हो जाता है। मुख का उष्ण वायु रुककर नासिका द्वारा अधिक वेग से बाहर निकलेगा और इससे जीवों को अधिक पीड़ा होगी। नलकी द्वारा फूंक लगाने से वायु अधिक वेग से बाहर निकलता है। उच्चारण में भी दोष आता है। निरनुनासिक अक्षर सानुनासिक हो जाते हैं। अन्दर का वायु अधिक दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। मुख पर पट्टी बांधने और मुखप्रक्षालन न करने, दन्तधावन और स्नान कम करने से दुर्गन्ध अधिक बढती है और उससे रोग की उत्पत्ति होती है। जिससे बुद्धि और पुरुषार्थ नष्ट होते हैं। अतः दुर्गन्ध बढ़ानेवाला अधिक पापी होता है।

२. प्रश्न – उष्ण जल क्यों पीते हो ?

ठण्डे जल को गर्म करने में जीव (शरीर) रंधकर जल में घुल जाते हैं, अतः गर्म जल से जीव अधिक कष्ट पाते हैं। यदि तुम कहो कि हम जल स्वयं गर्म नहीं करते, दूसरे गर्म करते हैं, अतः हम पापी नहीं। यह भी ठीक नहीं, क्योंकि यदि आप गर्म जल न पीवें, तो वे जल क्यों गर्म करते ? फिर जल गर्म करने के लिये अग्नि जलाने और उससे भाप उड़ने में जीव मरते हैं।

३. प्रश्न - जल की एक बूंद में, जिसका अन्त है आप लोग अनन्त जीव कैसे बतलाते हो ?

बूंद चाहे पैसा बराबर बड़ा हो वा अधिक, उसका अन्त होता है, फिर उसमें अनन्त जीव कैसे रह सकते हैं। यह सर्वथा बुद्धि के विरुद्ध है।

ये तीनों प्रश्न १३ जुलाई को साधुजी के पास भेजे गये थे। तीन दिन बाद ता० १६ जुलाई को साधुजी ने उक्त तीन में से केवल प्रथम प्रश्न का जो उत्तर दिया उसका सारांश निम्न० है -

साधुजी - यदि किसी घर में अग्नि जलाई जावे, तो जो शीतल वायु बाहर से भीतर जायेगी उसके जीव अन्दर की उष्ण वायु के संयोग से मर जायेंगे, परन्तु यदि द्वार बन्द कर दिया जाय वा हाथ या कपड़े की ओट कर दी जावे तो अग्नि का तेज मन्द हो जावेगा और उष्णता के कारण जीव न मरेंगे। जीव अजर अमर है, परन्तु वायु जीव का शरीर है, बिना शरीर के जीव नहीं रह सकता। खुले मुख रहने में बोलते समय थूक उड़ता है और मुंह की दुर्गन्ध भी दूसरे तक पहुंचती है, अतः बड़े मनुष्यों से बातें करते समय लोग अपने मुंह के पल्ला लगा लेते हैं। आप भी जब खुले मुंह वेद को बांचते होंगे, तो क्या आपका थूक उस पर न गिरता होगा और आपके श्वास की दुर्गन्ध उस तक न पहुंचती होगी ?

इस का प्रत्युत्तर स्वामीजी ने तुरन्त भेज दिया। सो निम्न० है -

स्वामीजी - बाहर का वायु ही सब प्राणियों का जीवनहेतु है और बिना उसके अग्नि भी नहीं जल सकती। ओट करने से यह दूसरे मार्ग से अतिवेग से निकलकर प्राणियों से संयुक्त होगा और प्राणी कष्ट पायेंगे और ओट करने से तो उष्णता बढेगी, घटेगी नहीं। यदि चारों ओर से खुला होगा तो शीघ्र ठण्डी हो जायगी। यदि किसी बरतन में जल गर्म किया जाय और उसे बिल्कुल बन्द कर दिया जाय, तो भाप बड़े जोर से निकलकर बरतन को तोड़ डालेगी। ऐसे ही उसे आधा वा चोथाई बन्द करने से गर्मी अधिक बढती है। यदि अग्नि से ही जीव मरते हैं, तो विद्युत् रूप अग्नि से जो सर्वत्र फैली हुई है, जीव क्यों नहीं मर जाते ? आप जीवों को अजर अमर भी मानते हैं और फिर उनका मरना भी मानते हैं। बड़े मनुष्यों से बातें करते समय मुंह पर पल्ला लगाने का प्रयोजन यह है, कि शब्द फैलें नहीं और उसे दूसरे न सुन सकें तथा यह भी कि खुले मुख बातें करने के शब्द फैलकर ठीक सुनाई भी न देगा।' यदि आपका हेतु ठीक है, तो फिर केवल बड़े मनुष्यों से बातें करते समय ही आपको मुख पर पल्ला लगाना चाहिये, छोटे मनुष्यों के सम्मुख मुंह पर पट्टी क्यों बांधे रहते हो तथा अपने शिष्यों से सम्मुख भी ऐसा क्यों करते हो ? फिर बड़े मनुष्य भी क्यों पल्ला लगाकर बातें नहीं करते ? क्या उनका थूक छोटे मनुष्यों पर पड़ना वा उन तक श्वास की दुर्गन्धि पहुंचना अच्छा समझते हो ?

क्या बड़े मनुष्यों के मुंह में कस्तूरी घुली होती है ? हम कागज स्याही को वेद नहीं समझते । वह तो जड़ वस्तु है, जिन्हें सुगन्ध-दुर्गन्ध आर्द्र शुष्क का कुछ ज्ञान नहीं । हम तो शब्दार्थसम्बन्ध को वेद समझते हैं । क्या जैनियों के धर्मपुस्तक बनाने वालोंने उन्हें मुख पर पट्टी बांधकर लिखा था ? हम तो वेदों का खुले मुख से उच्चारण करना उत्तम समझते हैं, क्यों कि इससे उच्चारण स्पष्ट और शुद्ध होता है और मुख पर पट्टी बांधने से अस्पष्ट और अशुद्ध, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं । जब आप से नगर के बाहर भेंट हुई थी, तब तो आपने हम से निःसङ्कोच बातें की थी, यद्यपि हम मुंह पर पट्टी वा पल्ला नहीं लगाये हुए थे । फिर शास्त्रार्थ करने में आपने यह अड़चन क्यों लगाई, कि जब तक हम मुख पर पट्टी न बांधेंगे, तब तक आप हमसे शास्त्रविचार न करेंगे ?

जब स्वामीजी का यह प्रत्युत्तर लेकर लोग साधुजी के पास गये और उनसे इसका उत्तर देने का आग्रह किया, तो पहले वे चुप रहे और बाद में कहा कि "हमारे से तो इसका कोई उत्तर नहीं बन आता, आपां तो साधु हां ।"

स्वामीजी के व्याख्यान किले में होते रहे । आषाढ़ी पौर्णमासी से श्रावणी पौर्णमासी तक कुल २२ व्याख्यान हुए । इस छोटी नगरी में भी चार सौ पांच सौ श्रोता प्रतिदिन उपस्थित होते रहे । सबने अद्भुत सन्तोष प्राप्त किया ।

४८ जनों द्वारा यज्ञोपवीत-ग्रहण

साधु सिद्धकरणजी के साथ हुए लेखबद्ध शास्त्रार्थ और स्वामीजी के व्याख्यानों से प्रभावित होकर मसूदा के ४८ पुरुषों ने स्वामीजी से विधिवत् यज्ञोपवीत ग्रहण किया । इनमें आधे से अधिक जैनी थे ।

यहां बादशाही समय में कुछ हिन्दू मुसलमान हो गये थे । किन्तु उनकी जाति के हिन्दू अपनी पुत्रियों का विवाह उन मुसलमान परिवारों में करते आ रहे थे । इससे उन हिन्दुओं में स्वसम्मान और लज्जा का भाव नष्ट हो गया था । स्वामीजी के समझाने से यह अनिष्टकारक प्रथा बन्द हो गई । इस प्रकार स्वामीजी ने असंख्य हिन्दू स्त्रियों को विधर्मी होने से बचा लिया ।

स्वामीजी के शिष्य राव साहब का पादरी से शास्त्रार्थ

एक दिन पूर्वोक्त पादरी बिहारीलाल स्वामीजी से पुनः मिलने आये । धर्मचर्चा शुरु होने पर उस समय उपस्थित राव साहब बहादुरसिंहजी ने पादरी से कहा कि आप पादरी शूलब्रेड के शिष्य हैं और मैं स्वामीजी का, आज मेरा और आपका संवाद होगा । पादरी ने स्वीकार कर लिया । राव साहब ने कहा कि बाइबल में लिखा है कि 'ईसामसीह ने एक बार उपदेश में अपने अनुयायियों को कहा था, कि यदि आप लोगों में राई के बराबर विश्वास होवे, तो इस पहाड़ को चलायमान कर सकते हो', अतः यदि आपका विश्वास पूरा है तो इस पहाड़ी (= सोहननगरी) को अपनी जगह से हटा दीजिये । इस पर पादरी निरुत्तर हो गये ।

रियासत रायपुर से कई बार निमन्त्रण आने पर जब स्वामीजी जाने को उद्यत हुए तो राव साहब ने ससम्मान स्वामीजी को वेदभाष्यहेतु ४०० रुपये भेंट किये। राजमन्त्री, दरबारी, कर्मचारी और लगभग चार सौ मनुष्यों ने आधा कोस तक स्वामीजी की बग्घी का अनुगमन किया। स्वामीजी ने सदुपदेश देकर सबको लौटा दिया। राव साहब तो अढ़ाई कोस तक स्वामीजी के साथ गये।

रायपुर (जिलापाली) में धर्मप्रचार

स्वामीजी ता० १९ अगस्त १८८१ को प्रातः ८ बजे रायपुर पहुंचे। चारण हरिदान की प्रेरणा से धर्मोपदेश एवं एक बड़ा यज्ञ करवाने के लिये रायपुर के ठाकुर राव हरिसिंह ने स्वामीजी को ससम्मान निमन्त्रित किया था। वहां स्वामीजी के व्याख्यान तो हुए, किन्तु राव साहब की शेखावाटी वाली पत्नी का देहान्त हो जाने से विशेष यज्ञ का आयोजन नहीं हुआ।

आर्य राजाओं द्वारा विधर्मी मन्त्री रखना अनुचित

स्वामीजी ने एक दिन राव हरिसिंह से कहा, कि आपने जो शेख इलाही बख्श को राजमन्त्री और करीम बख्श को स्थानापन्न मन्त्री बना रखा है, यह अनुचित है। दासीपुत्र यवनों को अपना मन्त्री बनाना ठीक नहीं। इसको मुसलमानों द्वारा असत्य बताने पर स्वामीजी ने रामानन्द ब्रह्मचारी से कुरान मंगवाकर सूरा अनकबूत में लिखा हुआ दिखा दिया कि सारा की दासी हाजिरा से इब्राहीम ने इस्माईल को पैदा किया। जब इस्माईल दासीपुत्र था तो यवनों के दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है?

ब्यावर में धर्मोपदेश

८ सितम्बर १८८१ को रात्रि में स्वामीजी ब्यावर पधारे। यहां उनके कई व्याख्यान हुए। किशनगढ़ निवासी श्रीमाली ब्राह्मण सूरजमल जोशी ने अपने पुत्र का ब्रह्मचर्याश्रम-प्रवेश स्वामीजी के हाथ के करवाया। स्वामीजी ने उसका नाम गुरुनन्द रखा। पादरी शूलब्रेड और बिहारीलाल ने भी स्वामीजी से कई दिन तक प्रेमपूर्वक धर्मालाप किया। स्वामीजी के धर्मोपदेशों के फलस्वरूप पीछे जाकर यहां आर्यसमाज स्थापित हो गया।

बनेड़ा में उपदेशवर्षा

ब्यावर से प्रस्थान करके स्वामीजी १५ दिन मसूदा रुके। मसूदा राव साहब के आग्रह पर स्वामीजी उनके मामा गोविन्दसिंहजी के राज्य बनेड़ा ता० १० अक्टूबर १८८१ को पहुंचे। बनेड़ाधीश ने उनकी निवासादि की सुव्यवस्था पहले ही कर रखी थी। यहां स्वामीजी के व्याख्यान उनके डेरे पर ही होते रहे। एक दिन राजा गोविन्दसिंह स्वामीजी को हाथी पर सवार कराकर किले में भी ले गये और वहां उनका धर्मोपदेश करवाया। राजाजी ने स्वामीजी से आत्मा, जीव, परमात्मा-विषयक प्रश्नोत्तर किये और उनके राजगुरु पं० बहादुर ने स्वामीजीकृत संस्कारविधि पर शङ्काएँ उपस्थित कीं। उनके

समाधान-प्रसङ्ग में स्वामीजी ने यजुर्वेद के महीधरभाष्य का प्रबल खण्डन किया। राजाजी की इच्छा पर स्वामीजी ने उन्हें चारों वेदों के दर्शन करवाये। राजाजी के दोनों राजकुमार – जो कि सस्वर वेदपाठ जानते थे – उनकी जटापाठ, पदपाठ और क्रमपाठ में स्वामीजी ने परीक्षा ली। यहां स्वामीजी ने चक्राङ्कितों के शरीरदग्ध करने को अवैदिक बताया और चण्डाल तक को वेद पढ़ने का अधिकारी बताया।

चित्तौड़गढ़ में लार्ड रिपन के दरबार के समय धर्मप्रचार

स्वामीजी बनेड़ा से प्रस्थान करके ता० २७ अक्टूबर १८८१ को चित्तौड़गढ़ पधारे और नगर-समीपस्थ गम्भीरी नदी के पश्चिमी तट पर स्थित रुण्डेश्वर महादेव के मन्दिर में ठहरे। पीछे मेवाड़ के एक मन्त्री कविराजा श्यामलदासजी ने मेवाड़-महाराणा की अनुमति लेकर स्वामीजी के लिये मन्दिर के समीप ही डेरे तम्बू लगवा दिये और सुरक्षार्थ भील-कम्पनी का पहरा भी लगवा दिया।

इन दिनों महाराणा सज्जनसिंह मेवाड़ के अधिपति थे। यौवन-सुलभ चाञ्चल्य, प्रभुता और यवनसंसर्ग के कारण वे विलासिता और नास्तिकता की ओर झुक गये थे। राजमन्त्री पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या और कविराजा श्यामलदास महाराणा को नीति और धर्म की ओर प्रवृत्त करने में यत्नशील रहते थे। स्वामीजी महाराज की कीर्ति-सुगन्ध अखबारों के माध्यम से उदयपुर (मेवाड़) भी पहुंच चुकी थी। स्वामीजी की देश-सुधारभावना, पाखण्ड-उन्मूलन, वैदिकधर्म के सत्य स्वरूप का दिग्दर्शन, प्राचीन राजधर्म की महत्ता का निरूपण, स्वदेशानुराग और विधर्मियों से स्वजाति की रक्षा आदि प्रवृत्तियों से महाराणा की भी स्वामीजी के प्रति विशेष आस्था हो गई थी। पं० मोहन० विष्णु० पण्ड्या द्वारा भेंट किये गये सत्यार्थप्रकाश को पढ़कर तो महाराणा की स्वामीजी के दर्शन की इच्छा बलवती हो गई। पं० मोहन० वि० पण्ड्या और कवि० श्यामलदासजी ने स्वामीजी से मेवाड़ पधारने का निवेदन किया हुआ था।

इन्हीं दिनों चित्तौड़गढ़ से खण्डवा तक बनी रेलवे लाइन के उद्घाटन-हेतु भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड रिपन को चित्तौड़गढ़ आना था। इसी अवसर पर मेवाड़-महाराणा सज्जनसिंह को गव० जन० द्वारा जी०सी०एस०आई० की उपाधि भी दी जाने वाली थी। स्वामीजी ने भी इसी अवसर पर चित्तौड़गढ़ जाना उचित समझा क्योंकि इस अवसर पर वहां उपस्थित अनेक राजा, राव, सरदार तथा गण्यमान्य व्यक्तियों में धर्मप्रचार से बहुत लाभ की सम्भावना थी।

स्वामीजी के चित्तौड़गढ़ पधारने का समाचार तुरत सर्वत्र फैल गया और अनेक लोग उनके दर्शन और धर्मलाभहेतु उनके पास आने लगे। कविराजा श्यामलदास की प्रेरणा से मेवाड़ राज्य के तथा समीप के राजा, सरदार, जागीरदार स्वामीजी के दर्शनों को आये। उन्हीं में शाहपुराधीश नाहरसिंहजी भी थे, जो स्वामीजी के अनन्य भक्त बन गये और आजीवन उनकी शिक्षाओं को मानते रहे।

महाराणा सज्जनसिंह की नम्रता

एक दिन व्याख्यानसमय में महाराणा सज्जनसिंह बिना राजसी ठाठ के आये और चुपचाप एक सामान्य आसन पर बैठ गये। स्वामीजी ताड़ गये कि अवश्य ही ये कोई विशिष्ट पुरुष हैं। उनकी जिज्ञासा पर शाहपुराधीश ने परिचय दिया कि ये ही मेवाड़ के महाराणाजी हैं। स्वामीजी ने जब उनसे विशिष्ट आसन पर बैठने का आग्रह किया, तो महाराणाजी 'सन्तों के पास साधारण आसन पर बैठने में ही गृहस्थों की शोभा है' यह कहकर नम्रतापूर्वक साधारण आसन पर ही बैठे रहे।

महाराणा अन्य समय में भी स्वामीजी के डेरे पर आये और वार्तालाप करके परम सन्तुष्ट हुए। स्वामीजी ने भी कहा कि 'आपको देखकर हमारी यह धारणा मिट गई कि भारत के इस समय के राजा लोग अकर्मण्य हैं। आप यथानाम तथा गुण हैं और कर्मवीर हैं।'

महाराणाजी ने स्वामीजी को साथ लेकर उन्हें चित्तौड़गढ़ के अनेक स्थान दिखाये। चित्तौड़गढ़ के किले को देखकर स्वामीजी ने अपने हृदयोद्गार प्रकट किये कि यह भूमि वीरता, त्याग और बलिदान की है, क्या ही अच्छा हो, कि यहां एक गुरुकुल स्थापित हो जिसमें पढ़कर निकले हुए विद्वान् देश, धर्म व जाति का कल्याण करेंगे। स्वामीजी की इस इच्छा को मूर्तरूप देने के लिये कालान्तर में स्वामी श्रद्धानन्दजी के शिष्य श्री स्वामी व्रतानन्दजी संन्यासी (पूर्वनाम युधिष्ठिर)ने स्थानीय रेलवे स्टेशन के पूर्व में गुरुकुल की स्थापना की, जो कि अब तक चल रहा है।

स्वामीजी के दर्शन, उपदेश एवं सत्सङ्ग से महाराणाजी इतने प्रभावित हो गये कि वे जब स्वयं राजधानी उदयपुर जाने लगे तो स्वामीजी से भी साथ चलने को निवेदन किया। स्वामीजी ने कहा कि इस समय तो हम बम्बई जा रहे हैं, लौटते समय आपकी इच्छनुसार उदयपुर आयेंगे। महाराणाजीने सम्मानप्रदर्शनार्थ स्वामीजी को ५०० रुपये भेंट किये और अन्य दरबारियों ने २०० रुपये भेंट किये।

मातृशक्ति के प्रति स्वामीजी की पूज्य भावना

यहां एक दिन स्वामीजी अन्य प्रतिष्ठित लोगों के साथ भ्रमणार्थ जा रहे थे। लोगों ने अचानक स्वामीजी को सिर झुकाते देखा। लोगों ने समझा कि यह जो मार्ग में देवालय है, इसी के कारण इन्होंने सिर झुकाया है। अतः एक ने कहा कि महाराज! आप मूर्तिपूजा का कितना ही खण्डन करें, देवताबल देखिये कि आपका सिर यहां अपने आप झुक गया। स्वामीजी तत्काल रुक गये और एक विवस्त्र कन्या की ओर सङ्केत करते हुए कहने लगे "देखते नहीं हो, यह मातृशक्ति है, जिसने हम सबको जन्म दिया है। बात यह थी कि देवालय के समीप ही कुछ छोटे बालक खेल रहे थे, जिनमें एक तीन-चार वर्ष की कन्या भी थी, जिसके तन पर वस्त्र नहीं थे। उस पर दृष्टि पड़ने पर स्वामीजी ने श्रद्धासे सिर झुका लिया था।

स्वामीजी एक मास और पच्चीस दिन चित्तौड़गढ़ रहे ।

इन्दौर में धर्मोपदेश

सन् १८८१ की २१ दिसम्बर को स्वामीजी इन्दौर पहुंचे । जज़ पं० श्रीनिवास ने स्वामीजी को श्रद्धा-सम्मान सहित ठहराया । सात दिवस तक स्वामीजी ने लोगों को धर्मोपदेश से कृतार्थ किया । इन्दौर के महाराजा उस समय बाहर गये हुए थे ।

बम्बई में धर्मप्रचार

स्वामीजी ता० ३० दिसम्बर १८८१ को बम्बई पहुंचे । इस बार भी स्वामीजी ने कई व्याख्यान दिये । इन व्याख्यानों का विवरण 'बम्बई समाचार' नामक अखबार में छपता था । महाजनवाड़ी में हुए एक व्याख्यान में सेठ लछमनदास खीमजी के साथ मोरवी के राजा भी आये थे । व्याख्यान के अन्त में स्वामीजी ने उनसे कहा था, कि व्याख्यान देने वाला आपके ही राज्य का निवासी है ।

इन व्याख्यानों में स्वामीजी ने स्वदेशवासियों को विदेशों के साथ वाणिज्यव्यापार करने को प्रेरित किया और बताया कि मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध है, मन्त्र-यन्त्र का सही अर्थ विचार और कला है, लोंगों ने भ्रान्तिवश इन शब्दों को गलत अर्थों में प्रयुक्त करना आरम्भ कर दिया है । जीवित माता-पिता-दादा आदि की सेवा ही पितृश्राद्ध है । मृत पितरों के नाम पर श्राद्ध करना व्यर्थ है ।

इस बार स्वामीजी के अधिक व्याख्यान गोरक्षा एवं गो-महत्त्व पर हुए । स्वामीजी की तीव्र इच्छा थी कि अतिशीघ्र भारत में से गोवधरूपी महापातक समाप्त हो जाये । मूलजी जेठा मार्केट में भी स्वामीजी ने गोरक्षा पर एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया । परिणामस्वरूप पहले के विरोधी भी स्वामीजी के भक्त हो गये । इनमें भाटिया लोग प्रमुख थे । इन्होंने अपनी कोठियों पर भी स्वामीजी के 'गोरक्षा' विषय पर व्याख्यान करवाये और गोरक्षा-मेमोरियल पर हस्ताक्षर करवाने में भी बहुत उद्योग किया ।

इन दिनों स्वामीजी अधिक समय वेदभाष्य कार्य में लगा रहे थे । अतः विज्ञापन द्वारा सूचित कर दिया गया था, कि प्रातः ८ से सायं ५ बजे तक वे किसी के न मिलेंगे । तत्पश्चात् रात्रिपर्यन्त मिल सकेंगे । नियमानुसार महादेव गोविन्द रानाडे से भी ५ बजे बाद ही मिले । रानाडे महोदय ने प्रयाग की एक सोशल कान्फ्रेंस में स्वामी दयानन्दजी को अपना गुरु बताया था ।

व्यंकटाचार्य का शास्त्रार्थ-हेतु दिखावा

इसी अन्तराल में एक पं० व्यंकटेश्वराचार्य ने पौराणिकों से धन पाकर स्थानीय अखबार में छपवा दिया कि 'मैं वेदों में से मूर्तिपूजा सिद्ध करूँगा । स्वामी दयानन्द भीरुता के कारण मेरे सन्मुख आने से डरते हैं' इत्यादि । इसका उत्तर बैरिस्टर रामदास छबीलदास ने स्वामीजी की अनुमति लेकर श्लोकबद्ध संस्कृत में भेज दिया । उसका

एक श्लोक था – 'भीतः कदा नाम मृगेन्द्रशावो दीनं मुखं वीक्ष्य मृगाङ्गनायाः' सिंह का सपूत, हरिणी के दीन मुख को देखकर कभी डरा करता है क्या ?

व्यंकटेश्वराचार्य ने न इस लेख का उत्तर दिया और न ही सम्मुख शास्त्रार्थ करने आये। दूर से ही स्वप्रशंसा के ढोल पीटते रहे।

वेद से मूर्तिपूजा सिद्ध करने पर इनाम की घोषणा

आर्यसमाज बम्बई के एक प्रतिष्ठित एवं धनाढ्य सभासद् सेठ मथुरादास लौजी ने एक विज्ञापन छपवाया कि जो कोई मूर्तिपूजन के वेदविहित होने का निश्चय करा देगा उसे मैं ५००० पांच सहस्र रुपये पारितोषिक दूंगा। परन्तु न तो व्यंकटेश्वराचार्य ही और न कोई अन्य पण्डित ही मूर्तिपूजा को वेदविहित सिद्ध करने हेतु अग्रसर हुआ।

चतुर्वेद-विद्वान् ही चतुर्मुखी ब्रह्मा है

उन दिनों बम्बई आर्यसमाज के उत्सव में होने वाले हवन में एक ऐसे स्थानीय ब्राह्मण को ब्रह्मा के आसन पर बिठाया गया, जिसे चारों वेद सस्वर कण्ठाग्र थे। स्वामीजी ने लोगों से कहा, कि ऐसा ही मनुष्य चतुर्मुखी ब्रह्मा कहलाने योग्य है। सायंकाल को स्वामीजी का व्याख्यान वेद विषय पर ही हुआ। उससे पूर्व एक दक्षिणी ब्राह्मण ने तानपूरे पर सामगान किया, जिसे सुनकर सब मुग्ध हो गये। उत्सव में स्वामीजी का एक व्याख्यान संस्कृत में भी हुआ था।

प्राणायाम, धारणा और यमनियम के विषय में उपदेश

दानापुर से शङ्कासमाधानार्थ अपने साथियों के साथ स्वामीजी के पास आये जनकधारीलाल ने 'कहीं कोई शङ्का भूल न जाऊँ' इस विचार से शङ्काओं को कागज पर लिखना आरम्भ किया, पर जिस भी शङ्का को वे कागज पर लिखते, तुरत उसका समाधान उन्हें भासित हो जाता। अन्त में उन्होंने केवल उपासना-अन्तर्गत प्राणायाम के विषय में पूछा तो स्वामीजी ने कहा कि बाह्यकुम्भक (वायु को बाहर रोकने) के समय मूलाधार ऊपर उठना चाहिये। मन की स्थिरता के विषय में स्वामीजी ने बताया, कि यदि मन भ्रूमध्य अथवा नासिकाग्र आदि पर स्थिर न होवे, तो अपने भीतर किसी तिल अथवा सूई की नोक के बराबर किसी वस्तु की कल्पना कर लो और उस पर ध्यान जमाओ, फिर मन में उसके टुकड़े करके एक टुकड़े पर ध्यान जमाओ। ऐसे ही टुकड़े करते चले जाओ, यहां तक कि अत्यन्त सूक्ष्म टुकड़ा रह जाय, फिर उसे भी उड़ा दो। तब तुम्हारी धारणा हो जायेगी। उनके साथी पं० आदित्यनारायण ने उपासना में मन लगाने की विधि तीन बार पूछी और तीनों बार स्वामीजी ने 'यमनियम का सेवन करो' यही उत्तर दिया। इससे वे पहले तो खिन्न हो गये। किन्तु सोचने पर पता लगा, कि वे एक मुकदमे में झूठी गवाही देकर

आये थे और पुनरपि देने वाले थे । इसीलिये स्वामीजी ने यम (= सत्य) नियम पालन पर बल दिया था । पर बिना बताये गवाही की बात जान लेना स्वामीजी की योगविभूति का प्रमाण था ।

इसी अन्तराल में आर्यसमाज बम्बई के भवन के लिये आर्यजनों द्वारा एक सहस्र गज भूमि खरीद ली गई ।

गृहस्थों के योगक्षेम की भी चिन्ता

एक दलाली का व्यवसाय करने वाले मारवाड़ी सज्जन ने स्वामीजी के उपदेश एवं कार्य से प्रभावित होकर वेदभाष्यार्थ १००० एक हजार रुपये स्वामीजी को भेंट किये । किन्तु स्वामीजी ने उसके कार्य और उसके वेश आदि को देखकर 'भाई ! तुम्हारे बालबच्चों का पालन करने में तथा अन्य गृहस्थ सम्बन्धी कार्यों में भी व्यय की आवश्यकता होगी, अतः तुमसे मैं केवल १०० सौ रुपये ही लूंगा' । ऐसा कहकर हठात् उसे ९०० नौ सौ रुपये वापिस कर दिये । इस व्यवहार से वह सज्जन स्वामीजी का और पक्का भक्त बन गया ।

इसी बार आर्यसमाज बम्बई के पुराने नियमों में परिवर्तन करके लाहौर आर्यसमाज की स्थापना के समय जो नियम बनाये गये थे, उन्हें ही स्वीकार कर लिया गया ।

'आगन्तुक का सभ्यतापूर्वक सत्कार करो'

एक दिन एक दाढ़ीधारी बंगाली सज्जन स्वामीजी से वार्तालाप करने आया । जब उसने पीने को पानी मांगा, तो स्वामीजी के गुजराती शिष्य ने उसे मुसलमान समझकर गिलास के स्थान पर दोने में पानी दिया । बंगाली के जाने के पश्चात् स्वामीजी ने उस शिष्य को डांटा कि तुमने यह असभ्य व्यवहार क्यों किया ? प्रथम तो वह सज्जन हिन्दू ही था और यदि कोई मुसलमान ईसाई आदि भी हो, तो भी अतिथि का सभ्यतापूर्वक सत्कार करना चाहिये ।

श्यामजी कृष्ण वर्मा को विलायत भेजा

बम्बई में श्यामजी कृष्ण वर्मा नामक एक कच्छी होनहार और मेधावी संस्कृतानुरागी कालेज-छात्र स्वामीजी के सम्पर्क में आया और वह स्वामीजी को अपना गुरु मानने लगा । स्वामीजी ने 'भविष्य में यह योरोप में वैदिक धर्म का प्रचार करेगा' इस भावना से उसे प्रयत्न करके पहले विलायत भिजवाया था । वहां जाकर जब श्यामजी ने कोई पत्र नहीं भेजा, तो स्वामीजी ने उसे संस्कृत में एक पत्र लिखा । जिसमें स्वरचित वेदभाष्य के ऊपर प्रोफे० मोनियर विलियम्स् और 'मैक्समूलर की सम्मति के विषय में भी जिज्ञासा थी । श्यामजी ने वह पत्र प्रो० मोनियर विलियम्स् को दिखाया । उस पत्र की सरल सुबोध और ललित संस्कृत को देखकर उक्त प्रोफेसर इतने मोहित हुए, कि अपनी प्रशंसाभरी टिप्पणी के साथ उसका अंग्रेजी अनुवाद 'एथिनियम' नामक इंग्लिश अखबार में प्रकाशित कराया ।

श्यामजी कृष्ण वर्मा इंग्लैण्ड से बैरिस्टरी पास करके भारत लौटने के बाद उदयपुर और रतलाम आदि रियासतों में उच्च पदों पर रहे और उन्होंने पुष्कल धन भी कमाया। पर उन्होंने आर्यसमाज के साथ मिलकर अथवा स्वतन्त्ररूप से धर्मप्रचार का कोई विशेष कार्य नहीं किया। कुछ समय पश्चात् वे वापिस इंग्लैण्ड चले गये। वहां उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता-हेतु क्रान्तिकारी दल का गठन तथा नेतृत्व तो किया, किन्तु वेदप्रचार का काम वहां भी नहीं किया।

गोवध-निवारण-हेतु महाप्रयास

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, इन दिनों स्वामीजी गोरक्षा पर विशेष बल दे रहे थे। उन्होंने गोरक्षा को अपने सुधारकार्य का प्रधान अङ्ग बना लिया था। उन्होंने गोरक्षा-विषय में स्थान स्थान पर व्याख्यान दिये। 'गोकरुणानिधि' पुस्तक लिखी। राजपुताने के एजेंट से, पश्चिमोत्तर प्रान्त के ले० गवर्नर म्योर साहब से गोवध बन्द करवाने का अनुरोध किया। स्वामीजी के व्याख्यानों को सुनकर बीसियों शिक्षित मुसलमान व ईसाई गोरक्षा के समर्थक बन गये। उनका विचार था कि यदि तीन करोड़ भारतवासियों के हस्ताक्षरों से युक्त एक निवेदनपत्र महाराणी विक्टोरिया की सेवा में भेजा जाय, तो गोवध बन्द हो सकता है। एतदर्थ उन्होंने चै० कृ० ९ वि० सं० १९३८ को एक निवेदन-पत्र हस्ताक्षर कराने हेतु सर्वत्र प्रचारित किया था। लाखों हस्ताक्षर संगृहीत कर भी लिये गये थे। पीछे स्वामीजी के प्रभाव से उदयपुराधीश महाराणा सज्जनसिंह आदि ने भी उस पर हस्ताक्षर किये थे। कहते हैं कि स्वामीजी की इच्छा थी, कि वे स्वयं विलायत जाकर उस निवेदनपत्र को महाराणी को सौंपेंगे। परन्तु बीच में ही स्वामीजी का देहान्त हो जाने से वह निवेदनपत्र न भेजा जा सका और सारा श्रम विफल हो गया।

एक राष्ट्रीय भाषा और स्वामीजी

स्वामीजी ने अनुभव किया था कि भारतवर्ष की एक राष्ट्रीय भाषा के बिना न धर्मप्रचार कार्य हो सकता है और न ही राष्ट्रीय एकता सम्भव है। इसके लिये उन्होंने आर्यभाषा नाम से हिन्दी को चुना। स्वयं गुजराती होते हुए और व्यवहारतः संस्कृतभाषी होते हुए भी उन्होंने अपने ग्रन्थ हिन्दी में लिखे, हिन्दी में ही व्याख्यान दिये, हिन्दी में ही पत्रव्यवहार किया और हिन्दी में ही सत्सङ्ग-शङ्कासमाधान किया। आर्यसमाजियों को हिन्दी के प्रचलन के लिये प्रोत्साहित किया। परिणाम यह हुआ कि पंजाब जैसे उर्दूप्रधान प्रान्त में भी हिन्दी में अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें छपने लगीं। आर्यसमाज की संस्थाओं, पाठशालाओं, गुरुकुलों, महाविद्यालयों और विद्यालयों ने भी हिन्दी-प्रचार-प्रसार में अद्वितीय योगदान दिया।

बम्बई में जून १८८२ के तृतीय सप्ताह पर्यन्त धर्मप्रचार करके स्वामीजी खण्डवा (२५ जून से ३ जुलाई तक), इन्दौर (३ से ५ जुलाई), रतलाम (५ से ८ जु०),

जावरा (८ से २५ जुलाई), चित्तौड़गढ़ (२५ जु० से ९ अगस्त) आदि स्थानों पर प्रचार करते हुए उदयपुर की ओर बढ़े ।

उदयपुर में पौने सात मास

महाराणा सज्जनसिंहजी से पूर्व प्राप्त निमन्त्रण के अनुसार स्वामीजी १० अगस्त १८८२ को उदयपुर पधारे और महाराणा के गुलाबबाग स्थित नवनिर्मित नौलखा महल में ठहरे । महाराणा की आज्ञा से धर्मसभा ने स्वामीजी की सेवाशुश्रूषा का उत्तरदायित्व संभाला । यद्यपि स्वामीजी उदयपुर कुछ दिन ही ठहरना चाहते थे, किन्तु महाराणा के अनुरोध पर उन्होंने उदयपुर में ही चातुर्मास्य करना मान लिया ।

महाराणा और मन्त्रियों का स्वामीजी से अध्ययन

महाराणा प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल स्वामीजी से सत्सङ्ग-लाभ लेने लगे । रात्रि में पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या और जगन्नाथ झारखण्डी ने स्वामीजी से दर्शनशास्त्र पढ़ना आरम्भ किया । उन्हें पढ़ता देखकर महाराणा भी स्वामीजी से संस्कृत पढ़ने लगे । दो तीन मास में ही स्वामीजी ने उन्हें संस्कृत का इतना ज्ञान करा दिया, कि महाराणा संस्कृत के सरल श्लोक और कविता आदि समझने में समर्थ हो गये । तत्पश्चात् उन्होंने स्वामीजी से मनुस्मृति ७, ८, ९ अध्याय; महाभारत के उद्योग एवं वनपर्व के विशिष्ट अंश, विदुरनीति, राजनीति, और छओं दर्शनों के सङ्गृहीत अंश भी पढ़े ।

महाराणा के लिये दिनचर्या बना कर दी

स्वामीजी ने महाराणा को निम्न० प्रकार से दिनचर्या रखने का उपदेश दिया । रात्रि ३ बजे शय्यात्याग, शौचादि से निवृत्ति, रात्रि में जल में भिगोई हुई चित्रक की छाल का जल अथवा सादा ठंडा जल एक प्याला पीना, एक घड़ी तक परमेश्वर की उपासना, पैदल भ्रमण करना अथवा घोड़े पर सवार होकर भ्रमण, भ्रमण-समय में हर वस्तु को ध्यानपूर्वक देखना, भ्रमण से लौटकर निवासस्थान में हवन करना । तत्पश्चात् ११ बजे तक राज्यकार्य । १२ बजे तक भोजन, मनोविनोद व विश्राम । ४ बजे तक न्यायकार्य पश्चात् शौचादि से निवृत्त होकर अश्वादि पर सवार होकर सेना, उद्यान, प्रासाद, नगर, सड़क आदि का निरीक्षण । महल में आकर ईश्वरोपासना, ग्रन्थाध्ययन, विद्याविज्ञान-वार्ता-श्रवण, विद्वत्सत्सङ्ग, इतिहासश्रवण । तत्पश्चात् भोजन, भ्रमण, वीरादिरस-प्रधान गीतश्रवण । तत्पश्चात् निश्चिन्त होकर छः घण्टे सोना । स्त्रियों के साथ न सोना । रति के लिये भी सप्ताह वा पक्ष का नियम रखना ।

महाराणा ने भी इसे शिरोधार्य समझकर अगले दिन से तदनुसार आचरण करना आरम्भ कर दिया ।

स्वामीजी की शिक्षाओं से महाराणा में अद्भुत सुधार

स्वामीजी की शिक्षा से महाराणा ने वेश्यासक्ति आदि व्यसन त्याग दिये । बहुविवाह

से भी उन्हें घृणा हो गई। उन्हीं दिनों एक स्थान से एक और विवाह का प्रस्ताव आया था, परन्तु महाराणा ने उसे तुरन्त अस्वीकार कर दिया। स्वामीजी ने उन्हें महलों में वेश्याओं का नृत्य बन्द करने को कहा और वेदगान आदि के लिये प्रेरित किया।

स्वामीजी मूक पशुओं के वकील बने

उसी अन्तराल में दशहरा का पर्व आया। उस अवसर पर उदयपुर और मेवाड़ में अन्य स्थानों पर पूजा के नाम से सैंकड़ों भैंसे और बकरे मारे जाते थे। स्वामीजी इस हिंसा से बड़े दुःखी थे। सो एक दिन महाराणा से कहा कि आप न्यायाधीश हैं और मैं मूक पशुओं का वकील बनकर आपके पास आया हूं। इन निरपराध पशुओं की हत्या को रोकने की प्रार्थना पेश करता हूं। इनको मारना अन्याय है और इसमें पाप के सिवाय कोई लाभ नहीं है। महाराणा ने स्वामीजी की बात मान ली, पर कहा कि इसे एकदम बन्द करने से कोलाहल मच जायगा, सो धीरे धीरे बन्द करना होगा। इसके बाद महाराणा ने पशु-हत्या किसी अंश तक कम करवा दी थी।

उदयपुर में स्वामीजी की दिनचर्या

स्वामीजी यहां प्रतिदिन प्रातः गोवर्धनविलास पर्वत की ओर भ्रमणार्थ जाया करते थे। लौटकर बाग के गोल चबूतरे पर ध्यानावस्थित होते। पश्चात् बाग में भ्रमणार्थ आये महाराणा से वार्तालाप। ब्राह्मीपाक तथा दूध का सेवन। १२ बजे तक वेदभाष्य का लेखन। स्नान, भोजन, अल्पविश्राम। चिट्ठियों के उत्तर लिखवाना, प्रूफशोधन। चार बजे से सत्सङ्ग-सभास्थल में शङ्कासमाधान और दीपक जलने तक व्याख्यान। महाराणा भी प्रायः व्याख्यानों में उपस्थित रहते थे।

रामचन्द्रजी ईश्वर के अवतार नहीं मनुष्य थे

महाराणा के 'रामचन्द्रजी पूर्णावतार थे कि नहीं ?' इस प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने वाल्मीकि रामायण के नारद-वाल्मीकि-संवाद से निश्चय करा दिया कि रामचन्द्रजी को वाल्मीकि और नारद भी मनुष्य ही मानते थे ईश्वर का अवतार नहीं।

एकलिङ्ग-महादेव-मन्दिर की महन्ती का प्रलोभन

एक दिन महाराणा ने स्वामीजी से कहा कि 'आप मूर्तिपूजा का खण्डन न करें, इससे जनसाधारण आपके विरुद्ध हो जाते हैं, आप नीति का अवलम्बन करके अन्य विषयों का उपदेश करें, ताकि लोग शीघ्र आपकी बात को मान लें।' स्वामीजी ने उत्तर दिया कि 'मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता और न छिपा सकता हूं चाहे कोई कितना ही विरोधी हो।' एक अन्य दिन अवसर पाकर महाराणा ने एक प्रलोभनभरा प्रस्ताव रखते हुए स्वामीजी से निवेदन किया - "मेवाड़ के महाराणा एकलिङ्ग महादेव को अपना इष्टदेव मानते हैं और प्रचलित धारणानुसार समस्त मेवाड़ की भूमि के

असली अधिपति महादेव ही हैं, महाराणा तो महादेव के दीवान बनकर ही शासन चलाते हैं। मैं अपने अधिकार से एकलिङ्ग महादेव के मन्दिर के महन्त की गद्दी पर आपको प्रतिष्ठित कर दूंगा। भले ही आप पूजा मत करना, परन्तु इस मठ की समस्त सम्पत्ति पर आपका एकाधिकार हो जायगा, जिससे आपका वेदभाष्य-प्रकाशन आदि कार्य सुगम हो सकेगा।" इस प्रस्ताव को सुनकर स्वामीजी ने मन्युभरे स्वर में कहा "महाराणाजी ! आप यह प्रस्ताव किस के सामने रख रहे हैं ? आपके इस छोटे से राज्य और मठ मन्दिर से तो मैं एक दौड़ में बाहर जा सकता हूं, किन्तु बताइये कि उस परमेश्वर के अनन्त विस्तार वाले ब्रह्माण्डरूपी राज्य से और उसकी आज्ञा से बाहर कैसे जा सकता हूं। वेद और ईश्वर की आज्ञा का उल्लङ्घन करना मेरे लिये असम्भव है। अन्धविश्वासों के मूल जिन मूर्ति, मठ मन्दिरों के निवारण का मैं पूरे बल से प्रयत्न कर रहा हूं। उन्हीं में आप मुझे फंसाना चाहते हैं ?" स्वामीजी के इन वचनों को सुनकर महाराणा को दृढ निश्चय हो गया कि स्वामीजी महाराज अपने मन्तव्यों पर चट्टान की भांति दृढ़ हैं।

मूर्ति-मन्दिर-विस्तार रोकने की महाराणा को प्रेरणा

एक दिन महाराणा स्वामीजी को बग्घी में सवार करा कर महलों में ले जा रहे थे। मार्ग में एक स्थान पर लगी भीड़ के विषय में जिज्ञासा करने पर महाराणा ने कहा कि ये लोग शीतला-मन्दिर में पूजा करने आये हैं।' यह सुनकर स्वामीजी ने कहा कि ये मूर्तियां पाषाण की हैं। इनकी कला से कलाकार शिल्पी की प्रतिभा का तो ज्ञान होता है। किन्तु इनमें चेतनता का सर्वथा अभाव है। अतः इनको पूजना सर्वथा ही व्यर्थ है। खेद है कि आप जैसे शासक ने इन बुद्धिविहीन कार्यों को कैसे बढ़ने दिया ? इस पर महाराणा ने कहा, कि मैं आपका अभिप्राय समझ गया। परन्तु अभी मैं इसे बन्द कर दूं तो बहुत बखेड़ा हो जायेगा। समय आने पर आपका यह उपदेश उत्तम फल लायेगा। तत्पश्चात् शम्भुनिवास-महल में स्वामीजी ने दो घण्टे तक मूर्तिपूजा की निस्सारता पर व्याख्यान दिया।

अधर्म करने और अधर्म का खाने से तो भीख मांगना अच्छा

महाराणा को मनुस्मृति पढ़ाते समय एक दिन स्वामीजी ने कहा कि अधीनस्थ पुरुषों को अपने अधिपति की वही आज्ञा माननी चाहिये जो धर्मानुकूल हो। यह सुनकर पीछे बैठे हुए सरदारगढ के जागीरदार ठा० मनोहरसिंहजी ने निवेदन किया कि स्वामीजी महाराज ! महाराणाजी हमारे अधिपति हैं, यदि हम इनकी प्रत्येक आज्ञा (चाहे वह धर्मविरुद्ध हो) को न मानें तो, ये हमारी जागीर छीन लें। स्वामीजी ने उत्तर दिया, कि कुछ चिन्ता नहीं, यदि धर्म के कारण धन वा जागीर चली जावे। अधर्म करने और अधर्म का खाने से तो भीख मांग कर खाना अच्छा है !

राजकार्यों में स्व-भाषा के प्रयोग की प्रेरणा

अब तक मेवाड़ राज्य का सरकारी कामकाज प्रायः उर्दू भाषा और फारसी लिपि में होता था। स्वामीजी ने महाराणा को प्रेरणा की और मेवाड़ की राजभाषा के रूप में हिन्दी को प्रतिष्ठित करने, न्यायालयों में देवनागरी लिपि के प्रयोग तथा प्रशासन एवं न्याय के अभिलेखों में अरबी-फारसी शब्दों के स्थान पर संस्कृत के समानार्थक तत्सम शब्दों को प्रयुक्त करने पर जोर दिया। उर्दू-फारसी के शब्दों के स्थान पर अनेक संस्कृत शब्द स्वामीजी ने स्वयं सुझाये, जिन्हें स्वीकार कर लिया गया। यथा - मेवाड़ के गजट के स्थान पर 'सज्जन-कीर्ति-सुधाकर', राज्य की सब से बड़ी सभा का नाम 'महद्राज्यसभा', महकमा जंगलात का नाम 'शैलकान्तार विभाग', महाराणा के वैयक्तिक सुरक्षा दस्ते का नाम 'निज सैन्य-गुल्म' आदि। स्वामीजी ने मेवाड़ में आयुर्वेद-चिकित्सा पद्धति को प्रोत्साहित करने को और राजकर्मचारियों को स्वदेशनिर्मित वस्त्र धारण करवाने को कहा।

स्वामीजी की योगसिद्धि की झलक

एक सुपठित, सुशील बिहार-निवासी सहजानन्द नामक साधु ने स्वामीजी की ख्याति सुनकर उदयपुर आकर स्वामीजी से विधिवत् संन्यास की दीक्षा ग्रहण की। अपनी योग्यता और सच्चारित्र्य के कारण वह स्वामीजी का विशेष कृपापात्र बन गया। एक दिन उसने उद्यान के समीपवर्ती एक तालाब में जल की ऊपरी सतह पर स्वामीजी को पद्मासन लगाये ध्यानावस्थित रूप में देखा। इसी प्रकार एक दिन कोठरी की एक खिड़की से स्वामीजी को योगारूढ स्थिति में देखा। उस समय स्वामीजी की श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया रुकी हुई थी, स्वामीजी का शरीर सर्वथा निष्कम्प था। उनके मुखमण्डल पर दिव्य आभा छिटक रही थी। सहजानन्द को इस अनुपम दृश्य को देखने का सुअवसर कई बार प्राप्त हुआ।

स्वामीजी का दूरस्थ-परोक्ष ज्ञान

एक दिन महाराणाजी एवं सहजानन्द आदि स्वामीजी के पास धर्मालाप में मग्न थे, कि अचानक स्वामीजी ने कहा कि 'पं० सुन्दरलाल आ रहे हैं, यदि वे पहले से सूचना दे देते तो यान का प्रबन्ध हो जाता।' महाराणा ने कहा कि 'यान का प्रबन्ध तो अब भी हो सकता है।' तब स्वामीजी बोले 'अब तो वे बैलगाड़ी में आ रहे हैं। उनका एक बैल सफेद है और एक के शरीर पर लाल धब्बे हैं, वे कल यहां पहुंच जायेंगे।' अगले दिन पं० सुन्दरलाल उदयपुर पहुंच गये और स्वामीजी का कथन अक्षरशः सत्य निकला।

जिन दिनों स्वामीजी का उदयपुर में पदार्पण हुआ उन दिनों महाराणीजी गर्भवती थीं। एक दिन मौज में आकर स्वामीजी ने महाराणा से कहा कि आपको पुत्ररत्न

की प्राप्ति होगी । समय आने पर ईश्वर-कृपा से महाराणीजी ने पुत्र को जन्म दिया । तब महाराणा ने आनन्दित होकर स्वहस्त से स्वामीजी को एक पत्र लिखा और एक मोहर सेवा में भेजी । स्वामीजी ने उस मोहर की कीमत के रुपयों में अपनी ओर से कुछ रुपये मिलाकर उन्हें गरीबों में बंटवा दिया ।

अत्याचार सहन करके भी मैं सुधार और देशोन्नति-कार्य में लगा हूँ

एक दिन राज्यमन्त्री पं० मोहनलाल वि० पण्ड्या ने स्वामीजी से पूछा कि भारत का पूर्ण हित और उन्नति कब होगी ? स्वामीजी का उत्तर था कि एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाये बिना ऐसा होना दुष्कर है । इसलिये मैं चाहता हूं कि देश के नृपगण अपने अपने राज्य में धर्म, भाषा और आचारविचार में एकता उत्पन्न करें । तब पण्डितजी ने आपत्ति की कि जब आप एकता चाहते हैं, तो मतमतान्तरों का खण्डन क्यों करते हैं, इससे तो विघटन होता और पृथक्ता बढती है । स्वामीजी ने उत्तर दिया, कि पृथक् पृथक् मतमतान्तरों का खण्डन और वेदधर्म का मण्डन मैं एकता के लिये ही करता हूं । धर्माचार्यों और विद्वानों की असावधानी, पृथक् पृथक् साम्प्रदायिकता और स्वार्थ के कारण जाति के आचारविचार, रहनसहन, धर्म, भाषा और लक्ष्य दूषित और विरोधी हो जाते हैं तथा ऊँचनीच और भेदभाव बढ़ जाता है । आर्यजाति की यही दशा हुई है । इसी कारण करोड़ों मुसलमान हो गये और अब ईसाई हो रहे हैं । यदि जाति को कडुए उपदेशों के कोड़े से न जगाया गया और कुरीतियों और अन्धविश्वासों को नष्ट न किया गया, तो इसकी मृत्यु में सन्देह ही क्या है ? मैं यह काम किसी स्वार्थ से तो कर ही नहीं रहा हूं । इसके कारण अनेकों कष्ट सहता हूं, गालियां और ईंट पत्थर खाता हूं, विष तक भी मुझे दिया गया, परन्तु जाति और धर्म के लिये मैं सब कुछ सहन करता हूं ।"

जज मौ० अब्दुर्रहमान से शास्त्रार्थ

उदयपुर के मुसलमान जज मौ० अब्दुर्रहमान से स्वामीजी का ता० ११ सित० से १७ सित० १८८२ तक शास्त्रार्थ हुआ । जिसे लिखा भी गया था । मौलवी ने निम्न० सात प्रश्नों पर बहस की थी –

१. भिन्न भिन्न धर्मों की भिन्न भिन्न भाषाओं में भिन्न भिन्न पुस्तकें हैं, इससे सिद्ध होता है कि उनमें से हर एक ही देश के रहने वालों और एक ही भाषा बोलने वालों के लिये, बनी हैं । कोई ऐसी भी पुस्तक है, जो सब मनुष्यों की भाषाओं पर अधिकार रखती हो और सृष्टिक्रम के अनुकूल हो ? २. सारी दुनिया के मनुष्य एक ही वंश के हैं वा पृथक् पृथक् के ? ३. मनुष्य की उत्पत्ति कबसे है और अन्त कब होगा ? ४. आप धर्म के नेता हैं वा ज्ञान के अर्थात् आप किसी मत को मानते हैं वा नहीं ? ५. जैसे अन्य मतवाले अपनी अपनी धर्मपुस्तक और उसकी भाषा को सर्वोत्तम बताते हैं और जिस प्रकार की युक्ति देते हैं, आपने वेदों के विषय

में ऐसा ही किया, वेदों की कोई विशेषता प्रकट नहीं की ६. आप किन किन वस्तुओं को अनादि मानते हैं ? ७. यदि वेद ईश्वरोक्त होते तो इनका लाभ संसार के सब मनुष्यों को पहुंचना चाहिये था; जैसे सूर्य, जल, वायु का लाभ सबको पहुंचता है ।

इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर स्वामीजी ने युक्तिपूर्वक दिया । अन्तिम दिन के शास्त्रार्थ में महाराणा स्वयं उपस्थित थे । उन्होंने शास्त्रार्थ सुनकर कहा कि स्वामीजी जो कहते हैं वह ठीक है, मौलवी साहब व्यर्थ दुराग्रह करते हैं ।

विस्तारभय से उक्त प्रश्नों के स्वामीजी-प्रदत्त उत्तर यहां नहीं दिये जा रहे हैं, किन्तु स्वामीजी-कृत ग्रन्थों में इन सबके विस्तृत समाधान उपलब्ध हैं । उदाहरणार्थ १, ४, ७ प्रश्नों का समाधान 'सत्यार्थप्रकाश' के सातवें समुल्लासमें; २, ३, ६ प्रश्नों का समाधान आठवें समुल्लास में और प्रश्न ७ का समाधान पूरी 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' है ।

सत्यार्थप्रकाश और 'महाराणाजी का उदयपुर'

ऊपर स्वामीजी की उदयपुर में दिनचर्या के प्रसङ्ग में दिन में स्वामीजी द्वारा प्रूफ देखने की बातं कही गई है । ये प्रूफ होते थे स्वामीजी के कालजयी एवं बहुआयामी ग्रन्थरत्न 'सत्यार्थप्रकाश' के । यद्यपि इसका प्रथम संस्करण कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका था । पर उसमें पर्याप्त परिवर्धन, परिवर्तन, संशोधन और भाषापरिष्करण करके जो उसे नया स्वरूप दिया गया वह कार्य उदयपुर के नवलखा-महल में निवासकाल के अन्तराल में किया गया, इसीलिये स्वामीजी ने इस ग्रन्थ की भूमिका के अन्त में स्व-हस्ताक्षरों के साथ लिखा - 'भाद्रपद शुक्लपक्ष, स्थान-महाराणाजी का उदयपुर ।' इस ग्रन्थरत्न की निर्माणस्थली होने के कारण इस नवलखा-महल का ऐतिहासिक महत्त्व है । कालान्तर में आर्यसमाज ने इसे प्राप्त करने का कई बार प्रयास किया । आर्य प्रतिनिधिसभा, राजस्थान के प्रयास और सेठ श्री हनुमानप्रसादजी चौधरी (४२, अम्बावगढ, उदयपुर) द्वारा इस भवन पर पुष्कल धन व्यय करके इसे भव्य स्मारक का रूप देने का आश्वासन देने पर राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री भैरोंसिंह शेखावत के निर्देशानुसार राजस्थान सरकार ने यह नवलखा-महल-भवन आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान को दि० १२ अक्टूबर १९९२ ई० को ९९ वर्ष की लीज पर दे दिया है । उपर्युक्त सेठजी की अध्यक्षता में एक नवगठित 'म०द० सत्यार्थप्रकाश न्यास' द्वारा उसमें वैदिक सत्य सिद्धान्तों के प्रचार प्रसार के अन्तर्गत जनहित के अनेक कार्य हो रहे हैं ।

संशोधित स्वीकारपत्र की रजिस्ट्री

विरोधियों द्वारा स्वामीजी पर अनेक बार किये गये मारक विष-प्रयोगों के कारण अपने क्षतिग्रस्त शरीर को देखकर प्रतीत होता है, कि स्वामीजी को स्व-शरीर के सद्यःपात का आभास हो गया था । अतएव स्वजीवन के अन्तिम ३ वर्षों में वे अपने स्वीकारपत्र (= वसीयतनामा) के बनाने में सचेष्ट रहे । उनके पास वैदिक यन्त्रालय,

पुस्तक सङ्ग्रह तथा अन्य द्रव्य आदि जो कुछ था, उसे वे जनता का ही मानते थे। अतः स्वमरणोपरान्त उस सम्पत्ति का कोई एक व्यक्ति स्वामी न बन बैठे, प्रत्युत उसका सर्वहित में सदुपयोग हो, इस दृष्टि से ही उन्हें स्वीकारपत्र लिखने की चिन्ता थी। यद्यपि एक स्वीकारपत्र की ता० १८ अगस्त १८८० को मेरठ में रजिस्ट्री करा ली गई थी। किन्तु उसमें कुछ परिवर्तन अपेक्षित था। अतः ता० २७ फरवरी १८८३ ई० को उदयपुर की महद् राजसभा में स्वामीजी के नये स्वीकारपत्र की रजिस्ट्री कराई गई। इस स्वीकारपत्र में स्वामीजी के समस्त चल-अचल स्वत्व का उत्तराधिकार 'परोपकारिणी-सभा' में निहित किया गया। इस सभा के अध्यक्ष पद पर महाराणा सज्जनसिंह को प्रतिष्ठित किया गया और मन्त्रीपद पर कविराजा श्यामलदास को मनोनीत किया गया। अन्य २१ सदस्य और बनाये गये। जो देश के प्रायः सभी प्रमुख प्रान्तों का प्रतिनिधित्व करते थे। इस सभा के तीन उद्देश्य स्वीकार किये गये – १. वेदवेदांग आदि शास्त्रों का मुद्रण-प्रकाशन एवं प्रचार-प्रसार। २. वेदोक्त धर्म के प्रचारार्थ उपदेशकों को देश-देशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में भेजना। ३. आर्यावर्तीय अनाथ, अबला तथा दीनजनों का पोषण। कालान्तर में इस सभा का कार्यालय एवं कार्य-विधान अजमेर में स्थानान्तरित हो गया।

उदयपुर से स्वामीजी का प्रस्थान

उदयपुर में छः मास और २२ दिन (= २०२ दिन) के सुदीर्घ प्रवास के समय राजस्थान की अन्य रियासतों से भी स्वामीजी को उपदेशवर्षा करने हेतु निमन्त्रण मिलते रहे। शाहपुराधीश नाहरसिंहजी का तो अतिविशेष आग्रह था। अतः स्वामीजी ने महाराणा से अपने प्रस्थान की इच्छा प्रकट की। महाराणा सज्जनसिंह ने 'महापुरुषों का शरीर अनेकों के उपकार के लिये होता है' यह विचार करके न चाहते हुए भी स्वामीजी को ता० २८ फरवरी १८८३ को उदयपुर से विदा किया। उस समय महाराणा ने स्वामीजी को स्वहस्ताक्षरित प्रशंसापत्र अर्पित किया, साथ ही आर्यअनाथालय फिरोजपुर को ५०० रु० और वेदभाष्यार्थ स्वामीजी को १२०० रु० भेंट किये। स्वामीजी को अलग से भी १००० एक सहस्र रुपये भेंट किये, किन्तु स्वामीजी ने उन्हें स्वीकार न किया, तब स्वामीजी की अनुमति से वह राशि 'वैदिकनिधि' नाम से नव-स्थापित कोष में जमा कर दी गई। स्वामीजी द्वारा षड्दर्शनों के भाष्य करने पर उसके प्रकाशनार्थ बीस सहस्र रुपये देने का भी महाराणा ने प्रस्ताव किया।

'महाराणा सज्जनसिंह से आशाओं' पर कालतुषार-पात

स्वामीजी के उदयपुर-प्रचार-प्रवास से महाराणाजी को व्यक्तिगत एवं राज्यशासन-सुधार-गत अनेक लाभ प्राप्त हुए, जिसका उल्लेख महाराणा ने स्वहस्तार्पित प्रशंसापत्र में "इदं तु आपका अठै सात मास का निवास सूं चित अत्यन्त आनन्द में रह्यो,

क्योंकि आपकी शिक्षा को प्रकार श्रेष्ठ और उन्नतिदायक है और आपका संयोग सूं ही न्याय धर्मादि शारीरिक कार्य में निस्सन्देह लाभ प्राप्त होवा की म्हांका सभ्य जना सहित दृढ आशा हुई..... पुनरागमन सूं आप भी म्हांका चित्त ने शीघ्र अनुमोदित करैगा" हस्ताक्षर महाराणा सज्जनसिंहस्य" इन शब्दों में किया था ।

निश्चय ही स्वामीजी के उपदेशों के अनुसार महाराणा सज्जनसिंह अनेक सुधारकार्य करते और वैदिकधर्म के प्रचार-प्रसार में उनके सहयोग से महती प्रगति होती । किन्तु दुर्भाग्य-वश स्वामीजी के देहावसान के १४ मास बाद ही महाराणाजी का भी निधन हो गया । जो तत्त्व स्वामीजी के प्राणहरण में सक्रिय थे, सम्भवतः वैसे ही तत्त्व महाराणा सज्जनसिंह के निधन में दुरभिसन्धिग्रस्त थे, ऐसा कुछ समीक्षकों का चिन्तन हैं । अन्यथा स्वामीजी के उपदेशों से पूर्वापेक्षया अधिक संयमी जीवन बिताने में उत्साही और स्वस्थ शरीर वाले महाराणा का मात्र साढे पच्चीस वर्ष की अल्पायु में देहावसान होना कैसे सम्भव था ?

इस की पुष्टि एक घटना से होती है । स्वामीजी की प्रेरणा से महाराणा ने उदयपुर में नीलकण्ठ महादेव की निकटवाली भूमि पर अनेक-दिवसीय एक बृहद् यज्ञ रचाया था । उसकी पूर्णाहुति महाराणा के राज्यारोहण की वर्षगांठ के शुभ दिन महाराणा के हाथों करवाई गई थी । तदनन्तर स्वामीजी के आदेशानुसार महाराणा ने महल में दैनिक हवन की व्यवस्था कर दी और उसके लिये एक ब्राह्मण की नियुक्ति भी हो गई । किन्तु महाराणा सज्जनसिंह के निधन के पश्चात् स्वार्थी तत्त्वों ने उनके उत्तराधिकारी को यह समझा कर कि 'इस दैनिक होम के कारण ही महाराणा सज्जनसिंह की मृत्यु हुई है" उस हवन-कार्य को बन्द करवा दिया । इससे स्पष्ट है कि स्वार्थपरायण सुधारविरोधी अन्धविश्वासी तत्त्व स्वामीजी के सुधार-दखल को सहन नहीं कर रहे थे । ऐसे तत्त्वों का स्वामीजी के शिष्य के प्रति सशङ्क आकुष्ट होना असम्भव नहीं है ।

शाहपुरा (मेवाड़) में ढाई मास

उदयपुर से प्रस्थान करके स्वामीजी अपने लेखकों एवं भृत्यों सहित निम्बाहेड़ा होते हुए ६ दिन चित्तौड़गढ़ रुककर रूपाहेली होते हुए ता० ९ मार्च १८८३ को शाहपुरा पधारे और राजाधिराज नाहरसिंहजी के अतिथि बनकर राजबाग में ठहरे । स्वामीजी के आगमन का समाचार पाकर अनेक जन दर्शन एवं सत्सङ्ग हेतु आने लगे । स्वयं शाहपुराधीश पहले पांच दिन तक दो दो घण्टे सप्रेम धर्मालाप करते रहे । तत्पश्चात् प्रतिदिन सायं ६ से ७ बजे तक स्वामीजी से धर्मचर्चा और ७ से ९ तक अध्ययन करने लगे । इस क्रम में उन्होंने मनुस्मृति, पातञ्जल योगशास्त्र और वैशेषिकदर्शन का कुछ भाग स्वामीजी से पढ़ा । स्वामीजी के प्रातः-भ्रमण के समय भी कभी कभी शाहपुराधीश उनके साथ जाया करते थे । एकान्त में उनसे प्राणायाम की विधि भी सीखी थी ।

स्वामीजी के निर्देशानुसार महलों में नित्य-होमार्थ यज्ञशाला में अग्निस्थापना हुई। यह अग्नि नाहरसिंहजी से लेकर सुदर्शनदेवजी के काल तक सुरक्षित रही।

स्वामीजी यहां रविवार को छोड़कर शेष दिनों में वेदभाष्य-कार्य में संलग्न रहते थे। दिन में भोजनोपरान्त १५ मिनिट के नियत विश्राम काल में लेटने के कुछ क्षणों में ही निद्रा-मग्न हो जाते थे और अन्तिम मिनिट की समाप्ति पर अंगड़ाई लेकर उठ जाते थे। स्वामीजी के इस निद्रा-जय पर उनके सभी भृत्य और भक्त आश्चर्य-चकित थे।

राम राम जपने से नहीं अपितु अपेक्षित योगसाधन से ईश्वर-प्राप्ति

स्थानीय प्रमुख रामद्वारा के रामसनेही महन्त हिम्मतरामजी से लोगों ने आग्रह किया कि आप स्वामी दयानन्दजी से शास्त्रार्थ करिये, तो महन्तजी ने उत्तर दिया "भाई! हम तो पानी छानकर पीते हैं और राम राम कहते हैं, हमें शास्त्रार्थ से क्या काम ?" रामसनेहियों के मेले में ब्यावर से आये रामसनेही वैश्य स्वामीजी का व्याख्यान सुनने गये। स्वामीजी ने उनसे कहा कि केवल राम-राम कहने से ईश्वरप्राप्ति नहीं होती, अपितु अपेक्षित योगसाधन करने से ही परमेश्वर प्राप्त हो सकता है, जैसे लड्डू - लड्डू जपने से नहीं किन्तु पुरुषार्थ करने से लड्डू मिलता है।

तीन प्रश्नों के उत्तर

बिहारीलाल नामक विद्यार्थी के निम्न० तीन प्रश्नों के स्वामीजी ने निम्न० प्रकार से उत्तर दिये - प्रश्न - पाणिनि मुनि के 'भ्राजभास.... ग्रावस्तुवः क्विप्' (अष्टा० ३.२.१७७) सूत्र के 'ग्रावस्तुवः' शब्द से पत्थर की स्तुति की गई है। उत्तर - स्तुति (गुणवर्णन) अनेक प्रकार की होती है। जैसे कारीगर कहते हैं कि यह पत्थर उत्तम है, यह काष्ठ उत्तम है। ग्रावा के अर्थ पत्थर अवश्य हैं, परन्तु इससे पत्थर की मूर्ति और उसकी पूजा सिद्ध नहीं होती॥ प्रश्न - पाणिनि के 'जीविकार्थे चापण्ये' (अष्टा० ५.३.९९) सूत्र से शिव, स्कन्द, विष्णु आदि की मूर्ति सिद्ध होती है। उत्तर - उस समय शिव, विष्णु आदि नामक विशेष पुरुषों के विदेश आदि जाने पर (उनके शरीर- सौष्ठवादि प्रदर्शन एवं स्मरण-हेतु) उनकी मूर्तियां (जीविका-हेतु बेचने के लिये) रखी जाती थी, किन्तु इससे शिव, विष्णु आदि की मूर्ति की पूजा सिद्ध नहीं होती। प्रश्न - ईश्वर सर्वव्यापक है कि नहीं ? उत्तर - ईश्वर सर्वव्यापक है। पत्थर आदि में भी वह व्यापक है, पर पत्थर या मूर्ति ईश्वर नहीं। पत्थरादि की मूर्ति में ईश्वर की भावना करने से भी वह ईश्वर नहीं होती जैसे बालू में शक्कर की भावना करने से वह शक्कर नहीं बन जाती। इन उत्तरों से निर्मल-बुद्धि होकर बिहारीलाल ने मूर्तिपूजन त्याग दिया।

जोधपुर के सर प्रतापसिंह और रावराजा तेजसिंह द्वारा स्वामीजी को उदयपुर प्रवास के समय से ही जोधपुर पधारने हेतु निमन्त्रित किया गया था। शाहपुरा में

भी पुनः निमन्त्रण आया, तो स्वामीजी ने जोधपुर जाने की इच्छा प्रकट की। जोधपुराधीश जसवन्तसिंह उस समय नन्हीं भगतन नामक वाराङ्गना के मोहजाल में आसक्त थे। अतः शाहपुराधीश ने विनम्र होकर स्वामीजी से निवेदन किया कि 'महाराज ! आप जोधपुर में वेश्याओं का अधिक खण्डन न करें।' स्वामीजी ने कड़क कर उत्तर दिया कि मैं बड़े बड़े कंटीले वृक्षों को नहरनी से नहीं काट करता, उसके लिये तो अति तीक्ष्ण शस्त्रों की आवश्यकता होती है।

२६ मई १८८३ को स्वामीजी को शाहपुरा से सादर विदा किया गया। शाहपुराधीश ने एक सम्मानपत्र समर्पित किया और वेदभाष्यसहायतार्थ २५० रुपये भेंट किये तथा वेदधर्मप्रचारार्थ ३० रु० मासिक पर एक उपदेशक रखने का भी वचन दिया।

स्वामीजी शाहपुरा से प्रस्थान करके अजमेर पहुंचे। अजमेर के भक्तों ने भी शाहपुराधीश के समान स्वामीजी को सचेत किया और जोधपुर जाने से मना किया, किन्तु दृढनिश्चयी स्वामीजी ने उस पर ध्यान न दिया और कहा कि यदि लोग हमारी अंगुलियों की बत्तियां बनाकर जला दें, तो भी कोई चिन्ता नहीं। मैं वहां जाकर अवश्य सत्योपदेश करूँगा।

जोधपुर में साढ़े चार मास

अजमेर से स्वामीजी रेलमार्ग से पाली पहुंचे। वहां उनको लेने के लिये जोधपुर राज्य की ओर से चारण नवलदान और मुंशी दामोदरदास हाथी, रथ, सेजगाड़ी और घोड़ों सहित उपस्थित थे। रात्रि में रोहट गांव में थोड़ा विश्राम करके स्वामीजी ने आगे प्रस्थान किया और ३१ मई १८८३ को पूर्वाह्न में जोधपुर पधारे। वहां राज्य की ओर से उन्हें नजर बाग के सामने वाली भैया फैजुल्ला खाँ की कोठी में ठहराया गया। गले में पीड़ा के कारण महाराजा जसवन्तसिंह तो स्वागतार्थ न आ सके, पर उनके छोटे भाई सर प्रतापसिंह और रावराजा तेजसिंह स्वामीजी के स्वागतहेतु आये तथा स्वामीजी को एक मोहर और २५ रु० भेंट किये। सर प्रताप० ने शुद्ध दुग्ध-हेतु एक गौ, भोजन-आच्छादन की सामग्री, चार सेवक और ७ सिपाहियों वाले एक सुरक्षा गार्ड की व्यवस्था स्वामीजी के लिये कर दी।

महाराजा जसवन्तसिंह सत्रह दिन बाद स्वामीजी के दर्शनार्थ आये और उन्होंने १०० सौ रुपये तथा ५ मोहर स्वामी-चरणों में भेंट की। महाराजा द्वारा शिक्षाग्रहण की इच्छा प्रकट करने पर स्वामीजी ने उन्हें सुधर्म, सुकर्म और राज धर्म पर उपदेश दिया। जिसे सुनकर वे परम सन्तुष्ट हुए और "आप जब तक यहां रहें, उपदेश से जनता को कृतार्थ करते रहें" यह निवेदन करके स्वामीजी से विदा ली।

व्याख्यानमाला का आरम्भ और वेश्यासक्ति पर प्रहार

इसके दूसरे दिन से निवासवाली कोठी के सहन में ही प्रतिदिन सायं ४ से

६ बजे तक स्वामीजी के विविध विषयों पर व्याख्यान होने लगे। सैंकड़ों की संख्या में श्रोता आने लगे। उनकी आँखे खुलने लगीं। उन्हें कर्तव्य का ज्ञान और मनुष्य जन्म के उद्देश्य का ध्यान हुआ। स्वामीजी प्रवचनों में क्षत्रियों के चरित्रसंशोधन और गोरक्षा पर बहुत बल देते थे। एक दिन रावराजा तेजसिंह ने निवेदन किया 'स्वामीजी ! आप कृपा करके महाराजा के चरित्र के विषय में कुछ न कहें।' स्वामीजी ने आवेश के साथ कहा कि 'क्या आप मुझसे झूठ बुलवाना चाहते हैं ? मैं सत्य ही कहूंगा। मैं असभ्यतापूर्वक तथा नामनिर्देशपूर्वक तो कुछ कहता नहीं।' भरी सभा में भी स्वामीजी ने वेश्यागमन के दोष दिखाने और वेश्यागामियों को फटकारने में संकोच न किया। इस सम्बन्ध में यहां भी सदा की भांति यही कहा कि क्षत्रिय सिंह हैं और वेश्या कुतिया है। स्वामीजी ने यही बात महाराजा के भाई किशोरसिंह और कुचामन के कुंवर शेरसिंह के समक्ष भी कही थी, जिससे किशोरसिंह अप्रसन्न हो गये थे।

एक अन्य व्याख्यान में भी स्वामीजी ने राजाओं के व्यभिचार का कठोर शब्दों में खण्डन किंया और कहा कि ये लोग वेश्याओं के पीछे कुत्ते के समान फिरते हैं। इन्हीं दिनों स्वामीजी ने सर प्रतापसिंह को एक पत्र लिखा – "श्रीयुत... प्रतापसिंहजी ! आनन्दित रहो। यह पत्र बाबा साहब को भी दृष्टिगोचर करा दीजिये। मुझको इस बात का बहुत शोक होता है कि श्रीमान् जोधपुराधीश आलस्य आदि में वर्तमान हैं।.... आप और बाबा साहब रोगयुक्त शरीरवाले हैं।... आप लोग अपने शरीर के आरोग्य-संरक्षण और आयु बढ़ाने के काम पर बहुत कम ध्यान देते हैं, यह कितनी बड़ी शोचनीय बात है... ।"

नन्हीं भगतन स्वामीजी की शत्रु बनी

स्वामीजी द्वारा जोधपुर महाराज को संयमी और पत्नीव्रत जीवन बिताने का तथा वेश्यासक्ति से दूर रहने का उपदेश करने के कारण और वेश्याओं के विरुद्ध व्याख्यानों में भी भाषण करने के कारण जोधपुराधीश के मुंह लगी नन्हीं भगतन बहुत घबराई। उसे भय हुआ कि स्वामीजी के उपदेश से कहीं महाराजा उसके मोहजाल से दूर न हो जावें। फलतः वह स्वामीजी की पक्की शत्रु बन गई।

राजा के मुंह लगे मुसलमान भी स्वामीजी के शत्रु बने

एक दिन व्याख्यान में स्वामीजी ईसाई मत की आलोचना कर रहे थे, कि भैया फैजुल्लाखाँ मुसाहिब आला का भतीजा मुहम्मद हुसैन अपनी तलवार की मूठ पर हाथ रख कर खड़ा हो गया और स्वामीजी से बोला कि हमारे धर्म के विषय में कुछ भी न कहें। स्वामीजी ने तुरत उसे टोका 'तुम अभी अनुभवशून्य हो, तलवार पर हाथ धरना ही जानते हो, उसे म्यान रो निकाल नहीं सकते, मैं ऐसी गीदड़ भभकियों से डरनेवाला नहीं हूं।' इतना कहकर स्वामीजी ने इस्लामधर्म की कड़ी आलोचना की। इससे फैजुल्लाखाँ और अन्य मुसलमान स्वामीजी के शत्रु बन गये।

मुंह-तोड़ उत्तर

ये भैया मुसाहिब आला फैजुल्लाखाँ उन दिनों जोधपुराधीश के निकटतम लोगों में थे। इनकी और नन्हीं भगतन की शासन पर गहरी पकड़ हो गई थी। महाराजा को व्यसनों में फंसाकर ऐसे लोग राज्य के कर्ताधर्ता बन गये थे। फैजुल्लाखाँ ने एक बार स्वामीजी से कहा कि यदि मुसलमानों का राज्य होता तो लोग आपको जीवित न छोड़ते और उस समय आप ऐसा भाषण भी न करते। स्वामीजी ने उत्तर दिया 'मैं भी उस समय वैसा ही कार्य करता और दो राजपूत राजाओं की पीठ ठोक देता, जो आप लोगों की खबर ले लेते।'

चक्राङ्कित और पौराणिक भी विरोधी

एक व्याख्यान में स्वामीजी ने चक्राङ्कित सम्प्रदायवादियों की अवैदिकता की आलोचना की। मेहता विजयसिंह चक्राङ्कित थे। वे अपने एक पण्डित के साथ आये और वेद (ऋ० ९.८३.१) के 'अतप्ततनूर्न तदामः' के आधार पर शङ्ख चक्र आदि से शरीर के दागने को वेदविहित सिद्ध करने लगे। स्वामीजी ने मन्त्र के सत्य अर्थ बताये और अहिंसा, ब्रह्मचर्य, प्राणायाम आदि से शरीर आदि को तपोमय बनाने को वेदविहित बताया। वे लोग स्वामीजी के कथन का खण्डन तो न कर सके, किन्तु अन्दर अन्दर जल भुन गये। मूर्तिपूजा और मृतकश्राद्ध आदि का खण्डन करने से पौराणिक भी मुफ्त में माल मिलने रूप स्वार्थ की हानि के भय से स्वामीजी के विरोधी बन गये। इस सबका परिणाम यह हुआ कि नन्हीं भगतन, मुसलमान, चक्राङ्कित और पौराणिक ये सभी स्वामीजी के अनिष्ट-चिन्तन में लग गये। सत्य है "समाज, देश और अधिकारियों के दोष निकालकर उनके जीवन को पवित्र बनाने वाले महापुरुषों को सबकी शत्रुता मोल लेनी पड़ती है। अप्रिय किन्तु हितकारी बात कहने वाले तो स्वामीजी जैसे मांई के लाल विरले ही होते हैं।"

विधर्मियों से शास्त्रार्थ में विजयी होने की योग्यता

उदयपुर में कविराजा श्यामलदासजी के साथ ही उनके भानजे और दरबारी श्री कृष्णसिंह बारहठ भी स्वामीजी के भक्त बन गये थे। उदयपुर से आने के बाद भी स्वामीजी का उनके साथ पत्र-व्यवहार चालू था। जोधपुर-प्रवास के समय स्वामीजी के पास कृष्णसिंह बारहठ का एक पत्र आया। जिसमें उन्होंने मेवाड़ के पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों में ईसाइयों द्वारा भील आदि को ईसाई बनाने के कुचक्र को रोकने-हेतु कुछ उपदेशक भेजने को लिखा था। उत्तर में स्वामीजी ने लिखा, कि वही उपदेशक अथवा वही आर्य सभासद् ईसाई आदि विधर्मियों से शास्त्रार्थ में लोहा ले सकता है, जो नौ पौराणिक विश्वासों को नहीं मानता होगा और इनको अवैदिक करार दे सकेगा। वे पौराणिक विश्वास हैं – १. तीर्थ, २. मूर्तिपूजा, ३. मन्दिरभक्ति, ४.

पुराण-प्रामाण्य, ५. मिथ्या माहात्म्य, ६. मिथ्या व्रतचर्या, ७. कण्ठी तिलक आदि, ८. सम्प्रदायनिष्ठा, ९. अवतारवाद..। इन पौराणिक धारणाओं पर विश्वास करने वाला कभी विधर्मियों से टक्कर नहीं ले सकता ।

महाराजा जोधपुर पर स्वामीजी का बौद्धिक प्रभाव

स्वामीजी के जोधपुर-प्रवास-काल में जोधपुराधीश जसवन्तसिंहजी स्वामीजी के दर्शनार्थ तीन बार उनके डेरे पर आये और स्वामीजी भी महाराजा से मिलने तीन बार 'राई के बाग' महलों में गये । इस छः बार के सम्मिलन में महाराजा ने घण्टों वार्तालाप और हितकारी उपदेशश्रवण के द्वारा अपूर्व लाभ प्राप्त किया । और बौद्धिक रूप से महाराजा स्वामीजी के उपदेशों को सत्य मानने लगे और हृदय से सम्मान करने लगे । इस बात की पुष्टि दो घटनाओं से होती है । स्वामीजी के देहावसान के ८-९ वर्ष के बाद एक दिन भाटी अर्जुनसिंह और नन्हीं भगतन में कुछ वार्तालाप हो रहा था । स्वामीजी का प्रसङ्ग आने पर उन्होंने स्वामीजी के विषय में कुछ अपमानजनक शब्द कहे । समीपस्थित महाराजा ने उन्हें सुन लिया । तुरत अतिक्रुद्ध होकर महाराजाने कहा "तुम उनके (= स्वामीजी के) महत्त्व को क्या जानो, मैं जानता हूं और सत्य कहता हूं, कि यदि मैं महाराजा तख्तसिंह का पेशाब हूं और यदि स्वामीजी इस समय जीवित होते, तो मैं राज्य छोड़कर संन्यास लेकर उनके साथ चला जाता । "जब सन् १८९१ ई० में जनगणना हुई तो राज्य के उच्चाधिकारी मुंशी हरदयालसिंह ने नन्हीं भगतन से कहा कि आप महाराजा से पूछकर बतायें कि उनके नाम के आगे धर्म के खाने में क्या लिखूं । नन्हीं भगतन ने जब अपनी तरफ से ही कह दिया कि 'वैष्णव' लिख दो, तो तुरत सर प्रतापसिंह ने कहा कि नहीं 'वैदिक धर्म' लिखो । जब इस विषय में प्रत्यक्ष महाराजा से पूछ गया तो उन्होंने कहा कि 'मेरा धर्म वैदिक' है ।

अन्य सामन्त सरदार भी प्रभावित

जोधपुर-राज्य के अन्तर्गत कुचामन के जागीरदार केसरीसिंह स्वामीजी से पूर्वतः परिचित थे । वे और उनके पुत्र शेरसिंह अब स्वामीजी के और अधिक भक्त बन गये और आजन्म स्वामीजी के अनुयायी रहे । राव राजा तेजसिंह के चरित्र पर भी स्वामीजी का विशेष प्रभाव पड़ा । स्वामीजी को जोधपुर बुलाने में भी इनका प्रमुख सहयोग था । राजपरिवार-जनों में से उन्होंने ही स्वामीजी की सबसे अधिक सेवा की थी । सर प्रतापसिंह ने भी पीछे इस सत्य को प्रकट किया था, कि स्वामीजी के जोधपुर-आगमन से पूर्व पौराणिक धर्म के और विशेषतः ब्राह्मणों के अयथार्थ और तर्कशून्य आधिपत्य के सम्बन्ध में हमारे मन में अनेक संशय उठते और उनसे कभी कभी हमारा चित्त आन्दोलित हो उठता था । जब स्वामीजी जोधपुर पधारे तो उनसे बातचीत करके और उनके व्याख्यान सुनकर हमारे सब संशय एक एक करके

दूर हो गये और वैदिक धर्म में हमारा विश्वास पूर्ण रूप से दृढ और परिपक्व हो गया ।'

स्वामीजी के प्रति अनिष्ट का सूत्रपात

जैसा ऊपर लिखा गया है, जोधपुर में अनेक लोग कुटिलतापूर्वक स्वामीजी के विरोधी हो गये थे । व्यापक विरोध का प्रभाव स्वामीजी के समीप के वातावरण पर भी पड़ा । स्वामीजी के लिये राज्य के द्वारा नियुक्त सेवक कपटपूर्ण आचरण करने लगे । सम्भवतः स्वामीजी के साथ के सेवक भी इस दुष्प्रभाव में आ गये हों । ता० २६ सितम्बर को रात्रि में स्वामीजी का ७०० सात सौ रुपये का माल (मोहर आदि) चोरी हो गया । उस रात्रि से ही स्वामीजी का सेवक कल्लू कहार फरार था; ढूंढ़ने पर भी उसका पता न लगा ।

स्वामीजी पर मारक विषप्रयोग

२९ सितम्बर १८८३ को स्वामीजी सदा की भांति रात्रि को दूध पीकर सोये । थोड़ी देर बाद ही उनके पेट में दर्द उठा और जी मिचलाने लगा । उसके बाद तीन बार वमन भी हुआ । ३० सितम्बर को प्रातः फिर वमन हुआ । स्वामीजी को ज्ञात हो गया, कि मुझे विष दिया गया है । अतः पहले की विषदान की घटनाओं में विषप्रभाव दूर करने के लिये अपनाये गये उपाय के अनुसार इस बार भी उन्होंने जल पीकर स्वयं भी वमन किया पर कोई लाभ नहीं हुआ । इससे स्पष्ट है कि इस बार अतिघातक विष दिया गया था । समीक्षकों का कहना था, कि स्वामीजी को भारी मात्रा में संखिया विष दिया गया था । विष देने वाला या तो कल्लू कहार (कलिया) था अथवा धौड़ मिश्र नामक रसोइया था । विषदान नन्हीं भगतन आदि के षड्यन्त्र के अन्तर्गत हुआ और उसमें बाग के एक माली का भी सहयोग लिया गया, ऐसा उस समय के गवषकों का विचार है । विष के तीव्र प्रभाव के कारण और वमन होने के कारण स्वामीजी की आंतों और जिगर पर सूजन आ गई, छाती और पेट में तेज दर्द होने लगा । ज्वर भी हो गया । स्वामीजी ने दर्द कम करने के लिये अजवाइन का क्वाथ लिया, पर उससे दस्त होने लगे । स्वामीजी के कहने पर रावराजा तेजसिंहने जेल के डॉक्टर सूरजमल को बुलवाया । उसने स्वामीजी को डाइफोरेटिक मिक्श्चर दिया तथा छाती और पेट को गरम पानी की बोतल से सिकवाया । उससे ज्वर तो उतर गया, पर दर्द, सूजन और जलन वैसी ही रही ।

एक घटिया डॉ० अलीमर्दानखां की मूर्खता और दुष्टता

डॉ० सूरजमल औषध में स्थिति के अनुसार कुछ परिवर्तन करते, इससे पहले ही सर प्रतापसिंहने रा०रा० तेजसिंह के साथ डाक्टर अलीमर्दानिखां को स्वामीजी की चिकित्सार्थ भेज दिया । वह एक तीसरे दर्जे का हॉस्पिटल-असिस्टेंट था । किन्तु

खुशामद और छलकपट के द्वारा उसने महाराजा को प्रसन्न कर के अपनी गिनती बड़े डॉक्टरो में करवा ली थी। उसने स्वामीजी को साल्वेशन पिल्स् की छः मात्राएँ (= छः गोलियां) दे दीं।

इन गोलियाँ के द्वारा स्वामीजी के शरीर में १८ ग्रेन कैलोमल (एक प्रकार का विष) और छः ग्रेन अफीम प्रविष्ट हो गया। एक मनुष्य को डेढ़ साल्वेशन पिल्स् पर्याप्त होती है। स्वामीजी को चौगुनी दी गई। उस दिन और अगले दिन (= १ अक्टू०) में कोई अन्तर नहीं आया। २ अक्टू० को अलीमर्दानखां ने जुलाब देने को कहा और दूसरे दिन जुलाब-हेतु जैलैप पाउडर नामक रेचक औषध दे दिया। उससे ४ अक्टू० के प्रातः तक ४० दस्त हो गये। डॉ० ने कहा था कि ६-७ दस्त होंगे। किन्तु उससे सात गुने दस्त होने से स्वामीजी अत्यन्त निर्बल हो गये। दिन भर दस्त होते रहे और मूर्छा आने लगी। वास्तव में इन दो तीन दिनों में स्वामीजी को कुल २६ ग्रेन कैलोमल दिया गया। क्योंकि जैलैप पाउडर में भी ८ ग्रेन कैलोमल था। इसे डॉक्टर अलीमर्दानखां की मूर्खता के स्थान पर दुष्टता कहना अधिक उचित है। वह दुराशय था और इसलिये अपने स्वधर्मी लोगों के उस समय के वातावरण से उसका भी प्रभावित होना सम्भव था। यदि वह सदाशय होता तो लाहौर के डॉ० रहीमखां के समान स्वामीजी के बचाव-हेतु प्रयत्न करता और इस प्रकार उनके शरीर के साथ खिलवाड़ न करता।

स्वामीजी के रोग-कष्ट की आर्यों को सूचना

अधिक मात्रा में कैलोमल पहुंचने से स्वामीजी के गले, जिह्वा, तालु, सिर और माथे पर आँवले पड़ गये, जिससे बोलने में भी कष्ट होने लगा। दर्द, दस्त और जिगर पर सूजन तो थी ही, हिचकियां भी आने लगीं। अलीमर्दानखां ने बिस्मथ और डोनर की एस्ट्रिंजेंट पिल्स् भी दी। पर कोई लाभ न हुआ। इधर स्वामीजी भारी पीड़ा में थे और उधर आर्यजगत् को स्वामीजी के कष्ट का कोई समाचार न था। १२ अक्टूबर के राजपूताना गजट में स्वामीजी की रुग्णता का समाचार देखकर अजमेर से जेठमल सोढ़ा जोधपुर आये। उन्होंने स्वामीजी की कष्टावस्था को देखकर बम्बई, फर्रुखाबाद, मेरठ, लाहौर आदि आर्यसमाजों को तार द्वारा सूचित कर दिया[१]।

राज्याधिकारियों की लापरवाही

स्वामीजी की इस भयङ्कर रुग्णावस्था में भी जोधपुर राज्य के बड़े लोगों ने स्वामीजी की चिकित्सा-हेतु उचित उत्तरदायित्व नहीं निभाया। महाराजा जसवन्तसिंह तो १६ दिन तक (= १५ अक्टू० तक) स्वामीजी को देखने भी नहीं आये। हो सकता है उनके मुंह लगे डॉ० अलीमर्दानखां निरन्तर उन्हें "स्वामीजी स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं" ऐसी गलत सूचना देते रहे हों। सर प्रतापसिंह ने भी जोधपुर में रेजीडेंसी डॉक्टर रोडम्स और डॉक्टर नवीनचन्द्र गुप्त के होते हुए भी एक घटिया डॉक्टर अलीमर्दानखां

की दया पर स्वामीजी को छोड़ दिया । "किसी हिन्दू डॉक्टर को बुलवाइये" ऐसा स्वामीजी का निर्देश होने पर भी रा०रा० तेजसिंह ने डॉ० अलीमर्दानखां को क्यों बीच में दखल करने दिया ? इसे इन लोगों की लापरवाही के सिवाय और क्या कहा जा सकता है !

स्वामीजी को जोधपुर से आबू पर्वत ले जाया गया

अन्त में डॉक्टर सूरजमल ने सारी स्थिति को देखकर जेठमल सोढ़ा के कहा कि स्वामीजी को जितना शीघ्र हो सके उतना शीघ्र जोधपुर से अन्यत्र ले जाना चाहिये । स्थिति की गम्भीरता को देखकर बदनामी से बचने के लिये डॉ० रोडम्स् की सम्मति की आड़ लेकर डॉ० अलीमर्दानखां ने भी स्वामीजी को आबू-पर्वत भेजने को कहा ।

ता० १६ अक्टूबर १८८३ को स्वामीजी को विदा करने हेतु महाराजा जसवन्तसिंह और सर प्रतापसिंह आये । महाराजा ने स्वामीजी को २५०० ढाई हजार रुपये और दो दुशाले भेंट किये । मार्ग के लिये पालकी, कहार, खस के डेरे, पंखा, कुली, परिचारक आदि की व्यवस्था कर दी गई । सम्मानप्रदर्शनार्थ महाराजा ने स्वामीजी की पालकी कें स्वयं कन्धा दिया और बाग के द्वार तक पालकी के पीछे पीछे पैदल आये । उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से स्वामीजी को विदा किया । डॉ० सूरजमल भी स्वामीजी के साथ गये । १७ अक्टूबर को रोहट पहुंचे । १८ अक्टूबर को स्वामीजी की पालकी पाली पहुंची । कष्ट में कोई अन्तर न था । आंतों में सूजन थी, दस्त भी चालू थे । डॉ० सूरजमल यथाशक्ति रोगशमनार्थ प्रयास करते रहे । दो दिन स्वामीजी को पाली रुकना पड़ा ।

डॉ० सूरजमल को, उनकी स्वयं की स्त्री बीमार थी, अतः दयालु स्वामीजी ने आग्रहपूर्वक पाली से ही लौटा दिया । जेठमल सोढ़ा ने पाली से अजमेर पहुंचकर वहां के प्रसिद्ध हकीम पीरजी को स्वामीजी का सब वृत्तान्त सुनाया, तो हकीमजी ने कहा की निश्चय ही स्वामीजी को संखिया विष दिया गया है । उनसे उपयुक्त औषध लेकर सोढ़ा मारवाड़ जंक्शन पहुंचे । इधर स्वामीजी भी पाली से ट्रेन द्वारा मारवाड़ जंक्शन (खारची) पहुंच गये । जिला अलीगढ़ के ठकुर भूपालसिंह भी स्वामीजी को ढूंढ़ते हुए यहां पर आ मिले । पीरजी की दवाई से प्यास और हिचकी में कुछ अन्तर आया । यहां तक स्वामीजी पत्र आदि पर कांपते हाथों से हस्ताक्षर करते रहे । २१ अक्टू० को प्रातः स्वामीजी का दल आबू-रोड पहुंचा ।

डॉ० लछमनदास के मिलने का सुयोग

आबू-रोड स्टेशन से आबू-पर्वत जाते समय चढ़ाई के मार्ग में एक कोस चलने पर कहारों ने विश्राम-हेतु पालकी को सड़क के किनारे रख दिया । उसी समय पंजाब-निवासी डॉक्टर लछमनदास आबूपर्वत अस्पताल से स्थानान्तरित होकर उसी मार्ग से अजमेर जा रहे थे । पूछने पर पता लगा कि पालकी में जो संन्यासी रुग्णावस्था

में लेटे हैं, वे प्रसिद्ध सुधारक स्वामी दयानन्द सरस्वती हैं। डॉ० लछमनदास ने देखा कि स्वामीजी मूर्छावस्था में हैं और लगातार हिचकियां चल रही हैं तथा उसी अवस्था में दस्त हो रहे हैं। डॉक्टर ने तुरत एमोनिया पानी में घोलकर तीन बार दिया। उससे स्वामीजी ने आँखें खोल दीं और कहा 'मुझे किसी ने अमृत दिया है, जिससे मेरी अचेतनता दूर हुई है और जिह्वा भी खुल गई है'। किन्तु कुछ देर बाद फिर वे अचेत हो गये। डॉ० लछमनदास ने 'मेरी नौकरी रहे या जाय, मैं आबू-पर्वत साथ जाकर स्वामीजी की सेवा करूँगा' इस निश्चय के साथ वे वापिस आबूपर्वत चल दिये।

आबू-पर्वत पर पांच दिन

कभी स्वामीजी सत्यान्वेषण के प्रसङ्ग में युवावस्था में आबू-पर्वत आये थे और यहां रहकर योगाभ्यास में कुछ प्रगति प्राप्त की थी। पर अब भयङ्कर रुग्णावस्था में उन्हें आबू लाया गया था। उसी दिन वे रात्रि के आठ बजे ऊपर पहुंचे और जोधपुर राज्य के बंगले में पूर्व-प्रबन्ध के अनुसार ठहरे। डॉ० लछमनदास ने अस्पताल से एक औषध लाकर उसकी एक एक मात्रा प्रति तीन घण्टे पर देना आरम्भ किया। इससे लाभ हुआ और उस रात्रि को केवल तीन दस्त हुए। २२ अक्टू० को प्रातःकाल डॉ० लछ०ने दूध में अरारोट ओटाकर दो दो घण्टे के अन्तर से स्वामीजी को दिया, उससे स्वामीजी सचेत हो गये और हिचकियां भी बन्दं हो गईं। पर आँवले और छाले पूर्ववत् थे। दस्त केवल दो तीन बार हुए। २३ अक्टू० को दिन भर में दस बारह बार अरारोटवाला दूध पिलाया गया। फलतः रात्रिमें स्वामीजी को पांच घंटा नींद भी आई। तीसरे दिन वही दूध में ओटाया हुआ अरारोट दिया गया। उस दिन केवल एक दस्त हुआ।

मरणासन्न अवस्था में भी परहित-चिन्तन

डॉ० लछमनदास २४ अक्टूबर को आबू-पर्वत के चीफ मेडि० आफिसर डॉ० स्पेंसर के पास दो मास की अवैतिक छुट्टी लेने गये। स्पेंसर ने स्पष्ट मना कर दिया। डॉ० लछमनदास ने स्वामीजी की जीवनरक्षा को नौकरी से भी आवश्यक समझकर नौकरी से त्यागपत्र लिख दिया। स्वामीजी को इसका ज्ञान हुआ तो परमदयालु स्वामीजी ने अपने हाथ से उसे फाड़ फेंका और नौकरी पर अजमेर जाने को कहा। अहा! 'परहितचिन्तन का अद्वितीय उदाहरण है यह घटना। मृत्यु के मुख में पड़े हुए और यह आशा होते हुए भी कि डॉ० लछमनदास की चिकित्सा से वे कालकवलित होने से बच सकेंगे, स्वामीजी को यह सहन नहीं हुआ कि उनके कारण किसी सज्जन को हानि पहुंचे।' ता० २५ अक्टू० को डॉक्टर लछमन० ने दूसरा त्यागपत्र लिखकर स्पेंसर के पास भेजा, पर उसने उसे अस्वीकार कर दिया। उधर जोधपुर से आबूपर्वत पहुंचे सर प्रतापसिंह के द्वारा दबाब डलवाकर स्पेंसर ने डॉक्टर लछमन० को अजमेर जाने

पर मजबूर कर दिया। विदा के समय डॉक्टर और स्वामीजी दोनों के नेत्र अश्रुपूर्ण थे।

२५ अक्टूबर को डॉ० स्पेंसर की चिकित्सा चली। पर वह प्रतिकूल पड़ी। फिर से ७, ८ दस्त हो गये। डॉ० लछमनदास का किसी प्रकार आबूपर्वत रुकना हो जाता, तो सम्भवतः स्वामीजी बच जाते।

आबू-निवास के इस अन्तराल में ठा० भूपालसिंह ने स्वामीजी की पुत्रों से भी बढ़कर सेवा की। मलमूत्र उठाने, गन्दे वस्त्र धोने आदि में कभी ग्लानि न की। तार-सूचना पाकर मेरठ से मुंशी लक्ष्मणस्वरूप, फर्रुखाबाद से पं० लक्ष्मीदत्त और बाबू शिवदयालसिंह और बम्बई से सेवकलाल कर्सनदास आदि २३ अक्टू० को ही आबू पहुंच गये थे। स्वामीजी की अत्यन्त निर्बलता, बोलने में अतिकष्ट, मुख-जिह्वा-कण्ठ-सिर पर आँवले और छाले, अन्दर की जलन, हाथ पांव के ठण्डेपन आदि की स्थिति को देखकर सब ने स्वामीजी को अजमेर ले जाना उचित समझा।

अजमेर में जीवनलीला के अन्तिम चार दिन

२६ अक्टूबर १८८३ को आबूपर्वत से आबू-रोड होते हुए रेल द्वारा स्वामीजी को अजमेर ले जाया गया। अन्दर की जलन की तीव्रता के कारण मार्ग में 'नाना' स्टेशन पर स्वामीजी ने थोड़ा दही खाया। यह दहीसेवन हानिकारक सिद्ध हुआ। जर्जर हुए वस्त्र को सीने के लिये इधरउधर से खींचने पर वह फटता ही जाता है। रात्रि ४ बजे (सबेरे) गाड़ी अजमेर पहुंची। लोगों ने कठिनता से स्वामीजी को उतारा, पर वे मूर्छित हो गये। उन्हें भिनाय ठिकाने की कोठी में ठहराया गया। सर्दी की ऋतु में भी स्वामीजी को भारी गर्मी लग रही थी। डॉ० लछमनदास को बुलाकर दिखाया गया। उन्होंने स्वामीजी को निमोनिया की चपेट में पाया। उचित औषध देकर और कमरे को गरम करवा के कुछ काल के लिये वे बाहर गये ही थे, कि विषजन्य भारी जलन के कारण स्वामीजी ने अपना पलंग दरवाजे के पास हवा में डलवा लिया। इससे पुनः रोग का आक्रमण हुआ।

डॉ० लछमनदास की निःस्वार्थ सेवाभक्ति

रोग की बढ़ती को देखकर स्वामीजी ने अपने स्वीकारपत्र की प्रतियां सब लोगों मे बंटवा दीं। १२०० रु० मूल्य के दो बढ़िया शॉल और कुछ राशि स्वामीजी ने डॉ० लछमनदास को देना चाहा परन्तु डॉ० लछमनदास ने "महाराज ! यदि मेरे पास धन होता, तो मै इतना धन आपके एक एक लोम पर निछावर कर देता" कहकर लेना अस्वीकार कर दिया। डॉक्टर के इस त्याग पर सच्चे आर्यसपूतों का हृदय डॉक्टर में देखते हुए स्वामीजी के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये और डॉक्टर के नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली।

डॉ० अलीमर्दान के द्वारा भी औषध में विषदान का सन्देह

ता० २८ अक्टूबर को जब राय भागमल जज और सरदार भगतसिंह एक्जी० इञ्जीनियर स्वामीजी को देखने आये, तो स्वामीजी ने डॉ० लछमन० की भक्तिपूर्ण सेवा और चिकित्सा की बड़ी प्रशंसा की और कहा "यदि मैं इनके साथ ही अजमेर चला आता तो बहुत अच्छा होता।" इसी प्रसंग में स्वामीजी ने यवनों के छल का भी वर्णन किया। इससे प्रतीत होता है कि स्वामीजी को सन्देह था, कि डॉ० अलीमर्दानखां ने भी जोधपुर में औषध में विष दिया था।

ता० २९ अक्टूबर को लाहौर से पं० गुरुदत्त विद्यार्थी और लाला जीवनदास आ गये। उदयपुर से महाराणाजी ने स्वामीजी का स्वास्थ्य-समाचार लाने और स्वास्थ्य में सहायता करने हेतु मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या को भेजा।

उस दिन डॉ० लछमन०ने निरन्तर प्रयत्न करके स्वामीजी की अवस्था को सुधारा। स्वामीजी को कुछ ठीक देखकर वे राय भागमल के यहां भोजन करने गये और सेवकों को कह गये कि तुम स्वामीजी को हवा मत लगने देना। पर असह्य जलन के कारण स्वामीजी ने हठपूर्वक अपना पलंग बरामदे में निकलवा लिया। डॉक्टर ने वापिस आकर पलंग पुनः कमरे में लगवाया और पं० गुरुदत्त से कहा कि आज रात्रि को रोग का तीव्र आक्रमण होगा। यह बात सत्य निकली। रात्रि में बारह बजे स्वामीजी की श्वासगति और नाड़ी रुकी हुई लगी। डॉक्टर ने ग्लास लगाकर फेफड़ों से कुछ खून निकाला। इससे श्वासगति और नाड़ी-स्पन्दन भी ठीक हो गया।

डॉ० न्यूमैन की सम्मति और चिकित्सा

३० अक्टूबर १८८३ को प्रातः डॉ० लछमन०ने स्वामीजी के भक्तों से कहा कि अब किसी दूसरे डॉक्टर को भी चिकित्सार्थ बुला लीजिये। प्रतीत होता है कि स्वामीजी का अन्त समय निकट आ गया हैं, क्योंकि जैसे ही स्वामीजी की अवस्था में कुछ सुधार होने लगता है, वैसे ही वे कोई न कोई कुपथ्य कर बैठते हैं। यदि स्वामीजी का देहपात हो गया तो लोग मुझे मूर्ख बतायेंगे। तब अजमेर के सिविल सर्जन डॉ० न्यूमैन को बुलाया गया। उसने रोग की भयानकता को देखकर शोक प्रकट किया, पर इस अवस्था में भी स्वामीजी के धैर्य धारण करने की प्रशंसा की। डॉ० लछमनदास ने अब तक स्वामीजी को दिये औषधों के नुस्खे डॉ० न्यूमैन को दिखाये। उन्हें उसने सही बताया। स्टेथिस्कोप लगाने पर न्यूमैन ने डॉ० लछमन० के निमोनिया निदान को भी ठीक बताया। न्यूमैन ने जब राई की गरम पुलटिस स्वामीजी के शरीर पर बांधने की बात कही, तो डॉ० लछमन० ने उसे योरोपियन लोगों के लिये ही उपयुक्त बताया। दिन में १० बजे कुछ आर्यसमाजी डॉ० न्यूमैन से उनके बंगले पर मिले और उनसे डॉ० लछमन० की चिकित्सा के विषय में उसकी सम्मति पूछी। तब डॉ० न्यूमैन ने कहा "यदि दस अंग्रेज डॉक्टर भी मिलकर चिकित्सा करते, तो इससे

बढकर न कर सकते थे।... डॉक्टर लछमनदास बहुत अनुभवी चिकित्सक हैं।" फिर आर्यजनों ने पूछा कि पुल्टिस लगाई जावे कि नहीं ? इस पर डॉ० न्यूमैन ने कहा कि "मेरे अनुभव में पुल्टिस लाभदायक सिद्ध हुई है।"

आर्यजनों ने राई की गरम गरम पुल्टिस लगाना आरम्भ कर दिया। डॉ० लछमनदास ने गुरुदत्त से कहा था, कि यह अच्छा नहीं हो रहा है, इसका परिणाम विपरीत होगा। ११ बजे स्वामीजी की श्वासगति बढने लगी, पर वे कुछ कुछ बोलने लगे। उनके कहने पर सब उपचार बन्द कर दिये गये। शौच से निवृत्ति के बाद पलङ्ग पर बैठे, फिर लेट गये और मध्य मध्य में श्वास रोक रोक पर ईश्वर का ध्यान करने लगे। यह पूछने पर कि आपका चित्त कैसा है और आप कहां हैं ? स्वामीजी ने उत्तर दिया "हमारा चित्त अच्छा है और हम ईश्वरेच्छा में हैं।"

चार बजे स्वामीजी ने अपने शिष्य आत्मानन्द को और काशी से आये एक संन्यासी गोपालगिरि को कहा 'तुम आनन्द से रहना।' स्वामीजी ने एक एक दुशाला और सौ सौ रुपये आत्मानन्द और पं० भीमसेन को दिलवाये, पर उन्होंने नहीं लिये।

नश्वर देह का परित्याग

उसी समय बाहर से आये हुए और स्थानीय आर्यजन स्वामीजी के समीप गये और सामने खड़े हो गये। स्वामीजी ने सबको ऐसी कृपादृष्टि से देखा, कि उसका वर्णन नहीं हो सकता, मानो वे सब से कह रहे हों कि उदास क्यों होते हो, सबको धैर्य धारण करना चाहिये, घोरतम कष्ट में होने पर भी स्वामीजी के मुख पर शोक वा घबराहट का कोई चिह्न न था और न ही मुख से हाय या आह् शब्द निकला। इतने में पांच बज गये। किसी ने स्वामीजी से पूछा कि आपका चित्त कैसा है ? उत्तर था – अच्छा है, तेज और अन्धकार का भाव है।

जब साढे पांच बजे तो स्वामीजी ने अपने साथ के तथा दूर से आये हुए लोगों को बुलाकर अपने पीछे की ओर खड़ा करवा दिया और कमरे के सब द्वार खिड़कियां, रोशनदान खुलवा दिये। स्वामीजी ने पक्ष, तिथि, वार के विषय में पूछा। लोगों ने बताया कि महाराज ! आज कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्ल पक्ष का आदि, अमावस्या और मङ्गलवार है। यह सुनकर स्वामीजी ने छत और दीवारों की ओर दृष्टि की, फिर कई वेदमन्त्र पढ़े। तत्पश्चात् संस्कृत में ईश्वरस्तुतिप्रार्थना की और भाषा में ईश्वर का गुणकीर्तन किया और हर्षपूर्वक गायत्रीमन्त्र का पाठ करने लगे। फिर कुछ देर तक समाधिस्थ होकर आँखे खोल दीं और ईश्वर को समर्पित हो कहने लगे – "हे दयामय ! हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर ! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, अहा !! तेनें अच्छी लीला की" ऐसा कहकर श्वास रोककर उसे बाहर निकाला और स्वयं भी उसी के साथ नश्वर देह के बन्धन से मुक्त हो गये। उस समय सायङ्काल के छः बजे थे।

प्राणिमात्र के कल्याण के लिये वैदिक धर्म-प्रचार हेतु अकेले ही सारे संसार से लोहा लेने वाला वह दिव्य आत्मा अनन्त परमात्मा में विचरण करने हेतु स्थूल, और सूक्ष्म शरीर के बन्धन से छूटकर मोक्षगामी हुआ।

जाते जाते भी नास्तिक को आस्तिक बना गये

स्वामीजी के मृत्युदृश्य को पं० गुरुदत्त विद्यार्थी चुपचाप खड़े देख रहे थे। आर्यसभासद् होते हुए भी ईश्वर-अस्तित्व में संशयशील नास्तिक गुरुदत्त ने देखा कि एक योगी और ईश्वर का सच्चा विश्वासी भक्त मृत्यु पर कैसे विजय पा सकता है। इस दृश्य को देखकर उनके सारे सन्देह दूर हो गये, जो उस समय तक किसी युक्ति से दूर नहीं हुए थे। अब वे सच्चे आस्तिक बन गये।

महाराणा सज्जनसिंह ने सन्देश भेजा था कि मेरे आने तक स्वामीजी की अन्त्येष्टि न की जाय। पर उनके आने में विलम्ब की सम्भावना से उपस्थित आर्यजनों ने दूसरे दिन ही अर्थात् ३१ अक्टूबर १८८३ बुधवार को ही अन्त्येष्टि करना उचित समझा।

नश्वरदेह की अन्तिम यात्रा और अन्त्येष्टि

स्वामीजी के शरीर – जिसका रोम रोम परहित में लगा हुआ था – की अन्तिम यात्रा आरम्भ हुई। नश्वर-देह-विमान के आगे रामानन्द ब्रह्मचारी, गोपालगिरि संन्यासी, पं० वृद्धिचन्द्र और मुन्नालाल नंगे पैर वेदमन्त्र पढ़ते जाते थे। विमान के पीछे विभिन्न प्रान्तों से आये आर्य भक्तजन थे। राय भागमल जज, पं० सुन्दरलाल (सुप्रिंटेन्डेंट पोस्टल वर्क शॉप अलीगढ़), बाबू शरच्चन्द्र मजूमदार आदि प्रतिष्ठित व्यक्ति भी साथ थे। भिनाय-कोठी से आरम्भ हुई यह नश्वरदेह-यात्रा आगरा गेट, नया बाजार, धानमण्डी, दरगाह बाजार, डिग्गी बाजार होती हुई अजमेर नगर के दक्षिण में मलूसर नामक स्थल पर पहुंची। संस्कारविधि अनुसार वेदी बनने तक उपस्थित शोकमग्न भक्तसमूह के सम्मुख राय भागमलजी जज ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में स्वामीजी के गुणों का वर्णन किया। पं० सुन्दरलाल ने कुछ बोलना आरम्भ किया, पर उनका जी भर आया और वे आगे कुछ न कह सके।

वेदी में चन्दन-काष्ठ-चयन करके उस पर उस श्रेष्ठतम नरपुङ्गव के नश्वरदेह को रखा गया। पुष्कल चन्दन, कस्तूरी, केसर, कपूर, अगर आदि से उसे आच्छादित कर और पलाशादि काष्ठों से वेष्टित करके 'भस्मान्तं शरीरम्' करने के लिये रामानन्द और आत्मानन्द ने अग्नि प्रविष्ट कराई। संस्कारविधि-लिखित मन्त्रों से घृताहुतियों के साथ अन्त्येष्टि-कर्म सम्पन्न हुआ। उस समय भी सायङ्काल के छः बजे थे॥

स्वामीजी के देहावसान के समाचार से सारे भारत के और बाहर के भक्तजन शोकविह्वल हो उठे। कट्टर विरोधियों के मुख से भी शोकवेदना ही प्रकट हुई। समस्त समाचारपत्रों में शोकसमवेदना प्रलेख और अग्रलेख प्रकाशित हुए, जिनमें उनका

गुणकीर्तन था। हे मानव! कैसी तेरी प्रकृति है! किसी के चले जाने के बाद तू उसका मूल्याङ्कन करता है !!

महाराणा सज्जनसिंह उदयपुराधीश के शोकसन्तप्त हृदय से निकले उद्गार -

"दोहा - नभ चर ग्रह ससि दीप दिन, दयानन्द सह सत्त्व।
वय त्रेसठ∇ वत्सर विचे, पायो तन पञ्चत्व॥

कवित्त - जाके जीह जोर तें प्रपञ्च फ़िलासफिन को,
भारत सो समस्त आर्य मण्डल तें मान्यों मैं।
वेद के विरुद्धी मत मत के कुबुद्धी मन्द,
भद्र मद्र आदिन पै सिंह अनुमान्यो मैं॥
ज्ञाता खट ग्रन्थन को बेद को प्रणेता जेता,
आर्य विद्या अर्क हू को अस्ताचल जान्यो मैं।
स्वामी दयानन्द जू के विष्णुपद प्राप्त हू तें,
पारिजात को सो आज पतन प्रमान्यो मैं॥"

हे दयासागर! कृपालुपिता दयानन्द! क्या जन्मजन्मान्तर में भी, तेरे उपकारों के ऋण से उऋण हो सकेंगे हम?

∇ स्वामीजी का जन्म संवत १८८१ में और देहान्त संवत् १९४० में हुआ, अतः मृत्यु-समय उनका वयःक्रम ५९ वर्ष का था, त्रेसठ का न था।

स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत ग्रन्थों का परिचय

१. ऋग्वेदादि-भूमिका – स्वामी दयानन्द सरस्वती ने चारों वेदों का भाष्य करने का सङ्कल्प किया था। वेदभाष्य करने से पूर्व वेद का महत्त्व बताने और वेदों में वर्णित विषयों का संक्षिप्त परिचय देने तथा स्वकीय वेदभाष्य की पद्धति की सूचना देने के लिये भूमिका रूप में इस ग्रन्थ की रचना की। स्वामीजी के वेदभाष्य को पढ़ने से पूर्व इस ग्रन्थ को पढ़ना अत्यावश्यक है। इसे न पढ़कर सीधा वेदभाष्य पढ़ने से पाठक के मन में भ्रान्ति रह सकती है। इस ग्रन्थ में निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डाला गया है –

ईश्वरप्रार्थना, वेदोत्पत्ति, वेदनित्यत्व, वेदोक्तविषय-विज्ञानकाण्ड-कर्मकाण्ड-देवता-विचार, वेदसञ्ज्ञा, ब्रह्मविद्या, वेदोक्त धर्म, सृष्टिविद्या, पुरुषसूक्त-व्याख्या, पृथिव्यादिलोक-भ्रमण, आकर्षणानुकर्षण, प्रकाश्यप्रकाशकलोक, गणित-विद्या, स्तुतिप्रार्थना-याचना-समर्पण, उपासना, मुक्ति, नौविमानादिविद्या, तारविद्या, वैद्यकशास्त्र, पुनर्जन्म, विवाह, नियोग, राजप्रजा-धर्म, वर्णाश्रम, पञ्चमहायज्ञ, ग्रन्थप्रामाण्याऽप्रामाण्य, अधिकाराऽनधिकार, पठनपाठन, भाष्यकरणशङ्कासमाधान, प्रतिज्ञा, प्रश्नोत्तर, वैदिकप्रयोग, अलङ्कारभेद, ग्रन्थसङ्केत।

२. ऋग्वेद-भाष्य – स्वामीजी ने ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के इकसठवें सूक्त के द्वितीय मन्त्र (ओं प्र वां स मित्रावरुणा वृतावा०) पर्यन्त भाग पर भाष्य किया। तदनतंर उनका देहावसान हो गया। इसमें ऋग्वेद के ५६१९ पांच हजार छः सौ उन्नीस मन्त्रों का समावेश हुआ है। स्वामीजीने प्रत्येक मन्त्र के भाष्य करने में निम्नलिखित पद्धति अपनाई है – १. मन्त्र के मुख्य विषय का सङ्केत (संस्कृत तथा हिन्दी में), २. मन्त्र, ३. मन्त्र का पदपाठ, ४. मन्त्रस्थित क्रम से पदों का अर्थ (संस्कृत में), ५. अन्वय (अध्याहृत पदों के साथ), ६. भावार्थ (संस्कृत में), ७. अन्वयानुसारी पदार्थ (हिन्दी में), ८. भावार्थ (हिन्दी में)। इस प्रकार मन्त्र को समझाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। यथास्थान सायण-महीधर आदि भारतीय और मैक्समूलर, विलसन आदि यूरोपीय भाष्यकारों के भाष्य के दोषों को भी दिखलाया है। मध्यकालीन भाष्यकारों के समान स्वामीजी ने अपने भाष्य में कहीं भी मन्त्रों का विविध कर्मों में विनियोग नहीं दर्शाया है। स्वामीजी मन्त्रों को विविध क्षेत्रों में विविध अर्थों वाला मानते हैं। अतएव अनेक मन्त्रों का दो प्रकार का अथवा तीन प्रकार का भी अर्थ उन्होंने उदाहरणार्थ दर्शाया है। स्वामीजी ने प्रकरणानुसार अग्नि तथा वायु आदि शब्दों को ईश्वरवाचक भी माना है। जो कि प्राचीन आर्षशास्त्रों से भी प्रमाणित होता है।

३. यजुर्वेदभाष्य – स्वामीजीने सम्पूर्ण यजुर्वेद (४० अध्याय) पर भाष्य किया

है। स्वामीजी वाजसनेयी माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद संहिता को ही मूल यजुर्वेद मानते हैं। इस भाष्य में वे सब विशेषताएँ हैं जो कि ऋग्वेदभाष्य में हैं।

४. सत्यार्थप्रकाश – स्वामीजी का सबसे प्रसिद्ध और बहुत्र प्रचारित ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश अब तक लाखों की संख्या में छप चुका है। भारत की प्रायः समस्त भाषाओं में और बाहर की अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, बर्मी तथा स्वाहिली (= अफ्रीकन) भाषाओं में इसके अनुवाद छप चुके हैं। इस ग्रन्थ के पूर्वार्ध रूप दश समुल्लासों में वैदिक जीवन-पद्धति एवं मानवोपयोगी सभी विषयों का निरूपण किया गया है। उत्तरार्ध रूप चार समुल्लासों में भारतीय तथा बहिर्देशीय अवैदिक मतमन्तातरों की समीक्षा की गई है। इस प्रकार चौदह समुल्लासों की रचना के पश्चात् अन्त में स्वामीजीने अपने मन्तव्यों का उल्लेख किया है। स्वामीजी ने प्राचीन ऋषि-मुनियों (-ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्यन्त) के मन्तव्यों को ही अपना मन्तव्य माना है। सत्यार्थप्रकाश के चौदह समुल्लासों के मुख्य विषय इस प्रकार हैं – (१) ईश्वर के सौ नामों की व्याख्या। (२) माता-पिता द्वारा बालकों की शिक्षा, भूत-प्रेत-ग्रहपीडा आदि अन्धविश्वासों का निराकरण। (३) विद्यार्थियों के पठन-पाठन की व्यवस्था, पाठ्यक्रम, पढने तथा त्यागने योग्य ग्रन्थ, बालिकाओं की शिक्षा की अनिवार्यता। (४) विवाह का प्रकार, स्त्रीपुरुषों के कर्तव्य, स्वभाव-गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था, गृहस्थाश्रम की महत्ता। (५) वानप्रस्थ तथा संन्यासी के कर्तव्य। (६) राजधर्म। सभानुसार राजा द्वारा राज्यव्यवस्था, मनुस्मृति के ७, ८, ९ अध्यायों के उद्धरणों के साथ राजधर्म के प्रायः सभी विषयों पर प्रकाश। (७) ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभावों का वर्णन, स्तुति-प्रार्थना-उपासना की रीति और उनके लाभ; ईश्वर, जीव, प्रकृति की पृथक् सत्ता, वेद की उत्पत्ति, इयत्ता और ग्राह्यता। (८) सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय आदि का वर्णन। (९) विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष का वर्णन, मुक्ति के साधन, कर्मानुसार विविध योनियों में जन्म। (१०) आचार, अनाचार, भक्ष्य, अभक्ष्य का विवेचन। (११) भारत के प्राचीन गौरव का दिग्दर्शन, वाममार्ग-शैव-वैष्णव-नानक-दादू-रामस्नेही-ब्राह्मसमाज आदि भारतीय मत-पन्थों की समीक्षा, महाभारत के पश्चाद्वर्त्ती आर्य राजाओं की वंशावली। (१२) चारवाक-जैन-बौद्ध मतों की समीक्षा। (१३) बाईबल की संक्षिप्त समीक्षा। (१४) कुरान की संक्षिप्त समीक्षा।

इस ग्रन्थ में सर्वजनहिताय सत्य सत्य अर्थ को प्रकाशित किया गया है। इस ग्रन्थ को पढ़कर लाखों मनुष्यों ने अपने जीवन को कृतार्थ किया है। इस अमर ग्रन्थ को पढ़ने के पश्चात् मनुष्य अन्धविश्वासों के भ्रमजाल में कभी नहीं फंस सकता और वह वेदधर्म पर आस्थावान् बन जाता है।

५. संस्कारविधि – इसमें गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास और अन्त्येष्टि इन सोलह संस्कारों की परिभाषा, लाभ और विधि बताई गई

हैं। सर्वारम्भ में प्रत्येक संस्कार में करने योग्य होम और इसमें उपादेय द्रव्य आदि

का वर्णन है। विवाह संस्कार के पश्चात् 'गृहाश्रम-संस्कार' नाम से गृहस्थजनों के लिये अवश्य कर्तव्य नित्यकर्मों का सप्रमाण निर्देश है। वहीं शालानिर्माण एवं वास्तुविधि का भी उल्लेख है।

६. पञ्चमहायज्ञविधि – इसमें ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या), देवयज्ञ (अग्निहोत्र), पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और बलिवैश्वदेवयज्ञ का महत्त्व और प्रकार उल्लिखित है।

७. आर्याभिविनय – इसमें १०८ मन्त्रों की भक्तिभावपूर्ण व्याख्या है – विनय है। इसे पढकर स्वामीजी की परमेश्वर के प्रति असीम श्रद्धा की अनुभूति होती है।

८. आर्योद्देश्यरत्नमाला – इसमें ईश्वर, धर्म, तीर्थ, आश्रम, पुरुषार्थ, विद्या आदि सौ तत्त्वों की परिभाषा दी गई है। जो कि प्रत्येक के स्मरण करने योग्य है।

९. व्यवहारभानु - इसमें अध्यापक, विद्यार्थी, पिता, सन्तान, ग्राहक, दुकानदार, राजा, प्रजा, अधिकारी आदि कैसे हों और वे परस्पर कैसा व्यवहार करें, इसका दृष्टान्तसहित सुन्दर विवेचन है।

१०. गोकरुणानिधि – इसमें गौ आदि पशुओं के उपकारों का सूक्ष्म विवेचन करके उनकी रक्षा को धर्म और उनकी हिंसा को तथा मांसभक्षण को महा अधर्म बताया गया है। इसमें स्पष्ट ही दयानन्द के हृदय की दयार्द्रता के दर्शन होते हैं। अन्त में गोवंश की उन्नति और कृषि के विकास के लिये 'गोकृष्यादिरक्षिणी सभा' की स्थापना की आवश्यकता तथा उसके नियमोपनियमों का उल्लेख है।

११. संस्कृतवाक्यप्रबोध – इसमें संस्कृत न जानने वालों को भी वार्तालाप की पद्धति से संस्कृत सिखाने के लिये विभिन्न व्यावहारिक प्रकरणों में वार्तालाप संस्कृत में दिया है। साथ ही हिन्दी-अनुवाद भी है।

१२. वेदाङ्गप्रकाश – जो समयाल्पता के कारण पाणिनीय क्रमानुसार व्याकरण पढ़ने में असमर्थ हैं, उन्हे व्याकरण का कथंचित् ज्ञान हो सके, इस उद्देश्य से सन्धिविषय, नामिक, आख्यातिक, सौवर, कृत्तद्धितप्रकरण आदि ग्रन्थों की रचना की गई। इनमें से कुछ ग्रन्थों की रचना स्वामीजी के निर्देशानुसार उनके वैतनिक पण्डितों के द्वारा की गई है। इन ग्रन्थों का सूत्रक्रम तो प्रक्रियानुसारी (कौमुदी जैसा) ही है। पर उसमें पौराणिक उदाहरणों को हटाकर आर्ष उदाहरण दिये हैं और यथास्थान वैदिक (= छान्दस) सूत्रों का भी समावेश कर दिया गया है। इसी के अन्तर्गत वर्णोच्चारणशिक्षा भी है। सैंकडों वर्षो बाद स्वामीजी महाराज ने पाणिनीय-सूत्रमय शिक्षाग्रन्थ का उद्धार किया। इस से पूर्व पाणिनि के नाम से एक श्लोकमय शिक्षापुस्तक प्रचलित थी। इसी वेदाङ्गप्रकाश के अन्तर्गत 'उणादिकोष' नामक पुस्तक की रचना की गई। इसमें स्वामीजी ने उणादिप्रत्ययविधायक सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या की है।

१३. वेदविरुद्धमतखण्डन – इसमें वल्लभ सम्प्रदाय के मन्तव्यों और आचरणों की समीक्षा और बुराइयों का खण्डन किया गया है।
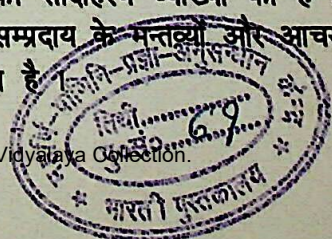
१४. **वेदान्तिध्वान्तनिवारण** – इसमें नवीनवेदान्तियों के 'ब्रह्म ही सत्य है और अन्य जगत् आदि सब झूठा है' इत्यादि का खण्डन है।

१५. **शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण** – इसमें गुजरात में प्रचलित स्वामिनारायण-सम्प्रदाय के दोषों का दिग्दर्शन है।

१६. **भ्रान्तिनिवारण** – इसमें स्वामीजी के वेदभाष्य के विषय में कलकत्ता के महेशचन्द्र न्यायरत्न द्वारा उठाई गई शङ्काओं का समाधान किया गया है।

१७. **भ्रमोच्छेदन** – इसमें काशीनिवासी राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की वेदभाष्य तथा उसकी भूमिका के विषय में उत्पन्न भ्रान्तियों का निवारण किया गया है।

१८. **अनुभ्रमोच्छेदन** – स्वामीजी के 'भ्रमोच्छेदन' के उत्तर में उक्त राजा शिवप्रसाद ने फिर जो आक्षेप किये, उनका उत्तर स्वामीजी के शिष्य पं० भीमसेन ने इस पुस्तक में दिया है।

१९. **अष्टाध्यायी-भाष्य** – स्वामीजी ने इसमें अष्टाध्यायी-सूत्रों की व्याख्या आर्षशैली से की है। कहीं कहीं अनार्ष व्याकरणग्रन्थों की त्रुटियों की ओर भी ध्यान दिलाया है। समयाल्पता के कारण लगभग तृतीय अध्याय तक ही यह क्रम चला। आगे पण्डितों पर इस कार्य का भार सौंप देने से उसमें विशेषता नहीं आने पाई। अतः यह भाष्य दो भागों में तृतीयाध्याय-पर्यन्त ही छापा गया है।

२०. **भागवतखण्डन** (= **पाखण्ड खण्डन**) – यह एक लघु पुस्तिका है। इसमें भगवतपुराण की समालोचना है।

२१. **काशीशास्त्रार्थ** – इसमें दिनांक सोलह नवंबर अठारह सौ उनहत्तर को काशी में श्री स्वामी विशुद्धानन्द तथा श्री बालशास्त्री आदि पण्डितों के साथ स्वामी दयानन्द सरस्वती के हुए शास्त्रार्थ का विवरण है।

२२. **हुगली-शास्त्रार्थ** – इसमें दिनांक आठ अप्रैल अठारहसौ तिहत्तर को हुगली में पं० ताराचरण तर्करत्न के साथ हुए शास्त्रार्थ का वृत्तान्त है।

२३. **सत्यधर्मविचार** (≟ **मेला चांदापुर**) – इसमें चांदापुर में १९, २० मई १८७७ ई. को मौलवियों और पादरियों के साथ हुए शास्त्रार्थ का विवरण है।

२४. **जालंधर-शास्त्रार्थ** – इसमें तारीख चौबीस सितंबर अठारह सौ सत्तर को मौलवी अहमदहसन के साथ जालंधर में हुए शास्त्रार्थ का वर्णन है।

२५. **सत्यासत्यविवेक** (= **बरेली शास्त्रार्थ**) – इसमें नवंबर अठारहसौ छिहत्तर में बरेलीनगर में पं० लक्ष्मणशास्त्री के साथ हुए शास्त्रार्थ का वृत्तान्त है।

२६. **चतुर्वेद-विषयसूची** – इसमें चारों वेदों के सूक्तों के प्रमुख विषयों की संक्षिप्त सूची दी गई है।

*****

परिशिष्ट-२

स्वामी दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थ तथा अन्य वैदिक साहित्य निम्नलिखित स्थानों से मिल सकते हैं–

(१) वैदिकपुस्तकालय, केसरगंज, अजमेर (राज०) पिन - ३०५००१.
(२) आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४५५, खारीबावली, दिल्ली, पिन - ११०००६.
(३) रामलाल कपूर ट्रस्ट, जी.टी. रोड, बहालगढ (सोनीपत) पिन - १३१०२१
(४) विजयकुमार गोविन्दराम, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६.
(५) दयानन्द-संस्थान, आर्यसमाज मार्ग, करौलबाग, नई दिल्ली - ११०००५.
(६) आर्यसमाज सैजपुर बोघा, अहमदाबाद (गुजरात) पिन - ३८२३४५
(७) आर्यसमाज कांकडवाडी, गिरगांव, मुम्बई (महाराष्ट्र) पिन - ४००००४.
(८) आर्यसमाज महर्षि दयानन्द मार्ग, रायपुर दरवाजा बाहर, अहमदाबाद-३८००२२.
(९) आर्यसमाज गांधीधाम, झंडा चौक के पास, गांधीधाम (कच्छ) पिन - ३७०२०१.